भूमिका

अहो! ईश्वर ने ज्योतिषशास्त्र भी संसार में कैसा अद्वितीय [illegible] और अमो-
रत्न दिया है जिसके प्रभाव से मनुष्य का परिणाम सम्पूर्ण जान
[illegible] जो अपने कृतकर्म और [illegible] समस्त वस्तुमात्र उद्यमी में मनुष्य
के हस्तगत इस अपार संसार में कोई पदार्थ नहीं कि जिससे दुर्भि[illegible] निकल-
वाला मनुष्य ऐसा [illegible] नि सके वा न कर सके केवल जन्म और
मरण मनुष्य के अगोचर है इसी से ईश्वर की ईश्वरता वि-
दित होती है परन्तु ज्योतिषशास्त्र ऐसा अनमोल मणि है
कि जिसकी सलाई नेत्रों में देने से परोक्ष जन्म मरण भी
प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। ब्रह्माजी ने जब वेद के चार भाग कर
दिये तब उसके अङ्ग "शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द
और ज्योतिष्" ये छः शास्त्र बनाये इनमें से प्रत्यक्षतात्पर्य
और चमत्कृत होने से ज्योतिष शिरोमणि गिना जाता है।
अब ऐसा समय आया है कि यह ऐसा अद्वितीय रत्नशिरोमणि
कैसा गिरता पड़ता दूर भागता जाता है कोई इसे पूछता भी
नहीं कि आप कहां के और कौन हैं, कदाचित् किसी ने प-
हिचान लिया तो भर्त्सना करता है कि हां तू वही है जिसने
हमारे पितृपितामहादिकों को अपने चमत्कार रूपी प्रपञ्च
में लुभा कर समस्त धन जन दान धर्मादि व्यर्थ कार्यों में
व्यय कराके उन्हें अधोगामी और हमारे तिरस्कारयोग्य कर
दिया, तेरे प्रपञ्च में वे नहीं फँसते तो उनका उपार्जित द्रव्य
सब हम ही को अनायास मिलता था हमें अनेक प्रकार की
[illegible] [illegible] क्यों करने पड़ते। अब हम तो तेरा [illegible]

क्या करेंगे बाप दादे अब न हुए तो हुए अब हम तो कभी न भूलेंगे आइये अब अपनी इज्जत बचाइये। "कुछ आगे बढ़कर" एक और महाशय ति देखकर बोल उठे कि अजी साहब अलग ही अलग जाइये अपनी परछांही हमारे ऊपर न पड़ने दीजिये आर्य ली हैं हमने सुना है कि हमारी माता के विवाह के पूर्व आपके अंजनेत्रवाले किसी ने कहा था कि इस कन्या के वैधव्य योग है अस्मात् विवाहोत्तर अल्प काल में वैसा ही हो गया उपरान्त उसी वैधव्य योगवाली के गर्भ से हम ऐसे हृष्ट पुष्ट और शास्त्रज्ञ पैदा हों कि स्त्री को कभी विधवा नहीं मानते संसार में सभी पुरुष ईश्वर के अंश हैं स्त्रियों को पुरुषों की कमी नहीं हैं इन अबला विचारियों का जीवित वैधव्य रूप में क्यों व्यर्थ करावें हमारी माता को केवल तेरे दुर्वचन से कुछ दिनों वैधव्य मानना पड़ा फिर तो ईश्वरकृपा से ऐसा सौभाग्य हुआ जिसके प्रताप से हम ऐसे पंडित भंड संसार में अवतरित हैं। अब कहिये! हमारी माता के वैधव्ययोग है वा सौभाग्य? तुम झूठे तुम्हारे पाठक झूठे! हाय रे कलियुग! तुझे अपना अधिकार प्रथम क्या इसी अद्भुत रत्न पर करना था क्या इसी के साथ तेरी मुख्य शत्रुता थी हां तेरा यह प्रयोजन अग्रेसर है कि प्रथम शिरोमणि शास्त्र को आक्रमण करूं तो और सभी अन्तर्गत हो जायंगे परन्तु यह अनादि शास्त्र सहसा तेरे आक्रमण में आक्रान्त इस दशा में भी नहीं होने का कुछ दिन समय प्रभाव सार्थक करने के लिये ज्योतिष रत्नराज पक्षसंकोच किये प्रतीत हैं परिणाम में रत्न रत्न ही है। इस समय में ज्योतिष की प्रभुता न्यून होने के कारण ये हैं कि ज्योतिषियों के कहे फल पूरे ठीक नहीं लगते क्योंकि कलिराज ने प्रथमावेश ज्योतिषियों से ही

आरम्भ उठाया पूर्व ऋषि लोग यमनियमादिक जप और मिताहारी और अप्रतिग्राही योगाभ्यासी सर्वशास्त्रज्ञ वेदाभ्यासी और नित्य अग्निहोत्री और सदाशिव के लिङ्गार्चन में रत रहते थे इससे भूत, भविष्य, वर्तमान और समाधि अर्थात् एकाग्र विचार से कहते थे अब ज्योतिषी लोग यम नियमादि के स्थान में दम्भ लोभादि और मिताहार के स्थान में अग्निसम और अप्रतिग्राही के स्थान में वेदविक्रय तप और जितेन्द्रियता के स्थान में स्त्रीलोलुपता, अग्नि के स्थान में तम्बाकू और शिवलिङ्गार्चन के स्थान में पाखण्ड मतावलम्बी एवं प्रकार परस्त्रीगामी के सांप्रतिक ऋषि हो गये तो सर्वशास्त्रज्ञता के योग्य बुद्धि कहां से हो बिना बहुज्ञता और बिना दमादिकों के चमत्कार फल क्योंकर कह सके ब्राह्मण सर्वस्व गायत्री के उपदेश मात्र से दक्षिणा निमित्त जप विषय और यथेष्ट प्रतिग्रह ग्रहण करने लगे तो बुद्धि निर्मल और कही बात सच्ची क्यों होवे कदाचित् किसी ने कुछ परिश्रम पठनपाठन में किया और कुछ शास्त्रज्ञता पाई भी तो दम्भ और मत्सर से परिपूर्ण हो जाते हैं ज्योतिष में अधिकांश गुरुलब्ध स्थान है उन युक्तियों के दूसरे की प्रभुता का मत्सर मानकर किसी को नहीं बतलाते पुनः आगे विद्या का प्रचार कैसे बढ़े । ऐसे २ आचरणों से यह अद्वितीय शास्त्र लोप होता २ इस दशा को प्राप्त हो गया सर्वसाधारण को इस अद्भुत रत्न की उन्नति का यत्न सर्व प्रकार से करना योग्य है फिर ऐसा अमूल्य मणि मिलना असम्भव है विशेषतः ज्योतिषी लोगों को इसकी उन्नति का उद्यम करना चाहिये कि उनका यह आजीवन पूर्व से और

पश्चात् के लिये भी उपयोगी है, इसमें अतिशय श्रम पठन-पाठन से करना योग्य है जिससे लोक प्रत्ययकारक ठीक फल कह सकें देखिये पहिले के महात्मा आचार्य्यों ने सर्वसाधारण के भूति और प्रत्यय के लिये कितना श्रम उठायके यह शास्त्र प्रचार किया कि जिसे अब बहुधा लोग कहते हैं कि ज्योतिषशास्त्र कुछ वस्तु नहीं न ग्रहों को ही शुभाशुभ देने की सामर्थ्य है जैसा जिसका कर्म वैसा अवश्य होगा इस अवसर में कोई नास्तिक कहते हैं कि यह तो ब्राह्मणों ने केवल अपने अज्ञान और अल्पश्रमी सन्तान के उपकारार्थ प्रपञ्च किया है अब इसमें वक्तव्य यह है कि पूर्व लिखित दशा जब इस प्रत्यक्ष शास्त्र की हो गई तो जब श्रुति भी ऐसी होनी आश्चर्य्य तो नहीं तथापि इस शास्त्र का मूल तात्पर्य्य उन्हें विदित नहीं है नहीं तो सहसा कभी ऐसा न कह सकते भोक्तव्य तो कर्मफल है यह बोध नहीं कि वह क्या है। और उसका परिणाम कब और क्या होगा इसका विचार द्वारा पूर्वाचार्य्यों ने जन्म समय इष्ट मान कर ऐसे हिसाब बनाये कि जिससे वह अलक्ष्य कर्मफल हित प्रत्यक्ष हो जाता है उन हिसाबों के नाम सूर्य्यादि नवग्रह और मेषादि १२ राशि तिथ्यादि पञ्चाङ्ग स्थापन कर दिये ग्रह आप न तो कुछ देते न कुछ अशुभ कर सकते जैसा जिसका कर्म उपार्जित होवे वैसा ही फल होगा परन्तु ग्रहरूपी हिसाब के द्वारा वह अलक्ष्य लक्ष्य हो जाता है अब इसमें ऐसा आभास हुआ कि ग्रह असमर्थ हैं फल कर्मानुसार भोक्तव्य ही है तो ग्रहार्चन दानादि भी निष्प्रयोजन है परन्तु यह स्थूल विचार "भङ्गग्राहिन्यायः" है प्रयोजन उसका कैसा उ.

त्तम है कि हमने पूर्व कर्म किया था, कि जिसका परिणाम हमको अरिष्ट धन नाशादि मिलना है यह कर्म और फल तो अदृश्य था परन्तु सूर्य्य वा किसी ग्रह की दशा.कष्टी होने से हमको अरिष्ट ज्ञात हुआ यह कर्मफल बोधक एक हिसाब सूर्य्य हुआ अब वह कर्म हमें पहिले ही ज्ञात होता तो उस का प्रतिकार करते केवल ज्ञापक यहां सूर्य्य है तो हमको सूर्य्य ही के द्वारा कर्म निर्हारोपाय सूर्य्य की वेद बोधित शान्त्यादि करनी चाहिये यह शान्ति सूर्य्य की क्या उस उपार्जित दुष्कर्म की है। जैसे सूर्य्य द्वारा कर्मफल ज्ञात हुआ ऐसे सूर्य्य ही के द्वारा प्रतिकार करना योग्य है इसमें दो प्रकार शुभत्व होगा कि एक तो अति प्रयत्नों से जो द्रव्य उपार्जन किया है उसके अकस्मात् व्यय हो जाने में कष्ट अपने ही हाथ से हो गया सूर्य्यदशाबोधित कर्मफल मिल गया और अपने हाथ के व्यय करने से पश्चात्ताप न होगा दूसरा लाभ यह है कि वेदबोधित और शास्त्रसम्मत विधि से जो कुछ शान्त्यादि करी जाती है उनके कर्म निर्हार और चिदानन्दता और पारिक शुभत्व और सद्व्यय गणना में होगा विधि से न करेंगे तो असद्व्यय (जिसमें फेर कभी काम नहीं आता) और इस समय में चित्त सन्ताप करनेवाला होगा जैसे वैद्य को देने में वा दण्ड में वा चोरी वा अग्नि जलादि पात में व्यय हो जाने से कर्मफल तो मिलेगा ही कर्म से कर्म निर्हार होता है इसमें चित्तशुद्धि मुख्य है कर्म वासना पुनर्जन्म भी फलभोग के लिये देती है साम्प्रत में साधारण की बुद्धि ऐसी ससम्भ्रम हो रही है कि जन्म देहादि न पहिले था न फिर होगा केवल पञ्चतत्व अपने २

अपने स्थानों में मिल जायँगे जन्म भया था पीछे जन्म होगा यह भ्रान्ति मिथ्या है प्राण नाम वायु का है वह भी वायु में मिल जाता है जन्म लेने को स्थूल दृष्टि से तो कुछ भी अवशेष नहीं रहता परन्तु मूल ज्ञान यह है कि जिस कर्म के अभ्यास में शरीर रहता है उसकी वासना बीज मात्र स्थित रहती है उसी के अनुसार कर्मफल भोगने को दूसरा प्रपञ्च पञ्चतत्व का वासना बल से उत्पन्न हो जाता है इसके बहुत से प्रमाण हैं और बहुत कुछ वक्तव्य है विशेष विस्तार इस विषय का यह है कि ज्योतिषामयनं चक्षुः। हे भरतखण्ड-निवासी महाशयो ! आप सब लोगों को विदित है कि भगवान् सच्चिदानन्दरूपी परमेश्वर सदाशिवजी ने ब्राह्मणादि चारों वर्णों को धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह चतुर्विध पुरुषार्थ के मार्गदर्शक परम पूज्य वेद निर्माण किये हैं। उन वेदों के पठन से ऊपरोक्त चतुर्विध पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं परन्तु वह वेदसाङ्ग पढ़ने चाहिये तहां शिक्षाकल्प व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष यह छ- अङ्ग हैं क्योंकि यदि केवल वेदों का ही पठन किया जाय, किन्तु अङ्गों का पठन न किया जाय, तो वह अङ्ग विकल होते हैं अतएव उनसे फल प्राप्ति नहीं होती है एक दर्थ भगवान् पाणिनी ऋषि ने भी स्वकृत शिक्षा में कहा है कि—

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथपठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥
शिक्षाघ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ॥

अर्थ—वेदरूपी पुरुष के छन्द यह पांव हैं तथा कल्प

दोनों हाथ हैं और ज्योतिष का स्थान दो नेत्र हैं अर्थात् ज्योतिष यह नेत्र हैं तथा निरुक्त दोनों कर्ण हैं और शिक्षा नासिका है और व्याकरण यह वेद का मुख है तस्मात् इन अङ्गों सहित जो वेदों का पठन करै, उसे ही ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है अर्थात् अङ्गरहित पाठ करनेवाले को गति नहीं मिलती इससे यह सिद्ध होता है कि ऊपरोक्त षडङ्गों सहित वेद का पठन सब लोगों को अवश्य ही करना चाहिये तो ज्योतिष यह एक वेद का मुख्य अङ्ग है उसका तो अवश्य ही पठन करना चाहिये, ऐसा प्राप्त भया कारण वह वेद का नेत्र रूप है तो उसका जो पठन तथा परिशीलन न किया तो वेद में जो ज्ञानभण्डार है, उसका लेश भी नहीं दृश्य हो सकता जैसे मनुष्य के सब अङ्ग हैं, परन्तु उन सब अङ्गों में एक ही नेत्र जो न होय तो कुछ भी पदार्थ दृश्य नही होता प्रत्युत इतर सब हस्तपादादि अङ्ग व्यर्थ होते हैं वैसा ही ज्योतिष बिना इतर सब अङ्ग व्यर्थ होते हैं और संसार मात्र का जितना शुभाशुभ कार्य्य है वह समस्त काल के आधीन हैं वह काल इसी ज्योतिषशास्त्र से ही निर्णय होता है एतएव यह ग्रन्थ काल के नेम करने में अत्यन्त उत्तम देखकर पाठ मैंने थोड़ा अर्थ बहुत और सम्मत होने से इसकी सान्वय भाषा टीका का शिवकरी नाम से सर्वसाधारण के बोधन योग्य खड़ी बोली में परम कारुणीक शिवमूर्त्ति बलिया जिलान्तर्गत देवडीह ग्रामनिहाली श्री ५ मान्य बाबू साहेब बहादुर बाबू गङ्गादयालसिंहजी की तथा उनके छोटे भाई परम दयासागर शङ्करमूर्त्ति बाबू साहेब बहादुर बाबू ब्रह्मदेवसिंह जी के आज्ञानुसार करता हूं और इस विवाह

वृन्दावन की भाषाटीका अभी तक नहीं भई रही है अतएव छात्रों के उपकार देखकर उक्त महाशयजी ने आज्ञा दियी अतएव उनको जितना धन्यवाद दिया जाय थोड़ा है। अब ज्योतिषियों से प्रार्थना है कि वे इस भाषा को देख इसकी अवज्ञा प्रगट न करें क्योंकि वह स्वयं ज्ञाता हैं उनके लिये यह परिश्रम नहीं है यह केवल इसलिये है कि विद्यार्थी को गुरु से बारम्बार पूछना न पड़े और गुरु को बारम्बार बताने का कष्ट न उठाना पड़े और जिस स्थान में गुरु विद्यमान हैं वहां तो शिष्य जाकर बारबार अपने संशय को दूर कर सकता है परन्तु जो विद्यार्थी परदेश से पढ़कर अपने स्थान पर लौट जाते हैं और फिर जब कोई कठिनता उनको आ पड़ती है तो उनका चित्त बड़ा ही व्यग्र होता है अतएव उस समय इस भाषा टीका से यदि कुछ भी उपकार हो जाय तो इससे बढ़कर और क्या बात है। अब अन्त में उक्त बाबू साहेब भ्रातृगण महाशय को अनेक धन्यवाद दिया जाता है कि जो इस समय में इस दुर्लभ ग्रन्थ ज्योतिष काव्यालङ्कार को बनवाय के और छपवाकर देशोन्नति के लिये उद्यत हैं और दान और दक्षिणा से पण्डितों को सन्तुष्ट करते हैं बाबू साहेबबहादुर ब्रह्मदेवसिंह सदाशिवजी इनको सकुटुम्ब चिरायु करें और इनकी और भ्रातृगणों की कीर्त्ति देश देशान्तरों में होवे।

आपका कृपाभिलाषी
पण्डित शिवदत्त ज्योतिषाचार्य्य
संस्कृताध्यापक पाठशाला बस्ती
जिला आजमगढ़।

॥ अथ ॥

श्रीः

विवाहवृन्दावनम् ।

सान्वयशिवकरीभाषाटीकासहितम् ।



पार्वतीपतिमीशञ्च कृष्णदत्ताभिधंगुरुम् ॥
नत्वाहं नित्यमानन्दं सदा शिष्यहितैषिणम् ॥
जनानां मंदबुद्धीनां हृदयेद्युतिकारिणीम् ॥
वक्ष्येशिवकरीटीकां शिवदत्तद्विजोवरः ॥ २ ॥
तुष्यन्तुसुजनाबुद्ध्वा विशेषान् मदुदीरितान्
अबोधेन हसन्तोमां तोषमेष्यन्ति दुर्जनाः ॥ ३

॥ वसन्ततिलकं छन्दः ॥ मू० श्लोकः ॥

श्रीशार्ङ्गिणोः सृजतुवोनवसन्निवेशः
क्लेशव्ययं चलवलन्नयनाञ्चलश्रीः ॥
यत्राञ्चलग्रथनमङ्गलमाचचार
शृङ्गारहारमणिकौस्तुभरश्मिगुम्फः ॥१॥

अन्वयः—श्रीशार्ङ्गिणोः (लक्ष्मीनारायणयोः) नवसन्निवेशः वः क्लेशव्ययं सृजतु (कथम्भूतः नवसन्निवेशः) चलवल-

नयनाञ्चलश्रीः; यत्र (यस्मिन्नवसन्निवेशे) शृङ्गारहारमणिकौस्तुभरश्मिगुम्फः अञ्चलग्रन्थनमङ्गलं आचचार (आचीर्णवान्) ॥ १ ॥

भाषा—श्रीशार्ङ्गिणोः (अर्थात् लक्ष्मीनारायण) का प्रथम समागम तुम सबों के क्लेश का व्यय करे (कैसा प्रथम समागम है कि) चलते और लौटते नयनों के अञ्चलों की अर्थात् नेत्रों के पक्ष्मों की श्री (अर्थात् शोभा) है जिसमें । जिस प्रथम समागम में शृङ्गार के हार और कौस्तुभमणि की रश्मि का गुथावं (तात्पर्य यह है कि शृङ्गारका हार श्रीलक्ष्मी जी के गले में है उसकी अञ्चलरूपी रश्मि और कौस्तुभमणि नारायण के गले में उसकी रश्मि (ज्योति) दुपट्टारूपी इन दोनों का जो परस्पर मिलना यही) अञ्चलग्रन्थनमङ्गल अर्थात् गंठबन्धन का कार्य सम्पादन करता भया ॥ १ ॥

॥ वसन्ततिलकं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

संवर्ग्य गर्गभृगुभागुरिरैभ्यगर्भ्यैः
सारं वराहमिहिरादिमतानुसारम् ॥
स्फारस्फुरत्परिमलाढ्यफलं विवाह-
वृन्दावनंविरचयामिविचाररम्यम् ॥२॥

अन्वयः—अहं विवाहवृन्दावनं (नामग्रन्थं) विरचयामि (कथम्भूतं विवाहवृन्दावनम्) स्फारस्फुरत्परिमलाढ्यफलम् (पुनः कथम्भूतं) विचाररम्यं (किं कृत्वा) गर्गभृगुभागुरिरैभ्यगीर्भ्यः यत्सारम् (पुनः) वराहमिहिरादिमतानुसारम् (यच्च) संवर्ग्य (एकीकृत्य) ॥ २ ॥

भाषा—मैं विवाहवृन्दावन नाम ग्रन्थ को बनाता हूं, कैसा है विवाहवृन्दावन ग्रन्थ कि विस्तार विकास और दोष समूहों से रहित फल हैं जिसमें; फिर कैसा है विचार से रम्य (अर्थात् नाना प्रकार मुनियों के वाक्यों के पूर्वपक्ष सिद्धान्त रूप सार और असार विचार उनसे से जो रमणीय है); (क्या करके) गर्ग भृगु भागुरि रैभ्य जो मुनि हैं इन सबों की वाणी का सार है और वराहमिहिरादि (आदि शब्द से लल्लश्रीपति श्रीधर इत्यादिकों) के मतानुसार जो सार उसे इकट्ठा करके ॥ २ ॥

अब विवाहनक्षत्र और विवाहसमय को वर्णन करते हैं ।

॥ वसन्ततिलकं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

ध्रुवानुराधामृगमूलरेवती
करंमघास्वातिरदूषणोगणः ॥
रवेरमीनामकरादिषड्गृही
करग्रहेमङ्गलकृन्मृगीदृशाम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—ध्रुवानुराधामृगमूलरेवतीकरं मघास्वातिः अदूषणोगया: रवेः अमीना मकरादिषड्गृही मृगीदृशां करग्रहे मङ्गलकृत्स्यात्॥ ३॥

भाषा—ध्रुवसंज्ञक रोहिणी, उत्तरा ३ अनुराधा, मूल, रेवती, हस्त, मघा, स्वाती ये ग्यारह नक्षत्र दोषरहित हों और सूर्य मीन को छोड़ कर मकरादि छः गृह में हों तो स्त्री का विवाह मङ्गलकरने वाला है॥ ३॥

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

प्राचेतसः प्राहशुभं भगर्क्षे
सीता तदूढा न सुखं सिषेवे ॥
पुष्यस्तुपुष्यत्यतिकाममेव
प्रजापतेराप स शापमस्मात् ॥ ४ ॥

अन्वयः—प्राचेतसः (१) (मुनिः) भगर्क्षं शुभं प्राह तस्मिन्नक्षत्रे ऊढा सीतासुखं नसिषेवे; पुष्यस्तुअतिकामम् पुष्यति (वर्द्धयति) एव अस्मात् (कारणात्ः) स पुष्यः विवाहे प्रजापतेः (सकाशात्) शापं आप (प्राप्तवान्) ॥ ४॥

भाषा—प्राचेतसमुनि ने (१) पूर्वा॰ फा॰ नक्षत्र को शुभ कहा है; तिस नक्षत्र में विवाहिता सीता ने सुख का सेवन नहीं किया; पुष्य नक्षत्र अत्यन्त काम को

(१) वाल्मीकि।

बढ़ानेवाला है इस कारण से उस पुष्य को विवाह में ब्रह्मा से शाप मिला (१) ॥ ४ ॥

॥ वसन्ततिलकं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

प्राविड्वसन्तोर्जसहः करग्रहः
परैरुदाहारि न हारि तन्मतम् ॥

---

(१) तात्पर्य ॥ पूर्वाफा० नक्षत्र में सीता का विवाह हुआ और वह सीता सुख का सेवन न कर सकी अर्थात् वन के दुःख और ससुर सास आदिकों के वियोग के दुःख और रावण के गृह कैद के दुःख और पति के वियोग के दुःख सीता को सहने पड़े इस कारण से पू० फा० नक्षत्र को लोगों ने निन्दित कहा है। ब्रह्मा का विवाह पुष्य नक्षत्र में हुआ। इसके बाद ब्रह्मा, शिवजी के विवाह में गये वहां पार्वतीजी का सुन्दर रूप देखकर उनका चेतस ध्यान जाता रहा तब ब्रह्मा का जो वीर्य वस्त्र के भीतर च्युत हुआ उसको दोनों हाथों से दबाया, इस कारण से वह वीर्य सह स्रकण होकर वस्त्र के छिद्रों से बाहर निकल पड़ा जिससे अंगुष्ठ प्रमाण साठ हजार बालखिल्य नामक मुनि पैदा हुए। तब ब्रह्मा ने ज्ञानदृष्टि से देखकर जाना कि पुष्य में विवाह करने का यह फल है। ऐसा मन में निश्चय करके उन्होंने पुष्य को शाप दिया (अर्थात् पुष्य में जिसका विवाह होगा उसको यही गति होगी) इस कारण से पुष्य विवाह में त्याग दिया गया है। ऐसा प्रमाण ब्रह्म पुराणादिकों में कहा है। तत्र शौनकः । अब्दचतुष्कात् कन्या गुरुकुलविद्वेषिणी भवति पुष्ये ॥ कृपणा पतिसंत्यक्ता वैधव्यं वा समाप्नोति ॥१॥ ॥ ४ ॥

रवेरवैसारिणमुत्तरायणं
पुरन्ध्रिपाणिग्रहणेपरायणम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—प्राविड् वसन्तः ऊर्जसहः करग्रहः परैः उदाहारि तन्मतं न हारि (कोऽत्रहेतुः) पुरन्ध्रिपाणिग्रहणे रवेः अवैसारिणमुत्तरायणं परायणं स्यात् ॥ ५ ॥

भाषा—प्राविड् अर्थात् वर्षाऋतु, वसन्तऋतु, कार्तिक और अगहन इन महीनों में पर आचार्यों ने अर्थात् वत्स पराशर आदिकों ने विवाह ग्रहण किया है, परन्तु यह मत रमणीय नहीं है, इसका कारण यह है कि स्त्री के विवाह में सूर्य को छोड़कर उत्तरायण में विवाह शुभ (१) ॥ ५ ॥

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

याम्योत्तराः प्रागपराश्च पञ्च
द्वे द्वे च रेखे रचयोद्विदिक्षु ॥
विदिग्द्वितीयार्गलिताग्नितारः
सहाभिजित् तत्रभवेद्भवर्गः ॥ ६ ॥

---

(१) स्त्रीनामानमृतुं विहाय मुनयोमांडव्यशिष्या जगुः, चैवं प्रोऽभ्रुपराशरः परिणये पौषश्चदुर्भाग्यदं ॥ त्वाषाढादिचतुष्टयं न शुभदं कैश्चित् प्रदिष्टं बुधैः ॥ पर्वसंकेतसंज्ञाविशेषः स्त्रीनामाऋतुः वर्षाऋतुः शरदृतुश्च ॥ ५ ॥

अन्वयः—याम्योत्तराः प्रागपराश्चपञ्च (पञ्च रेखा रचयेत्) विदिक्षु (कोणेषु) द्वे द्वे रेखे रचयेत् (इदम् पञ्च-शलाकाख्यं चक्रं स्यात्) तत्र (तस्मिन् चक्रे) सहाभिजित् विदिग्द्वितीयार्गलिताग्नितारः भवर्गोभवेत् ॥ ६ ॥

भाषा—दक्षिण, उत्तर, पूर्व और पश्चिम पांच पांच रेखा खीचनी चाहिये और कोणों में दो दो रेखा खींचनी (यह पंचशलाका चक्र होता है) तिस चक्र में अभिजित् के सहित किसी कोण को (दाहिनी तरफ की) दूसरी रेखा से कृतिका से नक्षत्रों का न्यास करना वह भवर्ग (अर्थात् पंचशलाका चक्र में नक्षत्रों का समूह) होता है ॥ ६ ॥

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

तस्मिन्नभिन्नाग्रगतं भिनत्ति
ग्रहोविवाहर्क्षमशेषमेव ॥
स्त्रीपुंसयोरायुरसौम्यवेधः
सौम्यव्यधोहन्तिसुखानिशश्वत् ॥७॥

अन्वयः—तस्मिन् (चक्रे) अभिन्नाग्रगतं विवाहर्क्षं अशेष एव ग्रहः भिनत्ति (यस्यां रेखायां ग्रहः तदग्रस्थनक्षत्रं वेधयतीत्याशयः) असौम्यवेधः स्त्रीपुंसयोः आयुः हन्ति सौम्यव्यधः शश्वत् (अनवरतं) सुखानि हन्ति ॥ ७ ॥

भाषा—तिस पञ्चशलाका चक्र में अभिन्न नक्षत्र के आगे एक रेखास्थ नक्षत्र विवाह का हो तो उस समस्त नक्षत्र को (अर्थात् चारों चरणों को) ग्रह वेध करते हैं (प्रयोजन यह है कि) पापग्रह का वेध हो तो स्त्री पुरुष की आयु का नाश करते हैं, शुभग्रह से वेध हो तो सुख को नाश करते हैं ॥ ७ ॥

अब अभिजित् का मान कहते हैं।

॥ रथोद्धता छन्दः, ॥ श्लोकः ॥

वैश्वदैवतचतुर्लवः श्रवः,
पञ्चभूलवइहाभिजिन्मितिः ॥
अन्यतः परिणयादयं व्यजः,
सप्तरेखवलयेविलोक्यते ॥ ८ ॥

अन्वयः—वैश्वदैवतचतुर्लवः श्रवः पञ्चभूलवः इह (वेधादिविषये) अभिजिन्मितिः स्यात् अयम् (अनन्तरोक्तः) वेधः परिणयात् अन्यतः (सर्वत्रव्रतबन्धवास्तुयात्रादिषु) सप्तरेखवलये (सप्तरेखाचक्रे) विलोक्यते ॥ ८ ॥

भाषा—उत्तराषाढ का अन्त चौथा भाग, श्रवण का आदि पन्द्रहवां भाग, यह वेधविचार में अभिजित् का प्रमाण होता है यह वेध विवाह को छोड़

कर सर्वत्र व्रतबन्धवास्तुयात्रादिकों में सप्तरेखा चक्र में विचारना चाहिये (१) ॥ ८ ॥

॥ श्लोकः ॥

स किलवेधविधिर्द्वितृ.... .

श्चरणयोर्मिथआदिचतुर्थयोः ॥

अशुभविद्धमशेषमुडुत्यजेत्

चरणगं शुभवेधमसंपदि ॥ ९ ॥

अन्वयः—सः (अनन्तरोक्तः) वेधविधिर्द्वितृतीययोः चरणयोः आदिचतुर्थयोर्मिथः (परस्परम्) स्यात् अशुभवेधम् उडु नक्षत्रम् अशेषम् (समस्तम्) त्यजेत् शुभवेधम् चरणगं असंपदि (असत्पत्तौ) त्यजेत् किल प्रसिद्धार्थे ॥ ९ ॥

भाषा—वह पूर्वोक्त वेधविधि दूसरे तीसरे चरण से प्रथम चतुर्थचरण से परस्पर होती है (अर्थात् किसी नक्षत्र के द्वितीय चरण में ग्रह है तो वह ग्रह वेधचक्र में वेधवाले नक्षत्र के तृतीय चरण को वेध करेगा, इसी प्रकार प्रथम चरण में रहनेवाला ग्रह चतुर्थ चरण को वेधता है) पाप ग्रह का वेध हो तो

(१) तथाच श्रीपतिः ॥ वधूप्रवेशे दाने च यात्रायां व्रतबन्धके ॥ सप्तरेखावलयकेविलोक्यं गणकोत्तमैः ॥ इसको आगे विशेष करके कहते हैं ॥ ८ ॥

सम्पूर्ण नक्षत्र को त्याग करना,, शुभ ग्रह का वेध हो तो वेध चरण को त्याग करना, जब असंपदि अर्थात् दूसरे नक्षत्र का अलाभ हो (२) ॥ ६ ॥

॥ श्लोकः ॥

यदशुभैर्गतगम्यमधिष्ठितं
यदपिचत्रिविधाद्भुतदूषितम् ॥
तरणितारकतोऽपिचतुर्दशं
तदखिलेपिखलं शुभकर्मणि ॥ १० ॥

अन्वयः—यत् अशुभैः गतगम्यंअधिष्ठितं च यत् अपि-च त्रिविधाद्भुतदूषितम् (नक्षत्रं) तरणितारकतः अपि चतुर्दशं (यन्नक्षत्रं) तत् अखिलेपिशुभकर्मणि (विवाहव्रतबन्धयात्रादौ) खलं पापं स्यात् ॥ १० ॥

भाष—जो नक्षत्र पाप ग्रह करके गत (अर्थात् छोड़ा हुआ) और गम्य है (अर्थात् आगामी आनेवाला) और जिसपर स्थिति हो और जो नक्षत्र दोनों प्रकार

---

(२) तथाच श्रीपतिः ॥ ऋक्षंसौम्यग्रहैर्विद्धंपादमात्रंपरित्यजेत् ॥ क्रूरैस्तुसकलंत्याज्यमितिवेधविनिश्चयः ॥ कोई आचार्य कहते हैं कि पाप ग्रह का वेध चरण त्याग करना परन्तु वह मत किसी २ का है सब का नहीं। इस कारण से पाप ग्रह का वेध नक्षत्र नहीं ग्रहण करना ॥ ६ ॥

के उत्पात (भूमि आकाश अन्तरिक्ष) से दूषित है और जो सूर्य के नक्षत्र से चौदहवें नक्षत्र हैं वे सब (विवाह व्रतबन्ध यात्रादिक) शुभ कार्यों में अच्छे नहीं हैं ॥ १० ॥

॥ श्लोकः ॥

रविनखैर्मितमर्कविधुन्तुदौ
मुनिभिरिन्दुरखण्डलमण्डलः ॥
हुतवहाकृतिषड्जिनदन्तिभिः
क्षितिसुतादभिलक्षयति ग्रहः ॥११॥

अन्वयः—अर्कविधुन्तुदौ रविनखैः मितम् (नक्षत्रं) लक्षयतः अखण्डलमण्डल इन्दुः मुनिभिः (लक्षयति) क्षितिसुतात् ग्रहः हुतवहाकृतिषड्जिनदन्तिभिः अभिलक्षयतीत्यर्थः ॥११॥

भाषा—सूर्य राहु जिस नक्षत्र पर हों उस नक्षत्र से बारहवें और बीसवें नक्षत्र को लात मारते हैं पूर्णमण्डल चन्द्रमा सातवें नक्षत्र को लात मारते हैं (अर्थात् पूर्णमासी के दिन जो नक्षत्र हो उससे सातवें चन्द्रगत नक्षत्र लत्ताहत त्याज्य है) तीसरे बाईसवें, छठे, चौबीसवें और आठवे नक्षत्र को लत्ता मारते हैं ॥ ११ ॥

॥ श्लोकः ॥

इति सतिद्युसदामभिलत्तने
यदनुलत्तनमुक्तमृषिव्रजैः ॥
तदुडुपश्चिमपूर्वविभागयो-
रनधिकाधिकदोषविवक्षया ॥ १२ ॥

अन्वयः—इति द्युसदामभिलत्तने सति यदलत्तनम् ऋषिव्रजैः उक्तम् तदुडु पश्चिमपूर्वविभागयोः अनधिकाधिकदोषविवक्षया (हेतुना) उक्तम् ॥ १२ ॥

भाषा—इस प्रकार ग्रहों के सन्मुख लत्तन में जो पृष्ठ लत्तन ऋषियों ने कहा है वह पश्चिम पूर्व विभाग के कम अधिक दोष हेतु से कहा है अर्थात् ग्रह व नक्षत्रों की चाल पूर्वाभिमुख है तो सन्मुख प्रेरित लात अग्रस्थ नक्षत्र के पृष्ठ में लगती है और पृष्ठ प्रेरित लात अग्रस्थ नक्षत्र के अग्र भाग में लगती है इस कारण अग्र लात से लक्षित जो नक्षत्र है उसका पूर्वार्द्ध में अधिक दोष, उत्तरार्द्ध में कम दोष है व पृष्ठ लात करके पूर्वार्द्ध में कम दोष उत्तरार्द्ध में अधिक दोष होता है इससे महर्षियों ने पृष्ठ लत्तन कहा है और ग्रन्थकर्ता ने समस्त लक्षित नक्षत्रों को निषेध मान सन्मुख लत्तन को कहा है॥ १२ ॥

अब लत्ताका फल कहते हैं।

॥ द्रुतविलम्बितं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

उडुनि निर्दलिते शुभलत्तया
न फलमस्ति बलस्य गलत्तया ॥
अशुभलत्तितमत्तितदूढयो
र्धनसुतानसुतापकरंपरम् ॥ १३ ॥

अन्वयः—उडुनि शुभलत्तया निर्दलिते बलस्य गलत्तया फलम् नास्ति अशुभलत्तितम् (यत् नक्षत्रं) तदूढयोः परम् असुतापकरं, धनसुतान् अत्ति (खादयति) ॥ १३ ॥

भाषा—नक्षत्र के शुभ ग्रह की लात से निर्दलित होने पर उस नक्षत्र का कहा शुभफल नहीं होता क्योंकि बल के ग्रह की लात लग जाती है। अशुभ ग्रहों के लत्तित नक्षत्र में जिन स्त्री पुरुष का विवाह होतो वह नक्षत्र उस दम्पती को अत्यन्त सन्ताप देता है और उनके धन, पुत्र, तथा प्राणों को नाश करता है ॥ १३ ॥

अब एकार्गल दोष कहते हैं।

॥ वसन्ततिलकं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

विद्धा त्रयोदशभिरूर्ध्वगतैकरेखा

खार्जूरिकं तदिह शीर्षभतोभचक्रे ॥
न्यस्ते सहाभिजिति तारकराजभान्वो
स्तुल्यर्क्षगम्यगतयोर्नयनार्गलेयम् ॥१४॥

अन्वयः–ऊर्ध्वगता एकरेखा त्रयोदशभिः विद्धा (सती) खार्जूरिकं (नाम) चक्रं स्यात् इह (अस्मिन्) चक्रे शीर्षभतः सहाभिजिति न्यस्ते (सति) तारकराजभान्वोः तुल्यर्क्षगम्यगतयोः इयं नयनार्गला स्यात् (अर्थात् परस्परदृष्टिपातसम्बन्धएकार्गलः स्यादित्यर्थः) ॥ १४ ॥

भाषा—ऊर्ध्वगत एक रेखा तेरह रेखाओं से वेधित हो तो खार्जूरिक नाम चक्र होता है इस चक्र में (वक्ष्यमाण) शीर्षवाले नक्षत्र से अभिजित् सहित भ चक्र न्यास करने से चन्द्रमा और सूर्य तुल्य गत गम्य नक्षत्र में हों तो यह नयन की अर्गला होती है अर्थात् एक नक्षत्र की जितनी संख्या गत हो उतनी ही संख्या गम्य कही जाती है । इससे पादवेध सूचित हुआ ॥ १४ ॥

अब शीर्ष नक्षत्र और एकार्गल का फल कहते हैं ।

॥ रथोद्धता छन्दः ॥ श्लोकः ॥

शीर्षभं भवतिरूपसंयुता

दुष्टयोगमितिरर्द्धिता सती ॥
शेषिणी यदि च सार्द्धविश्वयुङ्-
मङ्गलङ्गलतिसार्गले विधौ ॥१५॥

अन्वयः—दुष्टयोगमितिरूपसंयुता अर्द्धितासतीशीर्षभं भवति यदि च शेषिणी (तर्हि) सार्द्धविश्वयुक् (शीर्षभंस्यात्) सार्गलेविधौमङ्गलं गलति (नश्यतीत्यर्थ) ॥ १५ ॥

भाषा—(वक्ष्यमाण) दुष्ट योग संख्या में एक जोड़ के आधा करने पर उक्त चक्र में शीर्ष नक्षत्र होता है जो आधा करने पर शेषिणी नाम विषम संख्या हो तो १३ । ३० साढ़े तेरह जोड़ने पर शीर्ष का नक्षत्र होता है । उदाहरण—जैसे शूल योग ९ संख्या १ जोड़ने पर १० हुआ इसका आधा पांच अश्विनी से मृगशिरा पांचवां नक्षत्र शीर्ष का हुआ अब सम संख्या के उदाहरण करते हैं, जैसे योग गण्ड १० संख्या है १ जोड़ने पर ११ हुआ आधा ५ । ३० साढ़े पांच हुआ तो विषम संख्या होने से १३ । ३० साढ़ें तेरह और जोड़ दिया तो उन्नीस हुआ इसलिये अश्विनी से उन्नीसवां नक्षत्र मूल हुआ यही शीर्ष नक्षत्र हुआ । यही रीति सब जगह पर है । एकार्गल के सहित चन्द्रमा हो तो मङ्गल का नाश होता है

अर्थात् चं० सू० एक रेखा में वतर्मान हों तो सार्गल कहे जाते हैं ॥ १५ ॥

यहां पर एकार्गल में पर का मत कहते हैं ।

॥ इन्द्रवज्रा छन्दः ॥ श्लोकः ॥

त्यक्त्वा गैतष्यस्य परे तु हेतु-
मुज्झन्ति नक्षत्रमशेषमेव ॥
एकार्गलस्यैव हि सा च भङ्गी
सन्ध्यागतं यद्गलहस्तयान्ति ॥ १६ ॥

अन्वयः—परे तु (श्रीपत्यादयः) गतैष्यस्य हेतुं त्यक्त्वा एकार्गलस्य एव नक्षत्रम् अशेषम् उज्झन्ति (त्यजन्ति) एव हि (यस्मात्कारणात्) यत् सन्ध्यागतं (तत्) गलहस्तयन्ति (परिवर्जयन्ति) सा च भंगी (रचनायुक्तिः) ॥१६॥

भाषा—अपर श्रीपत्यादिक आचार्य गत और आगामी अर्थात् तुल्य से गम्य गत जितने हैं उनका कारण छोड़ कर एकार्गल का वेध नक्षत्र संपूर्ण त्याग करना निश्चय से कहते हैं किस कारण कि जो सन्ध्या काल में नक्षत्र प्राप्त है वह त्याग किया जाता है इसकी भी वही रचना युक्ति है । गत गम्य यथा पुष्य पुनर्वसु ॥ १६ ॥

अब कोई पापग्रह से ६ राशियों के अन्तर्गत नक्षत्र को नेष्ट कहते हैं जो कि चांद्र जामित्र में गत है।

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

क्रूरस्यभार्धान्तरमृक्षमेव-
मनिष्टमित्येषविशेषवादः ॥
पापाच्चतुःपञ्चलवेषु चान्द्रं
जामित्रमस्मात् खलु पर्यणंसीत् ॥१७॥

अन्वयः—क्रूरस्य भार्धान्तरं ऋक्षं अनिष्टं एवं इति एषः विशेषवादः (असौ यस्मात्) अस्मात् पापाच्चतुःपञ्चलवेषु चान्द्रं जामित्रं खलु पर्यणंसीत् ॥ १७ ॥

भाषा–क्रूरग्रह को (से) छः राशियों के अन्तर पर जो नक्षत्र है वह नेष्ट है यह किसी आचार्य का विशेष वचन है यह जिस कारण से छः राशियों के अन्तर पर नक्षत्र नेष्ट कहा है इस कारण से पापग्रह से ५४ लव में चन्द्र प्राप्त होने से जामित्र दोष निश्चय से होता है। (अर्थात् इससे यह सिद्ध हुआ कि यह कोई विशेष वाद नहीं है सार्वत्रिक है) ॥ १७ ॥

अब किसी २ ने पादवेध में युक्ति कही है, उसमें दोष लगता है।

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

क्षताहते दिग्धशरार्दितस्य
शस्तं मृगस्यामिषमेवमन्ये ॥
क्रूराङ्घ्रिवेधाय पदं वदन्ति-
तेनैवतेषांनिजपक्षहानिः ॥ १८ ॥

अन्वयः—दिग्धशरार्दितस्य मृगस्य आमिषं क्षतात् ऋते-शस्तं (स्यात्) एवम् अन्ये (केचित्) क्रूराङ्घ्रिवेधायपदं (विषयं) वदन्ति (परन्तु) तेन एव पदेन तेषां निजपक्षहानिः (स्यात्) ॥ १८ ॥

भाषा—विष बाण से वेधित मृग का मांस वेध स्थान को छोड़ कर और स्थान का अच्छा कहा है, इसी तरह से अन्य कोई आचार्य पापग्रह के चरण वेध के लिये विष कहते हैं परन्तु तिस विष से उन्हीं के पक्ष की हानि है। कैसे, सो अग्रिम श्लोक में कहते हैं ॥ १८ ॥

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

विश्लेषमायाति यथासुभिः स्वै-

रेणः शरेणैकदिशि क्षतोपि ॥
तथाङ्घ्रिवेधादपितारकाणां
क्रूरस्य नश्येद्बलरूपसम्पत् ॥१९॥

अन्वयः—यथा एणः (मृगः) शरेण एकदिशि क्षतः अपि स्वैः असुभिः विश्लेषं आयाति तथा क्रूरस्यअङ्घ्रिवेधात् अपि तारकाणां बलरूपसम्पत् नश्येत् ॥ १९ ॥

भाषा—जिस तरह बाण से एक तरफ वेध किया गया मृग निश्चय से अपने प्राणों को छोड़ देता है उसी तरह पापग्रह के चरणवेध से निश्चय से नक्षत्रों की बलरूप संपत् का नाश हो जाता है (इसी कारण से अशुभ वेध नक्षत्र को संपूर्ण त्याग किया है) ॥ १८ ॥

अब चंडायुध दोष को कहते हैं।

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

यदन्तगं हर्षणसाध्यशूल-
गण्डव्यतीपातकवैधृतीनाम् ॥
तत्रैव चन्द्रोडुनिचण्डमैश-
मस्त्रं पतेन्मङ्गलभङ्गलक्ष्म ॥ २० ॥

अन्वयः—हर्षणसाध्यशूलगण्डव्यतीपातकवैधृती यदन्तगं तत्र एव चन्द्रोडुनि चयहं ऐशम् अस्त्रं पतेत् (कथम्भूतं) मङ्गलघ्नम् (तत्तथा मङ्गलभञ्जकमित्यर्थः) ॥ २० ॥

भाषा—हर्षण, साध्य, शूल, गण्ड, व्यतीपात, वैधृति इन योगों का जिस नक्षत्र में अन्त अर्थात् समाप्ति हो उसी नक्षत्र में चन्द्र नक्षत्र हो तो शिव जी का उग्र अस्त्र पतन होता है। कैसा है वह अस्त्र कि मङ्गल का नाश करनेवाला होता है (१) ॥२०॥

---

(१) इसमें यह विशेष जानना चाहिये कि ऐसे अर्थ करने से नारद, वशिष्ठ पराशरादिकों के मतसे विरुद्ध पड़ता है क्योंकि उन लोगों के ग्रन्थों में इस ढङ्ग का पात योग लगाया है कि सूर्य जिस जिस नक्षत्र में हो उस नक्षत्र से लेकर श्लेषा, मघा, रेवती चित्रा, अनुराधा श्रवण इन नक्षत्रों तक गिनने से जितनी संख्या हो अश्विनी से लेकर उतनी ही संख्या का दिननक्षत्र हो तो पात दोष दूषित होता है। उदाहरण यथा—:मूल नक्षत्र में सूर्य है उससे लेकर धनिष्ठा तक गिनने से पांच संख्या हुई अब अश्विनी से मृगशिरा पांचवां नक्षत्र हुआ यही पात दूषित हुआ। यदन्तगमिति। इतने शब्द मात्र से इस चाल के अर्थ लगाने से पूर्वोक्त मुनियों के वचन से तुल्यता आती है (यदन्तगमिति गण् संख्याने धातो च अर्थात् विष्कुंभादि गणनया यत् संख्यापन्नगं अवसानर्क्षं तत्परिमितं सूर्यनक्षत्रात् तावत् गणनीयं ततः अश्विनीतः गणनीयं अश्लेषनक्षत्रं पातितं) यथा विष्कुम्भ से गणने से जितनी

अथ चण्डायुधका सम्भव व त्यागभागादि
कहते हैं।

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

गंशूविवठ्यातिषुषट्शरात्रि-

संख्या पर इनका अन्त अर्थात् समाप्ति हो उन योगों का जो विराम अङ्क है उतनी परिमित सूर्य नक्षत्र से गिनना जितनी संख्या हो उतनी अश्विनी से गिनना जो संख्या आवेगी उसी नक्षत्र में पात दोष होगा। और जो कोई कहे कि यदन्तगं इससे संख्या योगों के अवसान की संख्या आती है परन्तु सूर्य के नक्षत्र से गणना फिर अश्विनी से गणना उतनी संख्या यह जो लिखी है इस शब्द से नहीं निकलता है तो उत्तर इसका यह है कि इस ज्योतिष शास्त्र में जितने मुहूर्तादिकों का विचार है सो सूर्य नक्षत्र चन्द्र नक्षत्र के अधीन है भला कौन ऐसा चक्र है कि जिसमें सूर्य नक्षत्र और अश्विनी नक्षत्र का प्रयोजन न पड़े यह बात तो प्रसिद्ध ही है। कृत्स्न ज्योतिषशास्त्रज्ञाता तो इसमें आशङ्का कर ही नहीं सकते क्योंकि सूर्य नक्षत्र तो प्रधान है। और सब अ- वैसाही करना चाहिये कि जिससे और ग्रन्थों से भिन्न न पड़े और जहां ऐसा हो वहां पर पूर्व के विशेष और अविशेष का विचार कर जो विशेष हो उसको मानना चाहिये। यहां रामाचार्य और केशवाचार्य का नारद वशिष्ठादि से विशेष है अर्थात् नहीं इस- लिये पूर्व कहे हुए ऋषियों का वाक्य माननाही चाहिये और मानना न मानना तो उसके अधीन है। यह टीका किसी का हठ नहीं छोड़ा सकती जैसे बधिर से बधिर है॥ २०॥

त्रिनन्दषट्काघटिकाः क्रमेण ॥
इयमां त्यजेत्पारिघमिन्दुभान्वोः
पर्वण्यतीते दिनसप्तकं च ॥२१॥

अन्वयः—गं-शू-वि-व-व्या-अतिषु (एषु योगेषु) क्रमेण-षट्शरत्रिनन्दषट्का घटिकाः (आदिमाः) त्यजेत् पारिघं आदिमं (अर्धं) त्यजेत् इन्दुभान्वोः पर्वणि अतीते दिनसप्तकं त्यजेत् ॥ २१ ॥

भषा—गण्ड, शूल, विष्कुम्भ, वज्र, व्याघात, अतिगण्ड इन योगों में क्रम से ६ । ५ । ३ । ३ । ९ । ६ (छः पांच तीन तीन नव और छः) घटी आदि में छोड़ना और परिघ योग के आदि में आधा त्याग करना। चन्द्र सूर्य ग्रहण के दिन से सात दिन पर में त्याग करना ॥ २१ ॥

अब ग्रहणादिसम्बन्धी नक्षत्रदोष को
कहते हैं ।

॥ शा० छन्दः ॥ श्लोकः ॥

यस्मिन्नृक्षेवीक्ष्यतेसैंहिकेयो
भेदस्ताराखेटयोर्यत्रवास्यात् ॥

आषण्मासन्तत्रलग्नेन्दुभाजि-
भ्राजिष्णुस्यान्नोशुभंकर्मकिञ्चित् ॥२१॥

अन्वयः—यस्मिन् ऋक्षे सैंहिकेयः वीक्ष्यते वा ताराखेटयोः यत्र भेदः (योगः स्यात् तत्र नक्षत्रे) आषण्मासं लग्नेन्दुभाजि किंचित् शुभं कर्म भ्राजिष्णु शुभं न स्यात् ॥ २० ॥

भाषा—जिस नक्षत्र में राहु की दृष्टि हो अथवा भौमादि ग्रहों का जिससे नक्षत्र में भेद (अर्थात् योग हो वह नक्षत्र छः मास पर्यन्त चन्द्रगत हो वा लग्नगत हो तो कोई शुभ कर्म शुभ नहीं होता है ॥ (१) २१ ॥

अब त्याज्य नक्षत्र को कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

उत्पातपापग्रहमुक्तमृक्षं
यदीन्दुराक्रम्यपुनर्भुनक्ति ॥

(१) उदाहरण—अश्विनी में ग्रहण लगा उस समय मेष लग्न १३ । २० तेरह अंश बीस कला करके है तो वही लग्नेन्दु-में भी भाजि अर्थात् अश्विनी लग्नस्थ चन्द्र हुआ इसी तरह और नक्षत्रों के जानना । ऐसा प्रमाण व्यवहार तत्व में लिखा है (उत्पातैश्चविधैर्हतं ग्रहणगंचामासषट्कांतथेति) ॥ २१ ॥

तदातदर्हं सकलेषु कर्मसु-
त्यजेत्समक्रान्तितनूरवीन्द्वोः ॥२३॥

अन्वयः—उत्पातपापग्रहमुक्तं ऋक्षं यदि इन्दुः (चन्द्रः) आक्रम्य पुनः भुनक्ति तत् तदा (ऐषु) सकलेषु शुभकर्मसु अर्हं (योग्यं स्यात्) रवीन्द्वोः समक्रान्तितनू त्यजेत् ॥ २३ ॥

भाषा—उत्पात अर्थात् भूमि दिव् अन्तरिक्ष; पापग्रह अर्थात् रवि, भौम, शनि और पापग्रहयुक्त बुध इन करके छोड़े हुए नक्षत्र को यदि चन्द्रमा आक्रमण करके फिर से भोग करे अर्थात् दूसरी आवृत्ति में जो इस नक्षत्र पर आ जाय तो यह नक्षत्र सब शुभ कार्यों में ग्रहण करने योग्य है रवि और चन्द्र की समक्रान्ति तनु को त्याग करना ॥ २३ ॥

अब क्रान्तिसम्भव का लक्षण व दोषापवाद कहते हैं ।

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

त्रिभागशेषेध्रुवनाम्निचैन्द्रे
त्र्यंशेगतेसम्प्रतिसम्भवोऽस्य ॥
मानार्धयोगाधिकमिन्दुभान्वोः
क्रान्त्यन्तरं चेन्नतदैषदोषः ॥ २४ ॥

अन्वयः—ध्रुवनाम्नियोगेत्रिभागशेषे ऐन्द्रे च त्र्यंशे गते अस्य (क्रान्तिसाम्यलक्षणस्य) सम्प्रति सम्भवः स्यात् इन्दुभान्वोः क्रान्त्यन्तरं चेत् मानार्धयोगाधिकम् तदा एषः दोषः न स्यात् ॥ २४ ॥

भाषा—ध्रुव नाम योग तीन भाग शेष रहने पर और इन्द्र नाम योग तीन भाग बीत जाने तथा व्यतीपात वैधृति योग के आसन्न होने से इनको भी ग्रहण कर लेना यह क्रान्तिसाम्य का लक्षण होता है। चन्द्र सूर्य की क्रान्ति का अन्तर योगों के मान के आधे भाग से अधिक हो तो इसका दोष नहीं होता है ॥ २४ ॥

अब विवाह में शुभ देनेवाले नक्षत्र को कहते हैं।

॥ द्रुतविलम्बितं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

स्फुरदद्रूषणभूषणकान्तयो
यदिभवन्तिमृगाङ्कमृगीदृशः ॥
करमवाप्य वरः सुतनोस्तदा
शुभरसंभरसम्भृतमश्नुते ॥ २५ ॥

अन्वयः—मृगाङ्कमृगीदृशः (चन्द्रनक्षत्रस्य) यदिस्फुरदद्रूषणभूषणकान्तयोभवन्तिः तदासुतनोः (वध्वाः) करम् अवाप्य वरः भरसम्भृतं शुभरसं अश्नुते (प्राप्नोति) ॥२५ ॥

भाषा—चन्द्रनक्षत्र जो पाप वेधादि दोष से रहित और शुभ दृष्ट्यादि सहित ऐसा शोभयुक्त हो तो वधू के हस्त को वर प्राप्त करके भार से परिपूर्ण शुभ रस को प्राप्त करता है अर्थात् सुन्दर भोग धन धान्य पुत्र पौत्रादियुक्त होता है ॥ २५ ॥

इति श्रीकाशिखण्डान्तर्गतदेवडीहग्रामनिवासिशाण्डिल्यवंशावतंसविविधशास्त्रपारङ्गतपण्डितश्रीलालबहादुरत्रिपाठिपुत्रज्योतिर्वित्पण्डितशिवदत्तत्रिपाठिविरचितायां विवाहवृन्दावनसान्वयशिवकरीभाषटीकायां नक्षत्रशुद्धिः प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १ ॥

अथ कालमीमांसाध्यायः २

अब राशिमिलाप कहते हैं ।

॥ रथोद्धता छन्दः ॥ श्लोकः ॥

जन्मलग्नमिदमङ्गमङ्गिनां
मेनिरेमनइतीन्दुमन्दिरम् ॥
सौहृदंहिमनसोर्नदेहयो-
र्मेलकस्तदयमिन्दुगेहयोः ॥ १ ॥

अन्वयः—अङ्गिनां इदम् जन्मलग्नं अङ्गंशरीरं मेनिरे इन्दुमन्दिरं मन इति (मेनिरे) हि (यस्मात्) मनसोः सौहृदं (स्यात्) न देहयोः तत् (तस्मात्) इन्दुगेहयोः अयं मेलकः (स्यात्)॥१॥

भाषा—प्राणियों का यह जन्मलग्न शरीर माना गया है चन्द्रमा यह मन माना गया है जिस कारण से मन से मैत्री होती है देह से नहीं तिसी कारण से चन्द्र के दोनों गृह (अर्थात् पुरुष के जन्म चन्द्रगत राशि से वैसे ही स्त्री के जन्म चन्द्रगत राशि से) यह मेलक अर्थात् गणना होती है॥१॥

॥ श्लोकः ॥

चन्द्रराशिवशमवेसौहृदं
सूक्ष्मयोरपिनकिनवांशयोः॥
एवमस्तुमकरांशगेरवौ
कर्कटेऽपिकिमुनोत्तरायणम्॥२॥

अन्वयः—सौहृदं चन्द्रराशिवशगं एव सूक्ष्मयोः नवांशयोः अपि किं न (स्यात्) एवम् अस्तु मकरांशगे रवौ कर्कटे अपि उत्तरायणं किमु न (स्यात्)॥२॥

भाषा—मैत्री चन्द्र राशिवश है तो सूक्ष्मनवांश दोनों की क्यों नहीं ग्रहण कियी जाती है (प्रति-

वादी कहता है कि) तुम्हारा कहना ठीक है लेकिन मकर की नवांशा में जब सूर्य होते हैं तो कर्क राशि के रहते उस रवि को उत्तरायण क्यों नहीं मानते हो। (इस कारण से चन्द्रराशि के अधीन मेलक है नवांशा से नहीं इसकी तात्पर्य से यही सिद्ध होता है ॥ २ ॥

॥ श्लोकः ॥

मासषट्कमयनं च दक्षिणा-
दित्यएतितदितिश्रुतिर्जगौ ॥
मूलसंक्रमसमां विवस्वतः
स्वस्वभङ्गिमृतवोऽपिबिभ्रति ॥ ३ ॥

अन्वयः—मासषट्कंदक्षिणायनं आदित्यः एति तत् इति श्रुतिर्जगौ विवस्वतः मूलसंक्रमसमां ऋतवः अपिस्वस्वभङ्गिम् बिभ्रति ॥ ३ ॥

भाषा—छः मास ६ दक्षिणायन सूर्य रहते हैं तिस कारण इस प्रकार से वेद कहता है सूर्य मूल संक्रान्ति अर्थात् मेषादि राशियों में जब होते हैं तो बसन्तादि ऋतुएं भी अपने २ चिन्ह ग्रहण कर लेती हैं (यह दक्षिणायन उत्तरायण का ऋतुओं से भी

प्रत्यक्ष प्रमाण निर्विवाद है । इस कारण से राशिमैत्री सिद्ध भई) ॥ ३ ॥

॥ श्लोकः ॥

किंदिनर्क्षविरहेकरग्रहो
नेष्यतेतदुदयक्षणेष्वपि ॥
स्थूलमेवमखिलंजगत्फलं
तद्विशेषयतिसूक्ष्मतागतिः ॥ ४ ॥

अन्वयः—दिनर्क्षविरहे करग्रहः तत् उदयक्षणेषु अपि- किं न इष्यते अखिलं जगत्फलं स्थूलं एव तत् स्थूलसूक्ष्मता- गतिः विशेषयति (विशेषतांकरोतीत्यर्थ) ॥ ४ ॥

भाषा—विवाह नक्षत्र के अभाव में उसके मुहूर्त में विवाह क्यों नहीं कहा है (कारण यह है कि) सम्पूर्ण संसार के स्थूल फल को सूक्ष्मगति विशेष करती है (अर्थात् सूक्ष्म विचार स्थूल विचार को विशेषता को प्राप्त करता है) ॥ ४ ॥

॥ श्लोकः ॥

अव्यवस्थितिरितिप्रतिवेलं
तत्तदूहनविकल्पसमूहैः　॥

स्थूलमप्यनुसरन्तिकृतीन्द्राः
केवलं न रमणीयमणीयः ॥ ५ ॥

अन्वयः—प्रतिवेलं तत्तदूहनविकल्पसम्मूहैः अव्यवस्थितिः (स्यात्) इति (हेतोः) कृतीन्द्राः स्थूलं अपि अनुसरन्ति-केवलं अणीयः न रमणीयम् ॥ ५ ॥

भाषा—प्रति वेला का वितर्क और उसका विकल्प अर्थात् त्रुटि आदि इन सबों का समूह अव्यवस्थित होता है तात्पर्य्य यह है कि राशि नवांश त्रिंशदंश द्वादशांश जिनांश षष्ठांश इत्यादि सूक्ष्मों के विचार में अवसान अर्थात् समाप्ति हो नहीं मिलती है इस कारण से गर्गादिक मुनियों ने स्थूल फल अर्थात् मास दिन तिथ्यादिकों का अनुसरण किया है केवल सूक्ष्म फल रमणीय नहीं है ॥ ५ ॥

इस तरह से सूक्ष्म फल अकिञ्चित् हुआ सो आगे के श्लोक में कहते हैं ।

॥ स्वागाता छन्दः ॥ श्लोकः ॥

भिन्नभिन्नफलभाग्भुविभूया-
नेकधिष्ण्यदिनजोऽपिजनोऽयम् ॥

सूक्ष्मताऽपि ननु तेन गरिष्ठा
सा च मूलमनुरुध्यविधेया ॥ ६ ॥

अन्वयः—भुवि अयम् भूयान् जनः एकधिष्ण्यगदिनजः अपि भिन्नभिन्नफलभाग्भवतितेनसूक्ष्मता अपिगरिष्ठास्यात् ननु स च सूक्ष्मता मूलम् अनुरुध्य विधेया स्यात् ॥ ६ ॥

भाषा—पृथ्वी में बहुत मनुष्य एक नक्षत्र में एक दिन जन्म लेते हैं परन्तु भिन्न भिन्न फल के भोगी होते हैं तिस कारण से सूक्ष्म विचार निश्चय श्रेष्ठ है (इसके तात्पर्य्य से यही सिद्ध हुआ कि) स्थूल का त्याग सूक्ष्म का ग्रहण करना चाहिये लेकिन निश्चय करके वह सूक्ष्मता स्थूल के अनुरोध से ग्रहण है (इसलिये स्थूल के अनुसार सूक्ष्म का ग्रहण है) ॥ ६ ॥

स्थूल के अनुसार कैसे सूक्ष्मता ग्राह्य है इसके अर्थ को सूक्ष्मता करके अनवस्था को दिखलाते हैं ।

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

सूक्ष्मोनवांशाद्द्विरसांशएव
त्रिंशल्लवस्तल्लवतोऽपिसूक्ष्मः ॥

ततोऽपिलिप्तेत्यवलिप्तवाचां
दृगेतु कस्यां नियतौ समस्याम् ॥७॥

अन्वयः—सूक्ष्मः नवांशः (तस्मात् नवांशात्) द्विरसांश एवसूक्ष्मः तत् लवतः अपि त्रिंशल्लवः सूक्ष्मः ततः अतिलिप्ताइति अवलिप्तवाचां दृक्कस्यांनियतौसमस्याम् एतु (गच्छतु) ॥ ७ ॥

भाषा—सूक्ष्म नवांश से द्वादशांश सूक्ष्म है द्वादशांश से त्रिंशांश सूक्ष्म है तिससे कला, इस प्रकार से मूर्ख हुए पुरुषों की दृष्टि किसकी नियत की पूर्ति में प्राप्त है (इससे यह सिद्ध हुआ कि सूक्ष्म विचार करनेवालों की दृष्टि का कहीं अवसान नहीं होता) (१) ॥ ७ ॥

---

(१) वोपदेवकृतभागवते ॥ काल के विशेष लक्षण कहते हैं सबे विशेषणों का जो अन्त, जिसका विभाग न हो सके. किसी में मिले नहीं, सदा रहे, जिससे और कोई वस्तु सूक्ष्म न हो, वह परमाणु जानो, जिन परमाणुओं से मनुष्यों को ऐसा भ्रम होता है कि एक है, सत्यही है जो पदार्थ अपने स्वरूप में स्थित है वह केवल अत्यन्त बड़ा है, जिसके कोई विशेषण नहीं; निरन्तर है। हे गणक। सूक्ष्म स्थूल रूप से ऐसे काल का अनुमान किया है सुन्दर स्थिति की व्याप्ति से विभु भगवान् सदाशिव अव्यक्त हैं सो माया को भोगते हैं, सो काल परमाणु है, जो परमाणु भाव को

इन सूक्ष्म कालों का सिद्धान्त से प्रमाण कहते हैं।

॥ इन्द्रवज्रा छन्दः ॥ श्लोकः ॥

अत्यंतसूक्ष्मः स किलैकदेशो

भोगता है, उससे भी अधिक भोगी सो काल अत्यन्त बड़ा है इसका यह अर्थ है कि ग्रह, नक्षत्र, ताराचक्र इत्यादि से सूर्य का पर्यटन कहते हैं तहां सूर्य जितने परमाणु के देश को उल्लङ्घन करें उस काल का नाम परमाणु है, जितनो द्वादश राशि रूप होकर सब ब्रह्माण्ड में विचरते हैं, परममहान् सम्वत्सर कहाता है, इस क्रम से युग मन्वन्तर आदि क्रम से द्विपरार्द्ध अन्त काल होता है। सब काल का विभाग मुहूर्तचिन्तामणि की सुबोधनी टीका में लिखा है, दो अणु से परमाणु होता है और तीन परमाणुओं का एक त्रसरेणु होता है, वह त्रसरेणु झरोखों में सूर्य की किरणों से देखाई देता है, जो अति सूक्ष्म है पृथ्वी में नहीं आता है, आकाश को उड़ता दीखता है, तीन त्रसरेणुओं की एक त्रुटि, त्रुटि उसे कहते हैं जितने काल में चुटकी बजावे, सौ बेर चुटकी बजाने से जो काल व्यतीत हो उसे वेध कहते हैं तीन वेधों का एक लव होता है, तीन लवों का एक निमेष और तीन निमेषों का एक क्षण कहलाता है पांच क्षणों की एक काष्ठा बनती है, १५ काष्ठाओं से १ लघु होता है १५ लघु की १ नाड़ी होती है (इसे दण्ड भी कहते हैं) और दो नाड़ियों का नाम मुहूर्त है, ६ दण्ड अ-

येनाखिलानां भिदुरा फलर्द्धिः ॥
नास्मादृशां दृग्विषयः स तस्मा-
न्मूलानुकूलाव्यवहारसिद्धिः ॥८॥

अथवा ७ दण्ड का १ प्रहर वा याम होता है, सो याम दिन का चौथा भाग है, और रात्रि का भी चौथा भाग होता है। दिन रात के घटने बढ़ने का यह नियम है कि घटने में ६ घड़ी का और बढ़ने में ७ घड़ी का अन्तर समझना चाहिये क्योंकि, नित्य नित्य दिन और रात्रि के घटने बढ़ने के गिनने में बहुत परिश्रम है इसलिये ६ और ७ घड़ी का मोटा प्रमाण समझ लिया, एक घड़ी का अनुमान कहते हैं ६ पल भर ताम्बे का पात्र हो सो भास्कराचार्य ने सिद्धान्तशिरोमणि में लिखा है, "दशार्धगुञ्ज-मित्यादि" से समझ लेना—ऐसे ६ पल भर तांबे का पात्र बनाना और उस पात्र में ४ मासे सोने की शलाका बना कर उस शलाका से उस पात्र में छिद्र करना, उस छिद्र से जितने समय में प्रस्थ भर जल के प्रवेश होने से वह पात्र जल में डूब जावे, उतने समय को घड़ी कहते हैं, सिद्धान्तशिरोमणि के अनुसार ही प्रस्थ का प्रमाण कहते हैं। हाथ भर ऊंचा, हाथ भर चौड़ा, हाथ भर लम्बा, चौकोण पात्र को खारी कहते हैं, और इसका सोलहवां भाग द्रोण कहाता है और द्रोण के चतुर्थ भाग को आढ़क कहते हैं और आढ़क के चतुर्थ भाग का नाम प्रस्थ है प्रस्थ जल उसको जानना चाहिये कि जो खारी भर जल के सोलहवें भाग के चौथे

अन्वयः—स किल एकदेशः अत्यन्तसूक्ष्मः येन अखिलानां फलर्द्धिः भिदुरा (स्यात्) स अस्मादृशां दृग्विषयः न (स्यात्) तस्मात् व्यवहारसिद्धिः मूलानुकूला स्यात् ॥ ८ ॥

भाषा—वह सूक्ष्म काल के एक देश अर्थात् एक भाग में अत्यन्त सूक्ष्म है अर्थात् अति दुर्लक्ष्य है जिस कारण से सम्पूर्ण प्राणियों की फलसंपत्ति भिन्न भिन्न होती है वह सूक्ष्म काल इस कारण से चर्म चक्षुवाले पुरुषों के दृष्टिगोचर नहीं होता, तिस वजह से व्यवहारसिद्धि स्थूल के अनुकूल होती है। उसके लिये नारदजी का प्रमाण है (१) ॥ ८ ॥

भाग का चौथा भाग है चार २ प्रहर के मनुष्यों के दिन रात होते हैं १५ दिन का शुक्लपक्ष १५ दिन का कृष्णपक्ष इत्यादि समस्त ज्योतिर्विद जाने यह पुराणों का सिद्धान्त है सो भी ठीक है हमारे ज्योतिषशास्त्र से कुछ विशेष भेद नहीं है।

(१) यथा—लक्षे नरे सुखासीनेयावत्स्पन्दति लोचनम् ॥ तस्य त्रिंशत्तमोभागस्तत्परः परिकीर्तितः ॥ तत्पराच्छतशोभागस्त्रुटिरित्यभिधीयते ॥ त्रुटेः सहस्रभागोयोलग्नकालः सउच्यते ॥ देवोऽपि तं न जानाति किं पुनः प्राकृतोजनः ॥ सकालोऽप्यन्यकालोवापूर्वकर्मसंक्रमाद्भवेत् ॥ निमित्तमात्रं दैवज्ञस्तद्दशाशुभाशुभम् ॥ इतिसिद्धान्तयति ॥ ८ ॥

अब स्थूल सूक्ष्म दोनों के समाधान कहते हैं।

॥ मालिनी छन्दः ॥ श्लोकः ॥

इतिसतियदिमूलेसूक्ष्मभावांशलब्धि-
स्तदखिलमपिसिद्धंनास्तिचेन्मूलसम्पत् ॥
तदुभयलवनाशोदुर्गमत्वादणूनां
परिणतिरितिरूढाकालमीमांसया नः॥१॥

अन्वयः—इति सति यदिमूलेसूक्ष्मभावांशलब्धिः तत् अखिलं अपि सिद्धम् (फलितम्) चेत् मूलसम्पत् नास्ति तत् (तदा) उभयलवनाशः स्यात् (कस्मात्) अणूनाम् दुर्गमत्वात् इतिकालमीमांसया नः परिणतिः रूढा (स्फुरिता) ॥

भाषा—(ऊपर जो वर्णन हो चुका है) ऐसा होने में स्थूल में सूक्ष्म भावांश की प्राप्ति हो तो संपूर्ण सिद्धि फल कहना (इससे यह सिद्ध हुआ कि स्थूल को और स्थूलान्तर्गत सूक्ष्म को भी विचार करना चाहिये) (अब इसका बाधक कहते हैं) यदि मूलसम्पत् अर्थात् स्थूल लब्धि नहीं मिले तब दोनों लव यानी स्थूल सूक्ष्म का नाश होता है। किस कारण से कि सूक्ष्म के दुर्गमत्व होने से (इससे यह सिद्ध हुआ कि स्थूलान्तर्गत सूक्ष्म का विचार करना चाहिये अतएव दोनों के नवांश से मेलकर

होता है परन्तु आचार्य का यह मत है कि नवांश मेलक किसी के यहां व्यवहार में नहीं । है यह सब कहने का यही प्रयोजन है कि विना पूर्वापर के जनाये आशय नहीं खुलता है) परन्तु यह काल विचार से हमारी बुद्धि में नहीं स्फुरित होता है (अन्त में इन सब विवादों से चन्द्रराशिगत ही मेलक सिद्ध हुआ) ॥ ६ ॥

इति श्रीकाशिखण्डान्तर्गतभृगुक्षेत्रसमीपदेवडीहग्रामनिवासिशाण्डिल्यवंशावतंसविविधशास्त्रपरमपण्डितश्रीलालबहादुरत्रिपाठिपुत्रज्योतिर्विदत्पण्डितशिवदत्तत्रिपाठिविरचितायांविवाहवृन्दावनसान्वयशिवकरीभाषाटीकायांकालमीमांसाध्यायोद्वितीयः समाप्तः ॥ २ ॥

॥ मेलकाध्यायः ३ ॥

राशिमेलक की उत्पत्ति कहते हैं ।

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

व्ययेन वित्तं न तपस्यपत्यं
नायुर्द्विषत्येववधूवराणाम् ॥

द्विर्द्वादशः पञ्चनवाष्टषष्ठो
जन्मर्क्षयोः सख्यविधिर्न दृष्टः ॥१॥

अन्वयः—वधूवराणां जन्मर्क्षयोः द्विर्द्वादशः पञ्चनवाष्टषष्ठः सख्यविधिर्न दृष्टः (यतः) व्यये वित्तं न तपसि अपत्यं न द्विषति एव आयुः न स्यात्॥ १ ॥

भाषा—स्त्री पुरुषों की जन्मराशि से परस्पर द्वितीय द्वादश, पञ्चम, नवम, अष्ट, और षष्ठ राशि हो तो मैत्री नहीं देखना कारण यह है कि खर्च होने से धन नहीं होता तप करने में सन्तान नहीं होता और शत्रु रहते आयु नहीं होती है॥ १ ॥

अब इसके अपबाद को कहते हैं और तारा विचार को दिखाते हैं।

॥ स्वागाता छन्दः ॥ श्लोकः ॥

दृश्यते सुहृदभिन्नपतित्वं
क्षेत्रयोस्तदखिलेष्वपिमेलः॥
भीरुभादचलपञ्चतृतीया
शोकवैरविपदे वरतारा ॥ २ ॥

अन्वयः—(यदा) क्षेत्रयोः सुहृदभिन्नपतित्वंदृश्यते

तत्तदा अखिलेषु (द्विद्वादशादिषु) अपि मेलः (स्यात्) भी-हभात् अचलपञ्चतृतीयावरताराशोकवैरविपदे (स्यात्) ॥

भाष—जो दोनों के राशिपति से मैत्री हो स्वामी एक हो तब संपूर्ण द्विर्द्वादशादिक निश्चय करके मेल होता है स्त्री के नक्षत्र से ७ । ५ । ३ पुरुष को तारा हो तो क्रम से शोक वैर और विपद् को देनेवाली है (१) ॥ २ ॥

॥ श्लोकः ॥

नक्षत्रमेकंयदिभिन्नराश्यो
रभिन्नराश्योर्यदिभिन्नमृक्षम् ॥
प्रीतिस्तदानींनिविडानृनार्यो-
श्चेत्कृत्तिकारोहिणिवन्ननाडी ॥ ३ ॥

अन्वयः—यदि (नृनार्योः) भिन्नराश्योः नक्षत्रं एकं यदिवाअभिन्नराश्योः भिन्नमृक्षं तदानी निविडां नृनार्योः प्रीतिः (स्यात्) चेत् कृत्तिका रोहिणीवत् तदा नाडी दोषो न स्यात् ॥ ३ ॥

---

(१) अत्रप्रमाणमाह ॥ न वर्णशुद्धिर्नगणोनयोनिर्द्विर्द्वादशेचैव षडष्टकेऽपि ॥ वरेऽपिदूरेयदिवात्रिकोणेमैत्रीयदिस्यात् शुभदोविवाहः ॥ पुनः द्वितीयप्रमाणमाह ॥ पुंऋक्षात्गणयेद्यावत्कन्यर्क्षंकन्यभादपि ॥ वरभंनवहृच्छेषं तारा सन्तिपरस्परम् ॥ २ ॥

भाषा—यदि (पुरुष स्त्री की) राशि भिन्न हो नक्षत्र एक हो अथवा राशि एक हो नक्षत्र भिन्न हो तब अत्यन्त करके पुरुष स्त्री की परस्पर प्रीति होती है जो कृतिका रोहिणी की तरह हो तो नाड़ी दोष नहीं लगता है ॥ ३ ॥

॥ श्लोकः ॥

पराशरः प्राह नवांशभेदा-
देकर्क्षराश्योरपिसौमनस्यम् ॥
एकांशकत्वेपिवसिष्ठशिष्यो
नैकत्रपिण्डेकिलनाडिवेधः ॥ ४ ॥

अन्वयः—एकर्क्षराश्योः अपिनवांशभेदात् सौमनस्यम् (सुहृत्वं) पराशरः प्राह एकांशकत्वेऽपिवशिष्ठशिष्यः सौमनस्यं प्राह एकपिण्डे किल नाडीवेधः न (स्यात्) ॥ ४ ॥

भाषा—एक राशि एक नक्षत्र (स्त्री पुरुष का) हो तो चरण भेद होने से पराशरमुनि शुभ कहते हैं और एक चरण में भी वशिष्ठके शिष्य शुभ कहते हैं एकत्रपिण्ड अर्थात् एक गोलक में निश्चय करके नाड़ीवेध नहीं होता है ॥ ४ ॥

नाड़ीदोष के अभाव में दृष्टान्त ।

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

नाग्निर्दहत्यात्मतनुं तथाहि
द्रष्टा स्वदृष्टेर्न हि दर्शनीयः ॥
एकांशकत्वेपिसमप्रभावा-
न्नभर्तृभार्याव्यवहारसिद्धिः ॥ ५ ॥

अन्वयः—यथाहि (यस्मात्) अग्निः आत्मतनुं न दहति (अपि च) दर्शनीयः (पुरुषः) स्वदृष्टेः द्रष्टा नहि (स्यात् तथा) एकांशकत्वेऽपि (नाडीवेधो न स्यात्) (परन्तु) भर्तृभार्याव्यवहारसिद्धिः न (स्यात् कुतः) समप्रभावात् ॥ ५ ॥

भाषा—जैसे अग्नि अपने शरीर को नहीं जलाती और रमणीय पुरुष अपनी दृष्टि को नहीं देख सकता वैसे ही एकत्र पिण्ड में नाड़ीदोष नहीं होता है परन्तु एकांश होने में पुरुष स्त्री की व्यवहारसिद्धि अर्थात् लोकव्यवहार नहीं होता है समप्रभाव होने के कारण अर्थात् दोनों में तुल्य बल होने से ॥ ५ ॥

अब नाड़ीवेध को कहते हैं।

॥ वसन्ततिलकं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

रुद्रार्यमेन्द्रवरुणद्वयमाश्विनी च
विश्वाग्निवायुफणिनांयुगमन्त्यभञ्च ॥
शेषाणिचेतिनवकत्रयमेवयाते
जन्मोडुनी वरवधूनिधनाय नाडी ॥६॥

अन्वयः—रुद्रार्यमेन्द्रवरुणद्वयम् अश्विनी च (एको-नवकः स्यात्) विश्वाग्निवायुफणिनां युगम् अन्त्यभं च (द्वितीयो नवकः स्यात्) शेषाणि च (तृतीयो नवकः) इति वरवधूजन्मोडुनी नवकत्रयं एकयाते (तदा) नाडी वरवधूनिधनाय स्यात् ॥ ६ ॥

भाषा—आर्द्रा, उत्तराफाल्गुनी, ज्येष्ठा, शतभिषा, इन नक्षत्रों से प्रत्येक दो २ नक्षत्र और अश्विनी यह एक अर्थात् प्रथमा नाड़ी है। उत्तराषाढ़ा, कृतिका, स्वाती, आश्लेषा इन नक्षत्रों से प्रत्येक दो २ नक्षत्र और रेवती यह द्वितीय नवक अर्थात् द्वितीया नाड़ी है; शेष नक्षत्र अर्थात् पूर्वाफा० चित्रा, धनिष्ठा, भरणी मृगशिरा, पूर्वाषा० अनुराधा, पुष्य, उत्तराभाद्रपदा, यह तृतीय नवक अर्थात् तृतीया नाड़ी है; पुरुष स्त्री

का जन्मनक्षत्र एक नवक अर्थात् एक नाड़ी में हो तो नाश करनेवाला है (१) ॥ ६ ॥

पहिले कहे हुए त्रिनाड़ीचक्र के आम्नाय से कोई आचार्य त्रिचरण द्विचरण नक्षत्र में उत्पन्न हुई कन्या का चतुर्नाड़ी पञ्च नाड़ीवेध कहते हैं उस मत का दूषण देते हैं।

॥ उपजाविका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

प्रमीयमाणोपिमतैर्मुनीनां
त्रिद्व्यङ्घ्रिनक्षत्रभुवः कुमार्याः ॥
नाडीचतुःपञ्चतयस्य पक्षो
न क्षोदवीथीविषयत्वमेति ॥ ७ ॥

---

(१) यहां पर रुद्रादिदेवताओं के निर्देश से जो आर्द्रा आदि नक्षत्र ग्रहण किये गये हैं उसका कारण यह है कि लोक में स्वामी शब्द से सेवक का भी प्रयोजन जाना जाता है अतएव स्वामी शब्द से तत्तत्व तिथ्यादि ग्रहण किया जाता है और इसप्रयोग में इसका प्रमाण है यथा "नागोद्दादशनाडीभिर्दिक्पञ्च दशभिस्तथा ॥ भूतोऽष्टादशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरांतिथिम् ॥ अर्थात् नागपञ्चमी दशमी चतुर्दशी इत्यादि तिथि इस श्लोक में अपने स्वामी ही के नाम से रक्खी गई हैं।

अन्वयः—त्रिद्व्यङ्घ्रिनक्षत्रभुवः कुमार्याः (क्रमात्) नाड़ी चतुःपञ्चतयस्य पक्षः मुनीनां मतैः प्रमीयमाणो अपि बोद्-वीथीविषयत्वं न एति (न गच्छति) ॥ ७ ॥

भाषा—तीन चरणवाले नक्षत्र यानी कृति-कादिक द्विचरणवाले मृगशिरादिक इन नक्षत्रों में उत्पन्न हुई कन्या को क्रम से चतुर्वेध नाड़ी पञ्चवेध नाड़ी विचार करनी चाहिये इस पक्ष में मुनियों के मत से प्रमाण भी मिलता है। परन्तु विचार मार्ग में नहीं आता है (१) ॥ ७ ॥

अब योनि जानने का प्रकार कहते हैं ।

॥ स्रग्धरा छन्दः ॥ श्लोकः ॥

अश्वेभाजोरगाहिश्वखनकरिपवो-
मेषओतुद्विराखुर्गौकाल्यौव्याघ्रका-
लीपशुरिपुहरणौणश्वकीशाः क्रमेण ॥
द्वौबभ्रूकीशसिंहौतुरगमृगपतिच्छा-

---

(१) प्रमाण यथा—त्र्यङ्घ्रिभेद्व्यङ्घ्रिभेकन्याजातायागणयेत्क्रमात् ॥ वह्निभादिन्दुभान्नाडींचतुःपञ्चसुपर्वसु—यह प्रमाण हारीत का है तोभी इसका आश्रय देश पर है । यथा च वृद्धगर्गः ॥ जाङ्गले च चतुर्नाडी पाञ्चाले पञ्चनाडिका ॥ त्रिनाडीसर्वदेशेषुविवाहेऋषि-सम्मतम् ॥ यह व्यवहार इस देश में नहीं पाते हैं अर्थात् इस देश पर अकथित त्रिनाडी नाड़ीविद्ध हुई ।

गमातङ्गमेवं नेष्टायोनिः सवैरा
वरयुवतिनृपामात्ययोरश्विनीतः ॥ ८ ॥

अन्वयः—अश्वेभाजोरगाहिश्ववखनकरिपवौमेषओतुः द्विः आखुः गौकाल्यौ व्याघ्रकालीपशुरिपुहरिणेश्ववकीशाः द्वौ बभ्रू कीशसिंहौतुरगमृगपतिच्छागमातङ्गम् एवं क्रमेण अश्विनीतः योनिः सवैरा स्यात् वरयुवतिनृपाऽमात्ययोः नेष्टा (स्यात्) ॥ ८ ॥

भाषा—घोड़ा १ हस्ती २ मेष ३ सर्प ४ सर्प ५ श्वान ६ बिलार ७ मेष ८ बिलार ९ बिलार १० मूस ११ गौ १२ महिषी १३ व्याघ्र १४ भैंस १५ व्याघ्र १६ हरिण १७ हरिण १८ श्वान १९ बन्दर २० नकुल २१ नकुल २२ बन्दर २३ सिंह २४ घोड़ा २५ सिंह २६ बकरी २७ हस्ती २८ इस क्रम से अश्विनी, भरणी, कृतिकादि नक्षत्रों से योनि जानना वैर के सहित जो योनि है वह वर स्त्री और राजा मन्त्री को नेष्ट है (योनिवैर लोक व्यवहार से जानना जैसे गौ व्याघ्र हस्ती सिंह इत्यादि) ॥ ८ ॥

अब नक्षत्र का गण कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

त्रियुग्मीरोहिण्यासहशिवय-

मर्क्षेनरिसुरेश्रुतिस्वातीमित्रा-
दितिगुरुकरान्त्याश्विशशिभम् ॥
परंदैत्येमृत्युर्दनुजमनुजानाम-
निमिषैः सह स्वैरंवैरंनिर्ऋति-
तनयानां परिणये ॥ ९ ॥

अन्वयः—त्रियुग्मीरोहिण्यासहशिवयमर्क्षे नरि (भवेत्) श्रुतिस्वातीमित्रादितिगुरुकरांत्याश्विशशिभं सुरे (भवेत्) परं दैत्येभवेत् दनुजमनुजानाम् परिणये मृत्युः निर्ऋतितनयानाम् (च) अनिमिषैः सहस्वैरं (अतिशयितम्) वैरं स्यात् ॥

भाषा— त्रियुग्मी अर्थात् पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी पूर्वाषाढ़ उत्तराषाढ़ पूर्वाभाद्रपदा उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, आर्द्रा भरणी ये नव नक्षत्र मनुष्यगण हैं; श्रवण, स्वाती, अनुराधा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, रेवती, अश्विनी, मृगशिरा ये नव नक्षत्र देवता गण हैं; चित्रा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, विशाखा, मूल, कृत्तिका, शतभिषा, मघा, आश्लेषा ये नव नक्षत्र राक्षस होते हैं। राक्षस मनुष्य गण में मृत्यु होती है अर्थात् वर कन्या में से एक मनुष्य एक राक्षस हो तो विवाह में मृत्यु होती है, राक्षस देवता का अत्यन्त

कारके वैर होता है। (इससे भिन्न होने से मैत्री होती है) ॥ ९ ॥

अथ स्वाभाविक राशिवैरत्व और वश्यावश्यमैत्री कहते हैं ।

॥ शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

चापाजौवृषभेणकुम्भमिथुनौ
कर्केण मेषः स्त्रिया शैलाग्नीसवि-
षेणकार्मुकहरीनक्रेणानित्याद्विषौ ॥
तद्वत्कुम्भतुलेझषेणवशगाःसिंहं
विनाऽन्येनृणांतद्भोज्याजलचारिणो
हरिवशाः सर्वे विना वृश्चिकम् ॥१०॥

अन्वयः—चापाजौ वृषभेण (सह) नित्यद्विषौ कुम्भमिथुनौ कर्केण मेषः स्त्रिया शैलाग्नी सविषेण कार्मुकहरी नक्रेण तद्वत् नित्यद्विषौ कुम्भतुले झषेण (द्विषौ) सिंहं विना अन्ये (सर्वराशयः) नृणांवशगाः (स्युः) जलचारिणः तद्भोज्याः वृश्चिकं विना सर्वेहरिवशाः स्यु ॥ १० ॥

भाषा—धनु मेष राशि का वृष राशि से नित्य ही वैर है, कुम्भ मिथुन का कर्क से नित्य ही वैर है, मेष कन्या का नित्यही वैर है, तुला मिथुन का वृश्चिक

से नित्यही वैर है, धन सिंह का मकर से नित्यही वैर है, कुम्भ तुला का मीन से नित्यही वैर है। (ग्रन्थकर्ता का आशय यह सूचित हुआ कि राशिमैत्री लेनी चाहिये।) (अब वश्यावश्य कहते हैं) सिंह को छोड़ कर सब राशियां मनुष्य राशि के अधीन हैं और जलचर राशियां मनुष्यराशि के भक्ष्य हैं और वृश्चिक को छोड़कर सिंह राशि के अधीन सब राशियां हैं ॥ १० ॥

अब इनके गुण दोष के निर्णय को कहते हैं।

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

स्याद्राशिमैत्री धुरि कुम्भहर्योः
करग्रहस्तद्ग्रहविग्रहेऽपि ॥
तस्यामसत्यांमृगराजमीना-
वप्याहतौतद्ग्रहयोः सुहृत्त्वे ॥ ११ ॥

अन्वयः—कुम्भहर्योः राशिमैत्री धुरि स्यात् तद्ग्रहः-विग्रहे (वैरेपि) करग्रहः स्यात् तस्यां (राशिमैत्र्यां) असत्यां तद्ग्रहयोः सुहृत्वे मृगराजमीनौ अपि आहतौ (करग्रहेगृहीतौ) ॥ ११ ॥

भाषा—कुम्भ सिंह का परस्पर राशिमैत्री होती है, इन दोनों के स्वामी अर्थात् शनि सूर्य में वैरत्व

में होने भी विवाह शुभ है, तिस राशि की मैत्री न होने पर दोनों स्वामियों की मैत्री होने से सिंह मीन को विवाह में ग्रहण किया है (तात्पर्य इस श्लोक का यह सिद्ध हुआ कि राशिमैत्री न होने से ग्रहमैत्री और ग्रहमैत्री न होने से राशिमैत्री ग्रहण करना) ॥ ११ ॥

अब विशेष सूचना कहते हैं ।

॥ इन्द्रवज्रा छन्दः ॥ श्लोकः ॥

पत्योर्विरोधे सति भृत्ययोः स्या-
न्मेलेप्यमेलस्तदलं भमैत्र्या ॥
अत्रोच्यते किं न मिथोवधः स्या-
देकस्य सेनानरयोर्विरोधात् ॥ १२ ॥

अन्वयः—पत्योः विरोधे सति भृत्ययोः मेलेऽपि अमेलः स्यात् तत् भमैत्र्या अलम्; अत्र (उच्यते) एकस्य सेनारयोः मिथः विरोधात् वधः किं न स्यात् (अपि तु स्यादेव) ॥ १२ ॥

भाषा—दोनों के स्वामियों के विरोध में सेवकों की मैत्री भी विरुद्ध हो जाती है तिस कारण से राशिमैत्री व्यर्थ ठहरी अर्थात् राशिमैत्री नहीं ग्रहण करना परन्तु वादी कहता है कि राजा की सेना सम्बन्धी दो पुरुषों में परस्पर विरोध होने से क्या

बध नहीं होता अर्थात् अवश्य होता है (आशय यह है कि राजा रूपी विचार है और सेना सम्बन्धी दो राशियां हैं सेना सम्बन्धी दो पुरुष राशिस्वामी हैं, वे हैं तो दोनों सेना सम्बन्धी दोनों ग्रहों के विरोध से दोनों का नाश अवश्य हो जाता है इससे राशि-मैत्री मुख्य ठहरी ॥ १२ ॥

इस विषय में विशेष देखाते हैं ।

॥ उपेन्द्रवज्रा छन्दः ॥ श्लोकः ॥

अपश्यति स्वामिनि तद्वधश्चेद्
ग्रहेश्वराणां किमदृष्टमस्ति ॥
अतोऽधिकं चेत्प्रभुसख्यमेव
ततोगतिः का समसप्तकस्य ॥ १३ ॥

अन्वयः—स्वामिनि अपश्यति (सति) तद्वधः स्यात् चेत् (तर्हि) गृहेश्वराणां किं अदृष्टं अस्ति अतः (कारणात्) प्रभुसख्यम् अधिकम् एव चेत् ततः समसप्तकस्य का गतिः ॥ १३ ॥

भाषा—स्वामी की दृष्टि नहीं रहती तो उन दोनों सेना सम्बन्धी पुरुषों का (परस्पर नाश हो जाता । यदि ऐसा है तो गृहेश्वर की क्या दृष्टि नहीं रहती अर्थात् रहती है । इस कारण से स्वामी की

मित्रता ही मुख्य ठहरी। तब समसप्तक की क्या गति होगी, (जो कि पहले कुम्भ सिंह की सघन प्रीति कह चुके हैं उसका चरितार्थ कैसा होगा) ॥ १३ ॥

अब सिद्धान्त को कहते हैं।

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोक. ॥

स्वभावमैत्री सखिता स्वपत्यो-
र्वशित्वमन्योन्यभयोनिशुद्धिः ॥
परः परः पूर्वगमे गवेष्यो
हस्तेत्रिवर्गीयुगपद्युतिश्चेत् ॥ १४ ॥

अन्वयः—स्वभावमैत्री (तथा) स्वपत्योः सखिता वशित्वं अन्योन्यभयोनिशुद्धिः (एतासां) पूर्वगमे (पूर्वपूर्वालाभे) परः परः गवेष्यः चेत् युगपद्युतिः (तदा) हस्ते त्रिवर्गी (स्यात्) ॥ १४ ॥

भाषा—स्वभाव मैत्री अर्थात् राशिमैत्री (तथा) राशि के स्वामी की मैत्री वश्यावश्य परस्पर योनि शुद्धि इन सबों के पूर्व २ के अलाभ में पर पर अर्थात् एक के न बनने में द्वितीयादि को कों देखना (जैसे राशिमैत्री न बनी तो स्वामी की मित्रता इत्यादि) यदि एक काल में इन चारों का लाभ हो तो (पुरुष स्त्री के) हस्त में त्रिवर्ग अर्थात् अर्थ धर्म काम प्राप्ती होते है ॥

॥ इन्द्रवज्रा छन्दः ॥ श्लोकः ॥

आपार्श्वकेन्द्रद्वयगाः प्रसूतौ
तत्कालमित्राणि मिथः खपान्थाः ॥
न्यूनामपि स्त्रीनरभृत्यराज्ञां
तत्कालसख्यं विशिनष्टि मैत्रम् ॥१५॥

अन्वयः—प्रसूतौ (ये) आपार्श्वकेन्द्रद्वयगाः खपान्थाः (ते) परस्परं तत्कालमित्राणि मिथः (भवन्ति अन्यथा शत्रवः) स्त्रीनरभृत्य राज्ञां तत्काल सख्यं मैत्रं विशिनष्टि (विशेषयति कथं भूतां) न्यूनां अपि (किं पुनः सम्पूर्णाम्) ॥ १५ ॥

भाषा—जन्म काल में जो पार्श्व के दो केन्द्र हैं उसमें जो ग्रह है वह उस ग्रह का परस्पर मित्र होते (जैसे १० । ११ । १२ । २ । ३ । ४ इन स्थानों में रहनेवाले ग्रह मित्र है एवं अन्यत्र स्थान में रहनेवाले शत्रु होते) स्त्री पुरुष नौकर राजा की मैत्री को तत्काल मैत्री विशेष करती है कैसी है की न्यून अर्थात् हीन है (तो फिर सम्पूर्ण मैत्री में क्या कहना है) (१) ॥ १५ ॥

---

(१) तत्कालेनदशायबन्धु सहजस्वांत्येषुमित्रंस्थित इति ॥ विशेष यह है कि नैसर्गिक में और तत्कालीक में मित्रादि देखना

॥ श्लोकः ॥

षट्कर्मणां शासितदेवदैत्यौ
राजन्यकस्याधिपतीकुजार्कौ ॥
विट्शूद्रयोश्चन्द्रबुधौ शनिश्च
संकीर्णपः स्त्रीनृषु वर्णमैत्री ॥ १६ ॥

अन्वयः—शासितदेवदैत्यौषट्कर्मणां (ब्राह्मणानां अधिपौ स्तः) कुजार्कौ राजन्यकस्य (क्षत्रियाणां) अधिपती (भवतः) चन्द्रबुधौ (क्रमेण) विट्शूद्रयोः (अधिपती स्तः) शनिः च (पुनः) संकीर्णपः (स्यात् इति) स्त्रीनृषु वर्णमैत्री (स्यात्) ॥१६॥

भाषा—शिक्षित देव बृहस्पति और शिक्षित दैत्य शुक्र ये दोनों ग्रह यजन याजनादि करनेवाले ब्राह्मण के स्वामी हैं। मङ्गल और सूर्य ये क्षत्रिय वर्णों के स्वामी हैं। चन्द्रमा वैश्यवर्ण का स्वामी तथा बुध शूद्रों का स्वामी है। शनैश्चर हीन वर्णों का अर्थात् वर्णशङ्कर निषादादिका स्वामी है। इस प्रकार स्त्री पुरुषों में वर्णमैत्री होती है (१)॥ १६ ॥

अर्थात् मित्र २ के योग में अधिमित्र होता है और शत्रु २ के योग में अधि शत्रु एवं मित्र शत्रु के योग में सम तथा सम शत्रु के योग में शत्रु होता है इत्यादि समस्त ज्योतिर्विद जाने॥

(१) आशय यह है कि स्त्री पुरुष के राशिस्वामी का वर्ण

॥ द्रुतविलम्बितं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

सुरगुरुर्ज्ञगुरूकविकोविदौ
विरवयोविकुजाविरवीन्दवः ॥
अशशिसूर्यकुजाः सुहृदोरवे
र्यवनयुक्तिरियं न यवीयसी ॥ १७ ॥

अन्वयः—रवेः (आरभ्य क्रमेण) सुरगुरुः ज्ञगुरू: कवि-कोविदौ विरवयः विकुजाः विरवीन्दवः अशशिसूर्यकुजा (एते) सुहृदः (अन्ये शत्रवः) स्युः इयं यवनयुक्तिः यवीयसी (कनिष्ठा) न स्यात् ॥ १७ ॥

भाषा—सूर्य से लेकर क्रम से ग्रहों के बृहस्पति बुध, गुरु, शुक्र, बुध, सूर्य रहित शेष ग्रह मङ्गल रहित शेष ग्रह रवि चन्द्र रहित शेष ग्रह और

देखना अगर उत्तम वर्ण पुरुष राशि स्वामी हो तो शुभ है और सम वर्ण अर्थात् दोनों का स्वामी एक वर्ण हो तो मध्यम और पुरुष स्वामी स्त्री राशिस्वामी से हीन हो तो अधम जानना ऐसा मैत्रीविचार पश्चिम समुद्र के पास के देशों में प्रसिद्ध है अन्य देशों में मीनादिक राशि को ब्राह्मणादिक वर्ण हैं वह विचार होता है अगर कन्या के राशिवर्ण से पुरुष का राशि वर्ण उत्तम हो तो श्रेष्ठ सम अर्थात् एक वर्ण हो तो मध्यम और हीन वर्ण हो तो अधम जानना यह वर्णमैत्री केवल गुण जानने के वास्ते है मेलक के लिये नहीं ॥ १६ ॥

चन्द्रमा रवि मण्डल रहित शेष ग्रह मित्र और अन्य ग्रह शत्रु होते हैं यह यवनाचार्य की युक्ति कनिष्ठ नहीं है अर्थात् श्रेष्ठतर है ॥ १७ ॥

यह यवन मत श्रेष्ठ कैसे है उसको ग्रन्थ-कर्ता दिखाते हैं।

॥ श्लोकः ॥

इदमुदीर्यवराहविरोचना-
निजमतेऽपि न दूषितवान्पुनः ॥
सबहु मन्यतएव तथातथं
जयतिशास्त्रमिदंयवनेष्वपि ॥ १८ ॥

अन्वयः—वराहविरोचनः इदं (यवनमतं) निजमतेपि उदीर्य (उक्तापि) पुनः न दूषितवान् स (वराहः) इदं (ग्रहमैत्रीशास्त्रं) यवनेषु अपि तथातथम् (सत्यम्) बहु-जयति मन्यन्त एव ॥ १८ ॥

भाषा—वराहमिहिराचार्य ने पूर्वोक्त ग्रहमैत्री को अपने मत (अर्थात् बृहज्जातकादि ग्रन्थों) में कहा है और फिर दोष नहीं लगाया (कारण न दोष लगाने का यह है कि दूसरे का मत अपने मत में नहीं रखना चाहिये अगर रखे भी तो दोष न लगावे ऐसा न्याय

शास्त्रज्ञाता कहते हैं) वराहमिहिराचार्य ने इस ग्रह मैत्री शास्त्र को यवनाचार्य के मत में तथातथ्य अत्यन्त करके सर्वोपरिविराजमान है ऐसा माना है ॥ १८ ॥

॥ श्लोकः ॥

परमतं स्वमते विनिवेशितं
यदि न दूषितमादृतमेव तत् ॥
कलितकेवलसत्यमतः स त-
द्यवनयुक्तिषुनूनमनिस्पृहः ॥ १९ ॥

अन्वय;—(यस्मात्) स्वमते परमतं विनिवेशितम् यदि न दूषितम् (तदा तन्मतं) आदृतं एव तत् (तस्मात् कारणात्) नूनं स (वराहः) कलितकेवलसत्यमतः स तत् तथा. यवनयुक्तिषु अनिस्पृहः (स्पृहयति) इति ॥ १९ ॥

भाषा—जिस कारण से अपने मत में पराये मत को स्थापन कर यदि नहीं दोष लगाया तो वह मत स्वीकार ही है । ऐसा न्याय वेद कहते हैं तिसी कारण से कैसे वराहमिहिराचार्य ने केवल सत्याचार्य के मत को ग्रहण किया है यह वराहमिहिराचार्य

तिसी तरह यवनाचार्य के वचन भी अभिलाषित कहते हैं (१)॥ १९॥

जब ऐसा है तो वराहमिहिर ने यवन मत को अल्प कैसे कहा इससे आशङ्का हुई सो कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

किमबहुत्त्वमयं मिहिरोदिश-
न्ग्रहसुहृत्त्वमिदं जगृहे हृदि ॥
उभयथापि समं सति तन्मते
महतिकेऽपि भवेम वयं यतः ॥२०॥

अन्वयः—अयं मिहिरः इदं (यवनोक्तं) ग्रहसुहृत्वं अबहुत्वं दिशन् (सन्) किं हृदि जगृहे तन्मते महति सति उभयथापि (उभयपक्षे) समं (स्यात्) यतः वयं केऽपि भवेम (स्याम्)॥ २०॥

---

(१) आशय इसका यह है कि वराहमिहिराचार्य सत्याचार्य के मत को विचार करके यवनाचार्य के मत में भी अभिलषित हैं इससे यह ठीक हुआ कि सत्यमत को परिपूर्ण रूप से इच्छा करके यवन के मत में भी स्पृह है कहते॥ १९॥

भाषा—वराहमिहिराचार्य ने यह यवनोक्त ग्रह-मैत्री को जिसमें बहुत आचार्यों की सम्मति नहीं है कहते हुए क्या हृदय में धारण किया है । अगर यह कहें कि धारण किया है तो यवनाचार्य की ग्रहमैत्री को अपने ग्रन्थ बृहज्जातक में कहकर केचित् मत क्यों लगाया । (तथा तद्वाक्य-जीवोजीववुधौसितेन्दु-तनयौव्यर्का विभौमाः क्रमाद्वीन्द्वर्का विकुजेन्दवश्च-सुहृदः केषांचिदेवं मतम्) इससे यह सिद्ध हुआ कि यवनोक्त ग्रहमैत्री नहीं बहुतो की सम्मति है वराह का यही अभिप्राय है । (अब ग्रन्थकर्ता अपने अभि-प्राय को प्रगट करता है कि) वराह के मत में श्रेष्ठत्व कहें तो दोनों पक्ष बराबर हैं क्योंकि हम सब भी किञ्चित् हुए अर्थात् ग्रन्थकर्ता का अभिप्राय यह सिद्ध हुआ कि वराहमिहिर का मत श्रेष्ठ है तो हम सब भी श्रेष्ठ है क्योंकि दोनों मनुष्य हैं ॥ २० ॥

इसको छोड़ कर पुनः संस्थापन करते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

बहुतरैः कृतमेव कृती सचे-

दनुससार्ति तदप्ययथातथम् ॥

पृथगपि द्विगुणे त्रिगुणे सकृ-
त्त्रिगुणमित्यबहूक्तिरियं यतः ॥२१॥

अन्वयः—सुकृती (कुशलो वराहः) बहुतरैः (भूयिष्ठैः यत्) कृतं तत् (एव) अनुसरति इति चेत् तत् अपि अयथातथम् यतः पृथक् अपि द्विगुणे सकृत्त्रिगुणं इति इयं अबहूक्तिः ॥ २१ ॥

भाषा—उस कुशल अर्थात् वराहमिहिराचार्यने बहुत पुरुषों से जो किया है वही बहुतों का अनुसार है ऐसा जब है तौभी सत्य नहीं कारण है कि पृथक् भी द्विगुणित त्रिगुणित प्राप्ति में एक ही बार त्रिगुणित कहा है । यह उक्ति अबहु भई अर्थात् बहुतों की कही हुई नहीं ठहरी (१) ॥ २१ ॥

---

(१) स्पष्ट आशय यह है कि आयु निकालने में आचार्यों की सम्मति जो वर्गोत्तम स्वराशिस्वद्रेष्काणस्वनवांश की प्राप्ति में पृथक् २ द्विगुणित कहा है वहां वराहमिहिराचार्य ने एक ही बार द्विगुणित कहा और वक्र उच्च में पृथक् २ त्रिगुणित कहा है वहां वराहमिहिराचार्य ने एक ही त्रिगुणित कहा है पुनः जहां द्विगुणित की प्राप्ति है अर्थात् जिस जगह ग्रह अपने वर्गोत्तमादि किसी एक वर्ग में हो और वक्र अथवा उच्च भी तो क्रम से पृथक २ अ- हायु को दुगुना तिगुना करना चाहिये तहां वराहमिहिराचार्यने

इस प्रकार राशिमैत्री को कहकर अब नवांश
मैत्री विषय कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

अभिदुरावधिपौ सृजतः शुभं
शशिनवांशकयोरितिदेवलः ॥

एक ही बार तिगुना करके आयु शोधन किया है यह वराह-मिहिराचार्य की उक्ति बहुसम्मत नहीं है इस कहने से यह सिद्ध हुआ कि वराहोक्त भी बहुसम्मत न हुआ । तथा प्रमाणमाह कल्याण वर्मा । (बहुताडनसंप्राप्तौ यां करोत्येकवर्गणाम् ॥ वराह-मिहिराचार्यःसा न दृष्टा पुरातनैः ॥) इसलिये वराहमिहिराचार्य ने जो सम्मत कहा है वह नहीं है कदाचित् अपने मन की रुचि से कहा है इस वजह से यवनोक्त ग्रहमैत्री विषय में जो वराह-मिहिराचार्य ने अपने ग्रन्थ बृहज्जातक में " केषाञ्चिन्मतं " कहा है इस वाक्य के प्रमाण से यवनोक्त ग्रहमैत्री श्रेष्ठ ठहरी । इस ग्रह-मैत्री को नवांशचिन्ता करके सम्यक् तरह से संस्थापन किया है परन्तु यह ग्रन्थकर्ता ने अपने पक्ष के साधनार्थ पाण्डित्य मात्र दिख-लाया है । वास्तव में नहीं है हम सब कहते हैं । जिसको वराह-मिहिराचार्य ने अपने बृहज्जातक में कहा है "सत्योपदेशोवरम-चकिंतुर्कुर्वन्त्ययोगं बहुवर्गणाभिः ॥ आचार्यकत्वं तु बहुघ्नतोया-मेकन्तुयद्भूरितदेवकार्यम् ॥" यहां पर इस तरह मतभेद होने से सत्याचार्य का उपदेश श्रेष्ठ है तहां किन्तु अन्य आचार्य ने स्वतंत्र वक्ता

तदपि चारु न चारुषितैर्मुखै-
र्व्यवहरान्ततथावितथाशयाः ॥२२॥

अन्वयः—शशिनवांशकयोः अधिपौ अभिदुरौ (सुहृदौ) शुभं सृजतः (कुरुतः) इति देवलः (प्राह) तत् अपि चारु (रमणीयम्) तथा वितथाशयाः आशारुषितैः मुखैः न च व्य-एवहरन्ति ॥ २२ ॥

भाषा—(जन्म काल में) चन्द्रगत (जो दोनों स्त्री पुरुष को) नवांशके स्वामियों में मैत्री हो तो शुभ

वर्गोत्तम स्वगृहादिगत ग्रह में बहुत वर्ग करके जो आयुसाधन किया है वह अयोग्य है क्योंकि अनवस्था दोष प्रसंगप्राप्त होता अर्थात् इस वर्गणादिक की विरामावधि नहीं है सत्याचार्य का यही अभिप्राय है। बहुवर्गप्राप्ति में जो अधिक वर्ग है उसी को करना चाहिये जैसे उच्चगत ग्रह का उच्च ग्रह रूप तीन वक्रगत ग्रह की चेष्टा गुण रूप तीन है तो दोनों का घात मूल स्पष्ट रूपी तीनही होगा और वर्गोत्तम स्वगृहादिगत ग्रह का आश्रय गुणक रूप भी तीन के आसन्न है तो स्पष्ट गुण और आश्रय गुण का घात मूल तीन ही कर्म गुण हुआ इस कारण उच्च वक्र वर्गोत्तम स्वगृह द्रेष्काणादि गत में भी एक ही बार तीन से गुणा है। इसलिये वराहमिहिराचार्य ने गर्गाचार्य सत्याचार्यादिक के मत से जो युक्ति कही है वह युक्ति ठीक है और बहुतों को सम्मत है इस वजह से ग्रन्थकर्ता ने बहुत इष्ट मान करके जो कहा है वह नहीं वि-चारणीय है ॥ २१ ॥

फल को करते हैं यह देवलमुनि का वचन है वह नि-
श्चय करके रमणीय है (परंच) तिनको कुपित मुख से
भी चिञ्चित्मात्र भी वितथाशयाः (अर्थात् असत्य
आशय है जिनका) नहीं व्यवहार में लाते हैं (१) ॥

नवांशमैत्री नहीं ग्रहण करने की अभीष्टता को दिखलाते हैं।

॥ श्लोकः ॥

लवदृशैव हि लग्नदृशं विना
फलममंसत येऽपिकरग्रहे ॥
शशिनवांशसखित्वपराङ्मुखाः
किमलमस्तु गतानुतं जगत् ॥ २३ ॥

अन्वयः—ये (दैवविदः) करग्रहे लग्नदृशं विना लव-दृशा एव हि फलममंसत (ते) अपि शशिनवांशसखित्वं किं पराङ्मुखाः (स्युः) अलं अस्तु (दूरंतिष्टतु) जगत् गता-नुगतम् (स्यात्) ॥ २३ ॥

(१) इससे यह भी आशय स्पष्ट होता है कि हृदय में तो यथार्थ मानते हैं लेकिन मन सदृश मुख से नहीं स्वीकार करते कारण कि लोक में यह नवांशमेलक अप्रसिद्ध है इसी भय से नहीं स्वीकार करते हैं आशय यहां पर ईषत् अर्थ में लिया गया है।

भाषा—जो (ज्योतिर्विद्) विवाह में लग्न दृष्टि को छोड़ कर नवांश दृष्टि करके फल को मानते हैं वे (ज्योतिर्विद्) चन्द्रगत नवांश मैत्री से क्या वि· मुख हैं (यदि विमुख हैं तो "उदयगतनवांशः स्वेश-दृष्टे युतोवा नभवति यदि मृत्युः स्यात्तदानीं वरस्य ॥ इत्यादिक से नवांश दृष्टि करके लग्न फल को मानते हैं, लग्न फल नवांश में रहता है इस वजह से अंश की मुख्यता से मेलक में चन्द्रगत जो नवांश मैत्री है क्यों नहीं स्वीकार करते हैं जो नहीं मानते हैं उनको अनिष्ट है) वह (नवांश मैत्री) दूर रहे (परन्तु कैसे स्वीकार किया जाय) संसार गता-गत है अर्थात् अंधपरम्परा की तरह है ॥ २३ ॥

इति श्रीकाशिखण्डान्तर्गतदेवडीहग्रामनिवासिशाण्डिल्यवंशाव-
तंसविविधशास्त्रपराङ्गतपण्डितश्रीलालबहादुरत्रिपाठिपुत्र-
ज्योतिर्वित्पण्डितशिवदत्तत्रिपाठिविरचितायां
विवाहवृन्दावनसान्वयशिवकरीभाषटी-
कायां तृतीयोऽध्यायः
समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ नवांशचिन्ताध्यायः ४

इस अध्याय में सूक्ष्म नवांश फल को कहते तिसमें

पहले नवांश फल निरूपण करके दिखाते हैं।

॥ द्रुतविलम्बितं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

नवलवाधिपतीउदयास्तयो
रनिमिषार्चितचान्द्रमसायनौ ॥
वरपपातिं वरयोः समवैरिणौ-
यदितादिष्टफलेष्वपिफल्गुता ॥ १ ॥

अन्वयः—उदयास्तयोः नवलवाधिपती अनिमिषार्चितचान्द्रमसायनौ समवैरिणौ यदि (स्तः) तत् (तदा) वरपतिं वरयोः इष्टफलेषु (शुभफलेषु) अपि फल्गुता (निष्फलता स्यात्) ॥ १ ॥

भाषा—लग्न नवांश पति और सप्तम नवांश पति बृहस्पति बुध हों तो दोनों में सम वैरी होता है तब स्त्री पुरुष के शुभ फल में निष्फलता प्राप्त हो जाती है अर्थात् शुभ फल नहीं होता (१) ॥ १ ॥

---

(१) स्पष्टाशय यह है कि लग्न नवांश पुरुष स्थान है और सप्तम नवांश स्थान स्त्री स्थान है इन दोनों की मैत्री होने से शुभ फल होगा परन्तु यहां पर लग्न में धनवतांश हैं सप्तम में मिथुन नवांश है दोनों का अधिपति बृहस्पति बुध होते हैं तो सत्याचार्य मत अनूमन्दसिती इत्यादि से सम वैरी होते हैं अतः यहां पर स्त्री पुरुष का शुभ फल नहीं होता तिस कारण से दोनों राशियों का नवांश नहीं ग्राह्य है। इसका अनिष्ट फल होता है।

अब यवनमैत्री ग्राह्य करते हैं।

॥ श्लोकः ॥

तदुदयद्विपदांशनियामको
यवनसौहृदमाद्रियतां जनः ॥
इतरथाकथमस्तुकरग्रह-
स्तनुफलं हि लवानवलाम्बते ॥ २ ॥

अन्वयः—तत् (तस्मात् कारणात्) जनः यवनसौहृदं आद्रियताम् (कथं भूतोजनः) उदयद्विपदांशनियामकः इतरथा करग्रहः कथं अस्तु हि तनुफलं लवान् अवलंबते (आश्रयते) ॥ २ ॥

भाषा—तिस कारण से आचार्य लोगोंने यवनाचार्य की ग्रहमैत्री को स्वीकार किया है। कैसे आचार्य हैं कि लग्न में मनुष्य राशि के नवांश के नियामक अर्थात् शुभ कहनेवाले। इससे भिन्न होने से विवाह कैसे होगा निश्चय से होगा क्योंकि लग्न का फल नवांश के अधीन है ॥ (१) ॥ २ ॥

---

(१) अभिप्राय यह है कि नवांश में लग्न फल रहता है यह पहिले कह चुके हैं इससे नवांश मुख्य ठहरा वह नवांश द्विपद होने से शुभ होता है यथा प्रमाणमाह "प्राग्लग्नेद्विपदङ्गतांशकुर्यादन्यांशकोदयेनाशम् ॥" इस कारण द्विपद राशि के नवांश

अथ यहां पर दूसरी आशंका को उत्पन्न करके दोषण देते हैं प्रकारान्तर से।

॥ श्लोकः ॥

अथ रिपू यदि नोभयसप्तमौ
तदयशः कलशस्याकिमागतम् ॥
द्विपदतांदधतोथशुभर्क्षता
यदिवृषानिमिषौकिमुपेक्षितौ ॥ ३ ॥

अन्वयः—अथ उभयसप्तमौ न रिपूस्तः यदि (इदं) तदा कलशस्य द्विपदतां दधतः अयशः किं आगतं, अथ शुभर्क्षता यदि वृषानिमिषौ किं उपेक्षितौ (कथंपरित्यक्तौ) ॥ ३ ॥

भाषा—अब दोनों (स्त्री पुरुष की राशि) सम सप्तक में नहीं शत्रु भाव (अर्थात् सदा राशिमैत्री चतुर्थ दशम के नहीं है इस प्रकार से धन मिथुन में सदा मैत्री है) यदि यह है तब कुम्भ राशि द्विपदत्व की धारणकरनेवाली अशुभत्व को क्यों प्राप्त हुई (अ-

---

से भिन्न नवांश में स्त्री पुरुष के नाश के कारण से विवाह कैसे होगा इसलिये लग्नांशपति और सप्तमांशपति में मैत्री होने से शुभ होता है वह मैत्री धन के नवांश में यवनाचार्य की कही हुई मैत्री से द्विपद मिथुन का नवांश पाया जाता अतः यवनोक्त ग्रह-मैत्री आचार्य लोगों ने स्वीकार कियी है।

र्थात् उत्तरार्ध कुम्भ का मनुष्य है तो लग्न सप्तमांश का सदा सम सप्तक होने से मैत्री होनी चाहिये इस वजह से कुम्भ नवांश को क्यों नहीं ग्रहण किया? उत्तर इसका यह है कि पापराशि इस कारण से कुम्भ को नहीं कहा। परन्तु वादी कहता है (कि ऐसा जब है) तो शुभ राशि वृष मीन को क्यों त्याग किया ॥ ३ ॥

यहां पर उत्तर का प्रत्युत्तर देते हैं।

॥ श्लोक. ॥

अमनुजाविति चेत्किमु शौनको
नवलव झषमादृतवान्मुनिः ॥
शुभगृहाद्द्विपदास्तलवः स चेत्-
भवतु तत्र किमस्तु तुलाभृतः ॥ ४ ॥

अन्वयः—(तौ वृषमीनौ) अमनुजौ (भवतः) इति चेत् तर्हि शौनकः मुनिः झषम् नवलवम् आदृतवान् (स्वीकृतवान् अस्योत्तरम्) सः (मीनः) शुभगृहद्विपदास्तलवः चेत् भवतु तत्र तुलाभृतः किं अस्तु ॥ ४ ॥

भाषा—(वह दोनों वृष मीन) मनुष्य राशि नहीं हैं (क्योंकि पहिले कह चुके हैं कि द्विपदांश ग्रहण करना इस वजह से त्याग किया) ऐसा जब

है तब शौनक मुनि ने मीन नवांश को क्यों ग्रहण किया (मीन राशि तो जलचर है तो जलचर मीन को कैसे ग्रहण किया वादी कहता है) वह मीन शुभ राशि है और मनुष्य राशि सप्तम लव है (अर्थात् शुभग्रह मनुष्य राशि सप्तम लव है इस वजह से शौनक मुनि ने मीनांश क्यों ग्रहण किया प्रतिवादी कहता है) ऐसा जब है तो तुला का क्या होगा। तुला का सप्तम लव मेष राशि है न तो शुभ राशि तब तो मनुष्य राशि है किस कारण से तुला को ग्रहण किया ॥ ४ ॥

उत्तर प्रत्युत्तर में कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

द्विचरणः शुभभं च नवांशक-
स्तदयमेकतरः परिगृह्यते ॥
इदमसंगतमंगतवेरितं
जगतिनैकवशात् किलसौहृदम् ॥५॥

अन्वयः—तत् अयं एकतरः नवांशकः द्विचरणः शुभभं च परिगृह्यते, हे अङ्ग तव ईरितं इदं असंगतं जगति एकवशात् किलसौहृदं न (स्यात्) ॥ ५ ॥

भाषा—(जब तुमने ऐसा कहते हो तो उसका

आशय यह नहीं। आशय इसका यह है) वे जो एक तर नवांश है सो मनुष्य राशि का और शुभराशि है इससे ग्रहण किया है (इससे यह सिद्ध हुआ कि उदय नवांश या अस्त नवांश इन दोनों में से कोई एक नवांश मनुष्य शुभग्रह होने से शुभ है दोनों होने से नहीं अर्थात् लग्नांश सप्तमांश मनुष्य और शुभ राशि हो तो ग्रहण करना चाहिये यह हमारा आशय नहीं है। यहां पर तुला और मेष में तुला शुभ राशि है और द्विपद है इस वजह से तुलांश को ग्रहण किया। (परन्तु वादी कहता है) हे मित्र आपका कहा असंगत है (अर्थात् ठीक नहीं। किस कारण से) संसार में एक वश से निश्चय मैत्री नहीं होती (सुहृद् धर्म दोनों ही में होने से मैत्री होती है इस वास्ते यह आपका कहा ठीक नहीं है) ॥५॥

इस प्रकार का जो वाद विवाद है इसको छोड़ कर सिद्धान्त कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

खचरयोः सखिता यदि कारणं
ध्वनतिसानितरांग्यवनाध्वनि ॥

कलशसिंहनवांशपशत्रुता-
परिणमत्युभयोरपिशास्त्रयोः ॥ ६ ॥

अन्वयः—खचरयोः सखिता यदिकारणं (स्यात् तर्हि) सा (सखिता) यवनाध्वनि (यवनमार्गे) नितरांध्वनति कलशसिंहनवांशपशत्रुता उभयोः (यवनसत्यशास्त्रयोः) अपि परिणमति (परिपाकं प्राप्नोति) ॥ ६ ॥

भाषा—ग्रह दोनों को (अर्थात् लग्नांशसप्तमांशस्वामि में) मैत्रा जब कारण है (तब) वह मैत्री यवनाचार्य के शास्त्र में अत्यन्त से प्रसिद्ध है (अर्थात् सत्याचार्य के मत में दोनों मैत्री अभाव है इस वजह से यवनाचार्य का जो मत है सो प्रकाशक हुआ। परन्तु सत्याचार्य के मत से कुम्भांश परित्याग हुआ बैर भाव होने से, बादी कहता है कि ऐसा जब है तो) कुम्भ नवांश और सिंह नवांश स्वामियों की शत्रुता दोनों के शास्त्र में निश्चय से प्राप्त है (अर्थात् शनि सूर्य में शत्रुता यवनाचार्य के मत से और सत्याचार्य के मत से भी है अतएव यवनाचार्य के मत में शत्रु भाव होने से कुम्भांश त्याग है । अर्थात् यहां पर यवनाचार्य सत्याचार्य का मत एकही ठहरा। इस प्रकार नवांश में ग्रहमैत्री का विचार किया जाता

है तो राशिमैत्री क्यों नहीं विचार कियो जाये । अर्थात् उसका भी विचार करना चाहिये) ॥ ६ ॥

॥ श्लोकः ॥

अथ तयोः समसप्तसुहृत्पथः
कथमसूक्ष्मगतिः सचनैकधा ॥
इहहिलग्नगतान्यनुमेनिरे
तदखिलैः खलखेटगृहाण्यपि ॥ ७ ॥

अन्वयः—अथ हि तयोः (यवनसत्यशास्त्रयोः) समसप्तसुहृत्पथः कथं असूक्ष्मगतिं स्व (सुहृत्पथः) एकधा न तत् इह (अस्मिन् विवाहे) अखिलैः (यवनसत्यादिभिः) खलखेटगृहाणि लग्नगतानि अनुमेनिरे (अनुज्ञातानि) अपि सम्भवार्थः ॥ ७ ॥

भाषा—अब जिस कारण से यवनाचार्य सत्याचार्य के शास्त्र में समसप्तक मैत्री मार्ग कैसे सूक्ष्म नहीं । (अर्थात् सूक्ष्म मार्ग है । आशय यह है कि पुरुष स्त्री की राशियों में सदा समसप्तक होने से दोनों यवन सत्य शास्त्र में भी समसप्तक राशिमैत्री मार्ग सूक्ष्म है) वह मैत्री मार्ग एक नहीं है । अर्थात् तत्काल नैसर्गिक पञ्चधा इत्यादि) तिस कारण से इस विवाह में यवनाचार्य सत्याचार्य आदि पाप-

ग्रह की राशि (मेष सिंहादि) लग्न में मनाते हैं अपि शब्द सम्भावना अर्थ में जानना चाहिये (१) ॥ ७ ॥

प्रकृति का सिद्धान्त कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

इतितुलाजितुमप्रमदाधनुः
प्रथमखण्डमखण्डफलंजगुः ॥
सततमस्तपतिद्विषदीश्वरं
नवलवंबलवन्ध्यपतिंत्यजेत् ॥ ८ ॥

अन्वयः—इति (हेतुभिः) तुलाजितुमप्रमदाधनुः प्रथमखण्डमखण्डफलं जगुः (यवनादयः) सततं अस्तपतिद्विषदीश्वरं नवलवं (त्यजेत्) बलवन्ध्यपतिं (च) त्यजेत् ॥ ८ ॥

भाषा—इस कारण से तुला, मिथुन, कन्या और धनु के प्रथम भाग का पूर्ण फल यवनादिक आचार्य्यों ने कहा है। (स्पष्ट आशय यह है कि धनु का पूर्वार्ध और कुम्भ का उत्तरार्ध मिथुन तुला कन्या में द्विपद कहा है तहां पर धनु का अस्तांश मिथुन है इनका स्वामी बृहस्पति बुध है यवनाचार्य के मत

(१) (स्पष्टाशय यह है कि लग्नगत पापग्रह की राशि शुभ है तो लग्नगत शुभ ग्रह की राशि का फिर क्या कहना) वह तो शुभ है ही— ॥

से दोनों में मैत्री होती इस वजह से धनु का अंश शुभ है इसी तरह से मिथुन का भी अस्तांश शुभ है और तुला अस्तांश मेष है इनका स्वामी मङ्गल शुक्र इनमें भी यवनाचार्य के मत से मैत्री होती इससे तुलांश शुभ है और कन्या का अस्तांश मीन है इनका स्वामी बुध वृहस्पति इनमें भी यवनाचार्य के मत से मैत्री होती है इस वजह से कन्यांश शुभ है और कुम्भ का अस्तांश सिंह है इनका स्वामी शनि सूर्य हैं इनमें मैत्री नहीं होती इस वजह से कुम्भांश नहीं शुभ है अतएव नवांश आचार्य लोगों ने शुभ कहा है प्रमाण इसका पहले कह चुके हैं तथापि प्रसंगवश से फिर दिखलाते हैं। प्राग्लग्ने द्विपद्गृहात् कुर्यादन्यांशकोदयोनाशम्। द्विपद में कन्या तुला, मिथुन धनु इन सबों का अंश शस्त है यही ग्रन्थकर्ता का अभिप्राय है यह सब हमने प्रपञ्च वर्णन किया। परमार्थिक में अर्वाचीन पुरुषों का नयन का आवरण मात्र है वह जैसे अपने तुलादिक के उक्त नवांश में लग्नांश सप्तमांशाधिपति ग्रहों की मैत्री कारण कहते हैं तो मेष नवांशाधिपतियों में मैत्री होती है तो क्यों त्याज्य करते हैं यह कहो कि वह

पाप राशि है सो भी ठीक नहीं । क्योंकि वृषांश की मैत्री होने में त्याग किया है वह तो पाप राशि नहीं है यह कहो कि वह मनुष्य नहीं होता है इस वजह से तो शौनक मुनि ने भी मीनांश को कैसे ग्रहण किया अच्छा यह कहो कि शुभग्रह है द्विपदास्तत्व है सो भी ठीक नहीं क्योंकि ऐसा जब जानोगे तो तुलांश को मेष अमनुज पाप राशि कैसे ग्रहण किया तुमने ऐसा कहा कि लग्नांश सप्तमांश में एकतर लिया जाता है सो भी नहीं । क्योंकि जगतिनैकवशात् किल सौहृदं । अर्थात् एक के वश से मैत्री नहीं होती । अथवा यह कहो कि हमारा यह अभिप्राय है कि उदयद्विपदांशनियामकम् । अर्थात् उदय में मनुष्य राशि का नवांश शुभ है सो भी ठीक नहीं संसार में एक के वश से मैत्री नहीं होती है यह तुमने जो कहा है सो तुम्हारे कहने से यह मालूम होता है कि अस्तांश भी द्विपद हो तो शुभ है । अब परिशेष से प्राग्लग्नेद्विपदग्रहात् कुर्यादन्यांशकोदयोनाशम् ॥ यह आगम प्रमाण जो वक्तव्य हो तो हमको भी फलित है अर्थात् मनोभिलषित है आगम यह प्रमाण है । परन्तु तुलांशादिक में कैसे

कारण स्वीकार किया और किस वास्ते यह कर्णान्तर जो ग्रहमैत्री कल्पना कियी लाघवार्थ और शौनक मुनि के मौनांश को अमनुजत्व में भी स्वीकार करने से । इस वजह से नवांश युक्ति करके यवनाचार्य की कही हुई ग्रहमैत्री माननीय नहीं होती है तो यह नवलवाधिपति इत्यादि जो कहा तो क्यों उत्तर यह है कि ग्रन्थ के संदर्भ करके कहा इस वजह से । वराहमिहिराचार्य ने अपनी संहिता में कहा है । ज्योतिषमागमसिद्धंविप्रतिपत्तौनयोग्यमस्माकं । अर्थात् ज्योतिष शास्त्र आगमसिद्ध है अपना मत विकल्पनीय है । इस वजह से वराहमिहिराचार्य ने यवन के मत में केषांचिदेवंमतम् ऐसे कहा इससे यह सिद्ध हुआ कि सत्याचार्य की ग्रहमैत्री बहुसंमत हुई और इसी वजह से सत्याचार्य की मैत्री सर्व जनों में ख्यात है। अर्थात् सब लोग जानते हैं और यवनाचार्य की ग्रहमैत्री तो एक देशी है इस कारण से महान् लोगों ने उपेक्षित कियी है ऐसा जब कि है तो यहां पर ग्रन्थकर्ता ने क्यों वह ग्रहमैत्री रक्खी । उत्तर रखने से अपराध क्या हुआ सत्यादिक ने कहा है । ग्रन्थकर्ता करके अपने गौरव अर्थ को कुछ अपूर्व वक्तव्य

है तथा यहां पर महानों की युक्ति है और बहुत की युक्ति करके अलंदूषण है । अब इन अंशो का विशेष कहते हैं) निरन्तर में अस्तांशपति शत्रु स्वामी (जिस) नवांश का होय उसको त्याज्य करना (आशय यह है कि लग्नांश सप्तमांशपतियों में तात्कालिक शत्रुत्व होने से वह नवांश त्याज्य करना) बलहीन है जिस नवांश का पति वह नवांश भी त्याज्य है ॥ ८ ॥

अब लग्नशुद्धि अस्तशुद्धि कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

लवपतिः कुरुतेलवलग्नयोः
पातमृतिंत्रिवसुव्ययवित्तगः ॥
नवलवास्तपतिः प्रतिहंत्यसून्
मृगदृशश्चतदस्तभयोस्तथा ॥ ९ ॥

अन्वयः—लवपतिः लवलग्नयोः (सकाशात्) त्रिवसुव्ययवित्तगः पतिमृतिं कुरुते (तथाच) नवलवास्तपतिः तत् अस्तभयोः तथा (त्रिवसुव्ययवित्तगः) मृगदृशश्चअसून् (प्राणान्) प्रतिहन्ति ॥ ९ ॥

भाषा—नवांशपति नवांश से लग्न से ३ । ८ १२ । २ में होय तो स्वामी को नाश करते हैं ।

(यही लग्नशुद्धि भई । अब सप्तमशुद्धि कहते हैं) नवांश से सप्तम पति नवांश सप्तम से वा लग्न सप्तम से (अर्थात् नवांश कुण्डली में नवांश से सप्तम जो स्थान है उस स्थान से अथवा लग्न कुण्डली में लग्न से जो सप्तम स्थान है उस स्थान से) ३ । ८ । १२ २ में होय तो स्त्री के प्राण को नाश करते हैं (१) ॥

विशेष सूचना ।

॥ श्लोकः ॥

उभयदृक्फलदानलदार्थ्यतो
लवदृगुद्वहतेकियदूनताम् ॥

(१) यहां पर आशंका होती है कि यवनादिक आचार्यों ने नवांश स्वामी की नवांशदृष्टि वो लग्नदृष्टि मात्र से लग्न शुद्धि कही है फिर यहां पर "त्रिवसुव्ययवित्तग:" अर्थात् ३ । ८ । १२ । २ इसकी शुद्धि कैसे कही उत्तर यह है कि ६ । २ । १२ । ११ इन स्थानों को ग्रह नहीं देखते अपने स्थान से स्थान को और भवन को देखते है । जहां पर ग्रह का स्थान है वह स्थान से ११ उसे ३ में ग्रह रहते हैं इसी तरह से जो ६ है उसे ग्रह ८ में रहते है जो २ है उसे १२ और जो १२ उसे २ में ग्रह होते हैं इस वजह से जो ३ । ८ । १२ । २ यह कहा सो ग्रह की दृष्टि का कहा यह कुछ विरोध नहीं है अन्य आचार्यों ने केवल यहां पर दृष्टि मात्र से उदय शुद्धि कही है सो कहते है । "युत:

तदिहकेवललग्नदृशः फलं
शकलितं कलितं यवनेश्वरैः ॥ १० ॥

अन्वयः—उभयदृक्फलदा स्यात् (कस्मात्) बलदाढ्यतः (अतः) लवदृक् कियत् ऊनतां उद्वहते (धारयति) तत् (तस्मात्) इह (अस्मिन्विवाहे) केवललग्नदृशः फलं शकलितं (अर्धितं) यवनेश्वरैः कलितं (लक्षितं) ॥ १० ॥

भाषा—नवांश दृष्टि और लग्नदृष्टि (इन दोनों दृष्टियों के होने से) पूर्ण फल देती है किस कारण से बल युक्त से (स्पष्टाशय यह है कि लग्न शरीर है अंश शरीर का अवयव रूप है तो दोनों की दृष्टि होने से सम्यक् फल होता है इस वजह से) अंश

स्वनाथेनविलोकितोवा नवांशकोलग्नगतोनराणाम् । निहन्त्यनिष्टा-नितथापमृत्युं कलत्रसंस्थश्चनितम्बिनीनाम् ।अर्थ। लग्नगत जो नवांश है सो अपने स्वामी करके युक्त हो अथवा दिखाता हो तो पुरुष के अनिष्ट फल को नाश करता है तिसी तरह से सप्तम गत जो नवांश है सो अपने स्वामी से दृष्ट युक्त हो तो स्त्री की अकाल मृत्यु को नाश करता है इसके अलाभ में लग्न दृष्टिग्रहण करना ।" पश्येद्यदांशाधिपतिर्विलग्नं लग्नेऽथवास्यादुदयांशशुद्धिः । अस्तांशनाथः स्मरभंविलग्नात्पश्येत्तदास्तांशविशुद्धिरुक्ता ।" अर्थ जो अंशाधिपति लग्न को देखता हो अथवा लग्न में हो तो उदयांश शुद्धि होती सप्तम नवांश पति लग्न से सप्तम राशि को देखते होयं तो अस्तांशशुद्धि होती है) ॥

दृष्टि कुछ ऊनता (फल) को धारण करती है (अर्थात् केवल अंश दृष्टि किञ्चित् न्यून फल देती है) इस वजह से इस विवाह में केवल लग्नदृष्टि के फल को आधा यवनादिक आचार्यों ने कहा है (अर्थात् अंशदृष्टि के बिना केवल एक लग्न दृष्टि होने से आधा फल होता है ॥ १० ॥

॥ श्लोक ॥

स्पृशति किं न कदाचिददृश्यता-
मवयवोऽवयविन्यवलोकिते ॥
अमतकेवललग्नदृशां तन्-
मतमतर्कसहं समुपास्महे ॥ ११ ॥

अन्वयः—(यस्मात्) अवयविनि अवलोकिते (सति) अवयवः कदाचित् अदृश्यतां किं न स्पृशति (स्पृशत्येव तस्मात्) अमतकेवललग्नदृशां तन्मतं अतर्कसहं (अपितु तर्कसहं वयं) समुपास्महे ॥ ११ ॥

भाषा—जिस कारण से लग्न में दृष्टि रहते अंश कभी अदृश्यता को क्या नहीं प्राप्त होता (आशय यह है कि लग्न को जो ग्रह देखता है वह ग्रह नवांश को कभी भी नहीं देखता है तिस कारण से नहीं है सम्मति) केवल लग्न दृष्टि में उनका मत

नहीं अतर्कसह है (अर्थात् तर्कसह है) उसको हम भी मानते हैं (१) ॥ ११ ॥

॥ श्लोक ॥

ननुनवांशकमंशपतिर्निजं
कलयतीहविलग्नविलोकने ॥
यमवलोकयतेसतनोः पृथ-
ग्यदितदिष्टफलायजलाञ्जलिः ॥१२॥

अन्वयः—ननु (अहो) इह (विवाहे) अंशपतिः लग्न-विलोकने (सति) निजं नवांशं कलयति (पश्यति) यं (नवांशं) अवलोकयते सयदि तनोः (सकाशात्) पृथक् (अस्ति) तत् (तदा) इष्टफलाय जलांजलिः (स्यात्) ॥ १२ ॥

भाषा—शंका यह होती है कि विवाह में अंश स्वामी लग्न के देखने से निज नवांश को देखते हैं (वजह यह कि लग्नांशान्तर्गत नवांश होता है इससे जो भिन्न हो तो दोष है) नवांशपति जिस नवांश को देखते हैं वह नवांश यदि लग्न से भिन्न है तो लग्न

---

(१) स्पष्टाशय यह है कि जिनको केवल लग्नदृष्टि नहीं सम्मत है अर्थात् लग्न नवांश दोनों दृष्टि मानते है। उनका मत तर्कसह है हम भी मानते हैं जो कि "उभयदृक्फलदा" कही है अर्थात् दोनों दृष्टि सम्यक् फल देनेवाली है । जो केवल लग्न दृष्टि लेते हैं उनपर यह कहा गया है ॥

को इष्ट फल के लिये जलाञ्जलि हुई (अर्थात् जलांजलिदान मृतक को किया जाता है) कहा है कि "तनुफलं हि लवानवलम्बते ॥ १२ ॥

यहां पर इन लोगों का भी अनिष्ट है क्योंकि दोनों लग्नदृष्टि नवांशदृष्टि माननीय है सो कहते हैं।

॥ श्लोक ॥

अपृथगस्ति स चेत्तनुपश्यता
तनुमसावधिपेन निरूपितः ॥
हृदयहारदृशेव मृगीदृशः
प्रणयिना तरलस्तरलद्युतिः ॥ १३ ॥

अन्वयः—ननु सनवांशः चेत् अपृथक् अस्ति (लग्नांतर्गतएवास्ति तदा) तनुंपश्यता अधिपेन असौ (नवांशः) निरूपितः (दृष्टएव) (केन क इव) प्रणयिना मृगीदृशः हृदयहारदृशः तरलः तरलद्युतिरिव ॥ १३ ॥

भाषा—(अहो मित्र) वह नवांश जब लग्नान्तर्गत है तब लग्न को देखनेवाले स्वामी से वह नवांश भी दृष्ट हुआ (किस करके किसके नाईं) प्रिय

पुरुष द्रष्टा से स्त्री के हृदय हार में मध्य मणि चमत्क तेजवाली दृष्टि में जैसे पड़े (१) ॥ १३ ॥

॥ श्लोकः ॥

तनुपातिस्तनुमस्तमथास्तपो
यादिनपश्यतिनश्यतितत्कृतम् ॥
इतिपरः परमत्रमतेपत-
त्लवतरौचतुरौद्रइवाशनिः ॥ १४ ॥

अन्वयः—यदितनुपतिः तनुंनपश्यति अथ अस्तपः अस्तं (नपश्यति तदा) तत्कृतं (लग्नकृतं शुभफलं) नश्यति इति परः (कश्चिदाचार्यआह) बत (अहो) अत्रमतेलवतरौ इवरौद्रः अशनिः परं पतेत् ॥ १४ ॥

भाषा—जब लग्नपति लग्न को न देखे और (लग्न से) सप्तम पति (लग्न से) सप्तम को देखे तब उस लग्न का किया शुभ फल नाश हो जाता है कोई पर आचार्य कहते हैं कि आश्चर्य है । इस मत

---

(१) आशय जैसे कोई स्त्री गले में हार पहने है उस हार में सुमेरु जो अधिक तेजवाली है वह उस स्त्री के ऊपर दृष्टि लगानेवाले कामी पुरुष की दृष्टि में वह बहुत शीघ्र देखने में आवेगी वैसे ही लग्न को देखनेवाला ग्रह लग्नान्तर्गत नवांश जो अधिक तेजवाले मणि सदृश है उसको अवश्य देखेगा ॥

में लवतरु की नाईं उग्र शस्त्र उत्पन्न हुआ। (अर्थात् नवांश रूपी वृक्ष पर शिवजी का उत्कृष्ट अस्त्र पात हुआ यानी नवांश फल छेदन हुआ॥ १४॥

इस प्रकार युक्ति के सहित लग्न व सप्तम शुद्धि कहके अब जन्म राशि लग्न पर से अंश शुद्धि को कहते हैं।

॥ श्लोकः॥

जननलग्नभयोर्मृतिशाशितु-
र्मृतिगतस्यचराशिनवांशकाः॥
तनुगतायादितत्तनुतेवधू-
रतिलकातिलकायजलाञ्जलिम्॥ १५॥

अन्वयः—जन्मलग्नभयोः (सकाशात्) मृतिशाशितुः मृतिगतस्य च राशिनवांशका यदितनुगता (विवाहलग्नगता स्युः) तत् (तदा) वधूः अतिलका (अभर्तृकासती) तिलकाय (स्वामिने) जलाञ्जलिम् तनुते॥ १५॥

भाषा—जन्म के लग्न व राशि से अष्टम स्थानधिपति का और (जन्म लग्न व राशि से) अष्टम स्थान में स्थिति जो ग्रह है उसको भी राशि व नवांश जो विवाह के लग्न में हो तो स्त्री पतिरहित

हो के पति को जलाञ्जलि (तिलांजुलिदान) को विस्तार करती है (अर्थात् विवाहिता स्त्री का पति मर जाता है) ॥ १५ ॥

अथ अष्टम लग्न का जो दोष उसको कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

व्यलिवृषं जननर्क्षविलग्नयो-
र्भवनमष्टममभ्युदितंत्यजेत् ॥
सितपुलस्तिमतेनतदीशता
तनुसमेतिसमेतिनदूषणम् ॥ १६ ॥

अन्वयः—जननर्क्षविलग्नयोः (सकाशात् अष्टमभवनं अभ्युदितं (विवाहलग्नगतं) त्यजेत् (कथं भूतम्) व्यलिवृषम् (कुतः) तत् (तयोः अलिवृषयोः) ईशता तनुसमा इति (हेतोः) सितपुलस्तिमतेनदूषणम् न एति (न गच्छति) ॥१६॥

भाषा—जन्म की राशि व जन्म का लग्न से अष्टम भवन विवाह का लग्न में हो तो त्याज्य करना (अष्टम भवन कैसा है) कि वृश्चिक, वृषरहित (वृश्चिक वृष अष्टम भी हो तो नहीं त्याज्य है वजह यह कि) वृश्चिक वृष के स्वामी लग्नाधिपति होते हैं इस कारण से सित पुलस्ति के मत से दोष नहीं प्राप्त होता ।(यहां पर कोई आचार्य जन्माष्टम स्वामी

में जो मैत्री होतो भी ग्रहण करते है प्रमाण "भ्रष-कुलीरवृषालिमृगाङ्गनाजननराशिविलग्नमहाष्टमा ॥ शुभफला: भृगुणा कथितास्तयोरधिपतीसुहृदौहिपर स्परम्" ॥ १६ ॥

अब तीन व चार के योग में दोष कहते हैं

॥ श्लोकः ॥

चरलवञ्चरवेश्मगमुत्सृजे-
न्मृगतुलाधरगेमृगलक्ष्मणि ॥
युवतिरत्रभवेत्कृतकौतुका
मदनवत्यनवत्यजनोन्मुखी ॥ १७ ॥

अन्वयः—चरलवं चरवेश्मगं उत्सृजेत् (परित्यजेत् कस्मिन् सति) मृगलमणिमृगतुलाधरगे (सति) अत्र (चरत्रययोगे) कृतकौतुकायुवतिः मदनवती (सती) अनवत्यजनोन्मुखीभवेत् ॥ १७)

भाषा—चरराशि का नवांश चरलग्न में हो तो त्याज्य है (क्या रहते) कि चन्द्रमा मकर और तुला राशि में रहे (तब) यहां पर कोई आशंका करे कि चर मेष, कर्क, तुला, मकर चार राशियां हैं मकर तुला दो ही राशियों को क्यों ग्रहण किया तो उत्तर कर्क मेष में चन्द्रमा के रहते विवाह नक्षत्र

के अभाव होने से मकर तुला को कहा। अब उसका फल कहते हैं) इन तीन चरों के योग में (अर्थात् चर नवांश चर लग्न चर राशि में के योग में) विवाहिता स्त्री "कृतकौतुका" कौतुक विवाह कंकण कहलाता है वह किया गया है जिस स्त्री का अर्थात् विवाहिता स्त्री कामार्ता हो के पहिले पुरुष को छोड़ परपुरुषगामिनी होवे । इसका प्रमाण यह है कि "कर्कलग्नेऽथवामेषेघटांशोयदिदृश्यते । तुलायांमकरेचन्द्रेवैधव्यं लभतेतदा ॥" वर्गोत्तमव्यतिरिक्तम् ॥

अब चतुर्थद्वादश लग्न का दोष उसका अपवाद कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

सुखगृहं सुखहृत्तनुजन्मनो-
रबलताशबलैः सुखकर्तृभिः ॥
अपितपोऽव्ययभंव्ययभंक्तृचे-
द्विगतवाधनकाधनकारिणः ॥१८॥

अन्वयः—(तयोः) तनुजन्मनोः (सकाशात्) सुखगृहं (तनुगते) सुखहृत् (व्याल कैः) सुखकर्तृभिः (ग्रहैः) अबलताशबलैः अपि तयोः (जन्मलग्नजन्मराश्योः) व्ययभम्

(तनुगतं तदा) व्ययभंकृत् (स्मात्) चेत्धनकारिणः विगत-बाधनकाः (स्युः) ॥ १८ ॥

भाषा—(दोनों) जन्म लग्न जन्म राशि से चतुर्थ भवन (विवाह के लग्न में गत हो तो) सुख का नाश करता है (क्या करके) सुख करनेवाले ग्रहबल युक्त न रहने से निश्चय करके दोनों जन्म राशि जन्म लग्न से द्वादश राशि लग्न गत हो तो व्यय का नाश होता है जब धन कारक ग्रह रहित हो बाधा से (अर्थात् धन कारक ग्रह के बाधक ग्रह कोई न हो तब) (१) ॥ १८ ॥

अब जन्म गृह वश से नवांश का दोषान्तर अपवाद कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

अशुभकृत्खलगः खलुयोंशकौ-
जनुरनेहसिनेहसितांशुगे ॥
तनुगतेपिशिवं युवयोषयो-
र्बलवतोलवतोनभयंक्वचित् ॥ १९ ॥

---

(१) गर्गजी का प्रमाण है। "चतुर्थद्वादशेकार्येलग्नेबहुगुणान्विते" (अर्थात् चतुर्थ द्वादश लग्न में भी विवाह करना चाहिये जो लग्न उत्तम हो तो) ॥

अन्वयः—जनुः अनेहसि (जन्मकाले) अशुभकृत्खलगः यः अंशकः (स) इहसितांशुगेतनुगतेपियुवयोरयोः (वर-बध्वोः) खलुशिवं (शुभं) न लवतः बलवतः क्वचिद्भयं न (स्यात्) ॥ १९ ॥

भाषा—जन्मकाल में अशुभ करनेवाला पापग्रह जिस नवांश में हो उस नवांश में चन्द्रमा हो या लग्न में वह नवांश हो तो स्त्री पुरुष का शुभ फल नहीं होता है (परन्तु) नवांश जो बलवान् हो तो उक्त दोष का कुछ भय नहीं ॥ १९ ॥

अब जन्म कालिक ग्रहवश के दोषान्तर को कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

अनजनुर्मृतिगोमृतिपश्चयः
सतनुगस्तनुतेनशिवंक्वचित् ॥
इतिविविक्तिरियं फलदासदा
सइहसिध्यतिचेत्समयः स्फुटः ॥२०॥

अन्वयः—अनुजनुः मृतिगः यः (ग्रहः) मृतिपश्च स (यदि) तनुगः (तर्हि) शिवं (शुभं) क्वचित् न तनुते इति इयं (या) विविक्तिः (स) सदा फलदा (स्यात्) चेत् स (जन्मकालः विवाहकालश्च) इह समयः स्फुटः सिध्यति ॥

भाषा—जन्मकाल अनुक्रम से अष्टम (अर्थात् जन्म लग्न से अष्टम) स्थान में जो ग्रह हैं और (जन्म लग्न से) अष्टम का पति जो ग्रह है वह ग्रह जो (विवाह) लग्न में हो तो शुभ फल कभी नहीं बढ़ाता है इस प्रकार का जो विचार किया है वह विचार सदा फल को देनेवाला है जब वह (जन्मकाल और विवाह काल) घटी पलात्मक स्पष्ट (अर्थात्) जन्म-काल विवाहकाल स्पष्ट शाधन से सिद्ध किया हो अन्यथा होने से नहीं ॥ २० ॥

इति श्रीकाशिखण्डान्तर्गतदेवडोहग्रामनिवासिशाण्डिल्यवंशाव-
तंसविविधशास्त्रपरमपण्डितश्रीलालबहादुरत्रिपाठिपुत्र
ज्योतिर्विदत्पण्डितशिवदत्तत्रिपाठिविरचितायां
विवाहवृन्दावनसान्वयशिवकरीभाषाटीकायां
नवांशचिंताध्यायश्चतुर्थः
समाप्तः ॥ ४ ॥



अथ लग्नबलाध्यायः ५

इस तरह से नवांश शुद्धि को रखकर अब ग्रह-बल शुद्धि को कहते हैं तिसमें पहले लग्न से रवि के शुभाशुभ स्थान को दिखाते हैं।

॥ द्रुतविलम्बितं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

अरिपराक्रमलाभविनाशगो
रविरविश्रमसौख्यसुतार्थदः ॥
मदनमूर्तिशयः शयसंग्रहे
मृगदृशामशनिः शनिराहुवत् ॥१॥

अन्वयः—अरिपराक्रमलाभविनाशगः रविः मृगदृशां शयसंग्रहे (पाणिग्रहे) अविश्रमसौख्यसुतार्थदः (स्यात्) मदनमूर्तिशयः (सप्तमलग्नस्थः) अशनिः (स्यात् कंवत्) शनिराहुवत् ॥ १ ॥

भाषा—६ । ३ । ११ । ८ इन स्थानों में सूर्य्य स्त्री के विवाह में बिना परिश्रम सुख पुत्र द्रव्य देते हैं। सप्तम लग्न में (रवि हो तो) खड्गघात होता है शनि, राहु की नाई (अर्थात् शनि राहु भी सप्तम

लग्न में हो तो तो वज्रघात कहा है । राहु शब्द से केतु को भी ग्रहण करना तद्रूप होने से) ॥ १ ॥

अब चन्द्रमा का कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

त्रिधनलाभसुखेषु शुभः शशी
निधनमूर्तिरिपुष्वतिगर्हितः ॥
अशुभशुक्रसखः सखनत्यसून्
दिनकरोनकरोनकरोतिशम् ॥ २ ॥

अन्वयः—त्रिधनलाभसुखे शशी शुभः (स्यात्) निधनमूर्तिरिपुषु अतिगर्हितः (अतिदुष्टः) अशुभशुक्रसखः स असून् खनति दिनकरः ऊनकरः शं (सुखं) न करोति ॥ २ ॥

भाषा—३ । २ । ११ । ४ इन स्थानों में चन्द्रमा शुभ होते हैं ८ । १ । ६ इन स्थानों में चन्द्रमा अत्यन्त दुष्ट हैं पापग्रह या शुक्र ८ । १ । ६ इन स्थानों में जो युक्त हो तो प्राण का नाश करते हैं अर्थात् बुधयुक्त या गुरुयुक्त हो तो शुभ फल होता है । सूर्य से अस्त जो ग्रह है वह ग्रह भी शुभ फल नहीं करता ॥ २ ॥

अब भौम का शुभाशुभ कहते हैं ।

॥ श्लोक ॥

अवनिजस्त्रिभवारिषुवृद्धये
मृतिकरोमृतिमूर्तिमदाश्रितः ॥
इहनभोयुजिजीवदृशंविना
च्युतनयातनयामिषभुग्वधू ॥ ३ ॥

अन्वयः—अवनिज- त्रिभवारिषुवृद्धये (भवति) मृति-मूर्तिमदाश्रितः मृतिकरः (स्यात्) इह (अस्मिन् भौमे) नभोयुजिजीवदृशं विना वधूः च्युतनया (सत्या) तनयामिष-भुक् (स्यात्) ॥३॥

भाषा—मङ्गल ३ । ११ । ६ इन स्थानों में हो तो शुभ फल की वृद्धि के लिये होते हैं । ८ । १ । ७ इन स्थानों में हो तो मृतिकर होते हैं । यह मङ्गल दशम स्थान में हो और बृहस्पतिकी दृष्टि न होने से स्त्री छोड़ कर मार्ग को सन्तानके मांस को खाती है (अर्थात् अन्याय मार्गवर्तिनी हो के तनय के मांस को भोजन करे, पुंश्चली हो) ॥ ३ ॥

अब बुध का शुभाशुभ स्थान कहते हैं ।

॥ श्लोक ॥

व्ययगृहं विरहय्यहिमांशुजः
सकलवेश्मसुवेश्मसुतार्थदः ॥

सनियतं विदधातिवधूवरं
यमकरेमकरेङ्गितमृत्युगः ॥ ४ ॥

अन्वयः—हिमांशुजः व्ययगृहं विरहय्य सकलवेश्मसु (सप्तमाष्टमव्यतिरिक्तेषु) वेश्मसुतार्थदः (स्यात्) स (बुधः) मकरेङ्गितमृत्युगः वधूवरं यमकरेनियतम् विदधाति ॥ ४ ॥

भाषा—बुध द्वादश गृह को छोड़ कर सम्पूर्ण (सप्तम अष्टम रहित) गृह में होने से मकान, पुत्र द्रव्य को देते हैं वह (बुध) अष्टम में निश्चय करके स्त्री पुरुष को यमराज के हाथ में रख देते हैं (स्त्री पुरुष मर जाते हैं)।

अब गुरु का कहते हैं ।

॥ श्लोक ॥

गुरुरनन्त्यमदेषुमुदंश्रियं
सृजातकालगृहेगृहभंगदः ॥
अशुभकृन्मकरेपिकरग्रहे
नमृगराजगतोजगतोहितः ॥ ५ ॥

अन्वयः—गुरुः अनंत्यमदेषु मुदं श्रियं सृजति (ददाति) कालगृहेगृहभंगदः (स्यात्) मकरेपि करग्रहे अशुभकृत् (स्यात्) मृगराजगतः जगतः करग्रहे (न हितः न शुभः गुरुः) ॥ ५ ॥

भाषा—वृहस्पति छोड़ कर द्वादश सप्तम अन्य स्थानों में खुशी व लक्ष्मी को देते हैं अष्टम में होने से स्त्री को नाश करते हैं। मकर राशि में भी कर ग्रह में अशुभ करते है (वजह यह है कि मकर बृहस्पति का नीच स्थान हैं) सिंह राशि के होने से संसार के विवाह में नहीं शुभ होते हैं ॥ ५ ॥

अब शुक्र का कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

सहसपत्नानिमीलनमन्मथे
प्रथमदेवगुरुर्गुरुभीतिकृत् ॥
वहतिशेषगृहेषुमहोत्सवं
व्ययगतः समतांसमतांतरात् ॥ ६ ॥

अन्वयः—सहसपत्नमिमीलनमन्मथे प्रथमदेवगुरुः (शुक्रः) गुरुभीतकृत् (भवेत्) शेषगृहेषु महोत्सवं वहति (ददाति) व (शुक्रः) व्ययगतः मतांतरात् समतां (वहति) ॥ ६ ॥

भाषा—३ । ६ । ८ । ७ इन स्थानों में शुक्र महान् (मरणादि) भय को करनेवाले होते हैं। शेष १ । २ । ४ । ५ । ६ । १० । ११ । १२ गृहों में महा उत्सव को देते हैं । वह (शुक्र) द्वादश स्थान में किसी आचार्य के मत से मध्यम फल देते हैं (यह

पर शनि, राहु, केतु) का फल सूर्य के सदृश जानना) ॥ ६ ॥

अब इस तरह ग्रहों का फल कहके अब कर्त्तरी योग का लक्षण और जामित्र का फल कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

खलकृतातनुरोहिणिमित्रयो-
र्दुरधराविधुराकुरुतेवधूम् ॥
श्रुतिशरांशमितंस्मरभेतयो-
र्ग्रहमपुण्यमपुण्यमिवत्यजेत् ॥ ७ ॥

अन्वयः—तनुरोहिणिमित्रयोः खलकृता दुरधरा वधूं विधुरां कुरुते तयोः (तनुरोहिणिमित्रयोः) स्मरभे श्रुतिशरांशमितं अपुण्यं ग्रहं अपुण्यं (पापं) इवत्यजेत् ॥ ७ ॥

भाषा—लग्न चन्द्रमा से पापग्रह का दुरधरा (योग) हो तो स्त्री को पति रहित करता है (दुरधरा जातक ग्रन्थों में प्रसिद्ध है सो बुद्धिमानों को ज्ञात ही होगा) दोनों (लग्न चन्द्रमा) से सप्तम में ५४ अंश पर पापग्रह हो तो पाप के तुल्य (दूर से) त्याज्य करना ॥ ७ ॥

अब गुरु शुक्र का बाल्यादि दोष कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

क्षिपतिसप्तदिनान्युदयास्तयोः
सुरगुश्चभृगुश्चगतैष्ययोः ॥
इहयुगेपियुगस्यकरग्रहः
स्फुटनमङ्गलदोगलदोजासि ॥ ८ ॥

अन्वयः— सुरगुरुः भृगुश्च गतैष्ययोः उदयास्तयोः सप्तदिनानिक्षिपति इहयुगेपि (गुरुशुक्रयुगले) गलदोजसि (सति) युगस्य (वधूवरस्य) करग्रहः स्फुटमङ्गलदः न (स्यात्) ॥८॥

भाषा—बृहस्पति शुक्र पीछे और आगे उदय अस्त से सात दिन नाश करते हैं (अर्थात् उदय होने के बाद सात दिन बाल्य । अस्त होने से पहले सातदिन वृद्ध होते हैं) इन गुरु शुक्र दोनों के हीनबल होने पर स्त्री पुरुष का विवाह यथार्थ मङ्गल देनेवाला नहीं होता है (अर्थात् स्थानादि बल से हीन अस्तगत नीचादिगत सूचित हुआ) ॥ ८ ॥

इस प्रकार मत्तान्तर से सामान्य करकेगुरु शुक्र का बाल्य वृद्ध कहकर दिनादिकपरत्व से संयुक्त विशेष कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

शिशुजरत्वमहान्युदयास्तयो-

दशचतुर्दशचांगिरसः स्फुटम् ॥
उशनसोदशपञ्च च पश्चिमे
गतिवशात्त्रिदशाहमपश्चिमे ॥ ९ ॥

अन्वयः—अङ्गिरसः उदयास्तयोः शिशुजरत्वं दशचतुर्दश अहानि स्फुटं (स्यात्) उशनसः (शुक्रस्यशिशुजरत्वं) दशपञ्च च (अहानि) पश्चिमे (स्यात्) अपश्चिमेगतिवशात्त्रिदशाहं (स्यात्) ॥ ९ ॥

भाषा—बृहस्पति के उदय वा अस्त से बाल्य वृद्ध (क्रम से) दश दिन वा चौदह दिन होता है (यहां पर स्फुट शब्द कहने से पूर्वोक्त से यह विशेष सूचित हुआ) शुक्र का बाल्य और वृद्ध क्रम से दश दिन और पांच दिन पश्चिम दिशा में होता है और पूर्व दिशा में गति वश से बाल्य वृद्ध क्रम से तीन दिन व दश दिन होता है। गतिवश कहने का वजह यह है कि शुक्र का वक्र मध्यगति से पश्चिम अस्त पूर्व उदय होता है इस कारण से सूर्य की पूर्वगति शुक्र की पश्चिम गति होने से गति योग करके तदनन्तर वृद्धत्व से थोड़े दिन में शुक्र की प्रकाश्यता होती है इस वजह बाल्य और वृद्ध का काम दिन कहा पश्चिम उदय पूर्व अस्तमार्ग गति से होता है इस वजह

से गति के अन्तर करके वृद्ध होने से बहुत दिनों पर प्रकाश्यता होती है इस कारण से अधिक दिन कहा है गतिवशात् कहने से यही अर्थ सूचित हुआ ॥९॥

इस प्रकार लग्न से ग्रहबल कहके किसकी आवश्यकता है उसको कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

द्युमणिजीवलवोदयशासिना-
मुडुपतेरितिपंचबलींविना ॥
परिणमन्तिफलानिचलभुवां
फलविरिञ्चिविरिञ्चिकृतान्यपि ॥ १० ॥

अन्वयः—द्युमणिजीवलवोदयशासिनाम् उडुपतेः इति पञ्चबलिंविना चलभुवाम् फलानि विरिञ्चिकृतानि अपिफल-विरिञ्चिपरिणमन्ति ॥ १० ॥

भाषा—सूर्य बृहस्पति नवांशपति लग्नपति चन्द्रमा इन पांचों के बल के बिना स्त्री का फल ब्रह्मा ने रचा है तौभी फल शुभ नाश को प्राप्त होता है (आशय इसका यह है कि जिस लग्न में पूर्वोक्त पांच ग्रहों का बल नहीं मिलता है तो स्त्री का सब शुभ फल नाश को प्राप्त होता ॥ १० ॥

अब द्वादशस्थ बुध गुरु शुक्र का फल कहते हैं मतान्तर से।

॥ श्लोकः ॥

व्ययगृहं बुधभार्गवजीवयु-
ग्यदि नतत्कुलमित्रजनेष्वपि ॥
कृपणता नरनीरजनेत्रयो-
रिति न शक्रमते क्रमते मतिः ॥ ११ ॥

अन्वयः—व्ययगृहं यदि बुधभार्गवजीवयुक् न (भवेत् तदा) नरनीरजनेत्रयोः तत् कुलमित्रजनेषु अपि कृपणता (स्यात्) इति (हेतोः) शक्रमते (अस्माकं) मतिः न क्रमते (नचलति) ॥ ११ ॥

भाषा—द्वादश स्थान में जो बुध शुक्र बृहस्पति (सब या एक) युक्त न हो तो पुरुष स्त्री तिस कुल मित्रजनों में कृपणता को करे इस प्रकार कि इन्द्र मति में (हमारी) मति नहीं चलती है ॥ ११ ॥

इति श्रीकाशिखण्डान्तर्गतदेवढीहग्रामनिवासिशाण्डिल्यवंशावतंसविविधशास्त्रपारङ्गतपण्डितश्रीलालबहादुरत्रिपाठिपुत्र-ज्योतिर्वित्पण्डितशिवदत्तत्रिपाठिविरचितायां विवाहवृन्दावनसान्वयशिवकरीभाषाटीकायां लग्नबलाध्यायः समाप्तः ॥ ५ ॥

अथ चन्द्रबलाध्यायः ६

इस प्रकार से लग्नबल कहकर अब स्त्रीपु-
रुषका चन्द्रबल विचार कहते हैं ।

॥ रथोद्धता छन्दः ॥ श्लोकः ॥

कन्यकावितरणायपूरुषः
पात्रमात्रमितिनैन्दवम्बलम् ॥
केचिदस्यवितरन्तिकोविदाः
कोविदांकिलकरोतुतन्मनः ॥ १ ॥

अन्वयः—कन्यकावितरणाय (दानाय) पूरुषः पात्रमात्रम् इति (हेतोः) अस्य (वरस्य) ऐन्दवम् बलम् केचित् कोविदाः न वितरन्ति (न ददति) तन्मनः किल कः विदां करोतु (विचारयत्) ॥ १ ॥

भाषा—कन्यादान के लिये पुरुष पात्रमात्र (अर्थात् पात्र योग्य) है इस कारण से इस (वर) को चन्द्रमा का बल कोई पण्डित नहीं देते हैं ऐसे कहनेवालों के मन का विचार निश्चय करके कौन विचार के करे (अर्थात् वह विचार ठीक नहीं है) ॥१॥

इस प्रकार जो मानते है उन्हें अनिष्ट दिख-
लाते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

ईदृशं यदि ततः प्रतिग्रह-
ग्राहिणोस्यकिमभिप्रपञ्चितैः ॥
सांशनाडिगणयोनिशुद्धिभि-
र्जन्मलग्नभवनव्ययाष्टमैः ॥ २ ॥

अन्वयः—ततः यदि ईदृशं (पात्रम् तर्हि) अस्यप्रति-ग्राहिणः वरस्य सांशनाडिगणयोनिशुद्धिभिः जन्मलग्नभवन-व्ययाष्टमैः अभिप्रपञ्चितैः किम् (अत्रफलम्) ॥ २ ॥

भाषा—तिस कारण से जब ऐसा (पात्रमात्र) है तब इस प्रतिग्रह लेनेवाले वरके अंश नाडी गण योनि शुद्धि व जन्मलग्न जन्मराशि से ग्रह द्वादश अष्टम इन सबों का विचार विस्तार करके किस वास्ते किया अर्थात् यह कहने से तो जितने पहिले विचार किये हैं वे सब व्यर्थ हुवा ऐसे विचार करनेवालों को धन्यवाद है यह बहुत से आचार्यों के माननीय वि-चार को तुच्छ कर अपने मन के मान मानना पूर्वोक्त विचारों से सिद्ध हुआ कि चन्द्रबल पुरुष को देखना चाहिये ॥ २ ॥

॥ श्लोकः ॥

लाग्निकोनवलवः पुमन्तकृत्
स्वामिनायादिनयुक्तवीक्षितः ॥
सङ्गमंदिशातिदीर्घनिद्रयान
पत्युरिन्दुतनुकामगोग्रहः ॥ ३ ॥

अन्वयः—लाग्निकः नवलवः यदि स्वामिनायुक्तविक्षितः न (स्यात्) तर्हिपुमन्तकृत् इन्दुतनुकामगः ग्रहः पत्युः दीर्घनिद्रया सङ्गमं दिशति (ददाति) ॥ ३ ॥

भाषा—लग्न में उत्पन्न जो नवांश है (वह नवांश) जो (अपने) स्वामी से युक्त अथवा दृष्ट न हो (तब) पुरुष को नाश करता है चन्द्रमा लग्न से सप्तम में ग्रह हो तो स्वामी का दीर्घ निन्द्रा करके साथ देता है (अर्थात् स्वामी को मारता है) ॥ ३ ॥

॥ श्लोकः ॥

चन्द्रमस्युपचयात्परिच्युते
चारुगोचरचरैः परैरपि ॥
कर्तुरायतिशुभंसभंगुरं
निर्दिशन्त्यसितशौनकादयः ॥ ४ ॥

अन्वयः—चन्द्रमसि उपचयात् परिच्युते (सति) परैः

(भौमादिभिःग्रहैः) चारुगोचरचरैः अपि कर्तुः (वरस्य) अभंगुरं (शुभम्) आयाति असितशौनकादयः निर्दिशंति (कथयन्ति) ॥ ४ ॥

भाषा—चन्द्रमा के वृद्धिस्थान से परिच्युत (अर्थात् बलहीन) होने से पर (भौमादिक ग्रह) अच्छे भी गोचर चार करके होते हैं तो भी वर के नाश के सहित शुभफल (अर्थात् शुभ फल का नाश) आता है। असित शौनक इत्यादि मुनियों ने कहा है। इस विषय में उक्त मुनियों का प्रमाण भी यह है नकुर्वीतास्तगेचन्द्रेदुःस्थितेजन्मराशितः। क्रूरग्रहयुते तद्वन्मङ्गलान्यखिलान्यपि ॥ ४ ॥

ऐसे अनिष्ट प्रसङ्ग होने से चन्द्रबल लेनेवाले मत को दोष देते हैं।

॥ श्लोकः ॥

एवमादिफलवादिनोनृणां-
मैन्दवंबलमुशन्तिकिं न ते ॥
भानुरप्युपचयेनृजन्मतो
यन्मतोक्तिषुतादिष्टमेव नः ॥ ५ ॥

अन्वयः—एवम् आदिफलवादिनः नृणाम् ऐन्दवं बलम्

ते किं न उशंति भानुः अपि नृजन्मतः उपचये (भाठयः) जन्मतोक्तिषु तत् नः (अस्माकं) इष्टम् एव ॥ ५ ॥

भाषा—इस तरह से भादि फल के करनेवाले पुरुष के चन्द्रबल वे क्यों नहीं देते हैं (चन्द्रबल देनेवाले को) अनिष्ट है कारण उन्हो लोगों ने कहा है । पुंसांरविबलंग्राह्यम् । अर्थात् पुरुष को रविबल ग्राह्य है वह हम लोगों ने स्वीकार किया है) सूर्य भी पुरुष की जन्मराशि से उच्च स्थान में (शोभित है) जिसके मत की उक्ति में वह मत हमको स्वीकार है (१) ॥ ५)

इस प्रकार अनिष्ट प्रसंग से पूर्वोक्त मतवाले का निरादर करयुक्त्यन्तर से फिर दोषण देते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

नत्रिवर्गपतिनानरेणचे-
त्कन्ययाशशिबलंसमाप्यते ॥

(१) प्रमाण ॥ योनिः स्त्रीणांशिशिरकिरणश्चित्रभानुश्च पुंसाम् ॥ यहां पर (इस वजह से गोचरचार करके चन्द्रबल व सूर्य बल स्त्री पुरुष दोनों को देखना चाहिये यह सिद्ध हुआ इसका प्रमाण भी कहते हैं । योषितांगुरुपतंगगोचरः ॥ अर्थात् स्त्री के बृहस्पति सूर्य का गोचर विचार से बल लेना ॥

दीयतेयदिहगोमहीमहि-
ष्यादितर्हिदिशतस्यतद्बलम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—चेत् त्रिवर्गपतिना नरेण शशिबलं न समाप्यते कन्यया (समाप्यते) (तर्हि) इह (विवाहसमये) यत्गोमहीमहिष्यादि दीयते तर्हि तद्बलम् तस्य (वरस्य) दिश (देहि) ॥ ६ ॥

भाषा—जो त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म काम का) पति पुरुष करके चन्द्रबल नहीं प्राप्त होता कन्या करके (पाया जाता है) तब इस विवाह काल में जो गौ पृथ्वी भैंस इत्यादिक वर को देते हैं इन सबों का (चन्द्र) बल इस वर को दो (क्योंकि जैसे कन्या के द्वारा चन्द्रबल पति पाता है वैसे ही गवादिक का चन्द्रबल पति को देना चाहिये) ॥ ६ ॥

॥ श्लोक ॥

इन्दुरिन्दुवदनानुगंबलं
यच्छतीहयुवतिग्रहोयतः ॥
सन्नृणामपिकथं षडष्टगः
खण्डयत्ययमसून्प्रसूतिषु ॥ ७ ॥

अन्वयः—इन्दुः इन्दुवदनानुगं बलम् यच्छति यतः

का कहा रहे किन्तु वह स्त्री पति की इच्छा से विप-रीत करने को समर्थ नहीं होती है। इससे यह सिद्ध हुआ कि कृष्णपक्ष में चन्द्रबल न मिलने से नक्षत्र नहीं ग्राह्य करना ॥ ९ ॥

कृष्णपक्ष में चन्द्रमा नष्ट कहे जाते उस विषय में कहते हैं ।

॥ श्लोक ॥

क्रौर्यमेतिबहुलेसकेवलं
नैवनश्यतितमाममांवसन् ॥
नास्तिचैषयदितत्रतत्कथं
तत्कृताजनिषुरिष्टरौद्रता ॥ १० ॥

अन्वयः—स (चन्द्रः) बहुले (कृष्णपक्षे) केवलम् क्रौ-र्यम् एति अमां वसन् (सन्) तमां न नश्यति एव यदि च एषः (चन्द्रः) तत्र (अमायां) नास्ति तर्हि तत् (तदा) जनिषु रिष्टरौद्रता तत्कृता कथं (स्यात्) ॥ १० ॥

भाषा—वह चन्द्रमा केवल कृष्णपक्ष में क्रूरत्व भाव को प्राप्त होते हैं (क्षीण होने से) अमावास्या में वास करने से अन्धकार नहीं नाश होता है नि-श्चय करके (अमा शब्द का मतान्तर से यह भी अर्थ

सिद्ध होता है कि अमावास्या के साथ सूर्य के सहित वास करने से चन्द्र अत्यन्त नष्ट नहीं हो जाते हैं सूर्य के समागम से अगोचर होने से नष्ट ऐसा च-न्द्रमा कहे जाते हैं किन्तु वास्तविक चन्द्रमा नष्ट नहीं होते । यह कहो कि) जब यह चन्द्रमा अमा में नहीं रहते हैं तब जन्म काल में उस चन्द्रमा का किया हुआ अरिष्ट कैसे होता है (जातकादि ग्रन्थोंमें यह प्रसिद्ध है और चन्द्रकृत सूर्य ग्रहण कैसे होता है जिस कारण से सूर्य ग्रहण में चन्द्रछादक होते हैं अर्थात् अवश्य चन्द्रमा रहते हैं) ॥ १० ॥

अब चन्द्र विषय में सिद्धान्तपक्ष कहते हैं

॥ श्लोकः ॥

पार्श्वगेनिजपतौकुटुम्बिनी
दुर्बलेऽपितदभीष्टकार्यकृत् ॥
तारकाऽपिशशिनोनुकूलता-
सम्भवेभवतिपक्षपातिनी ॥ ११ ॥

अन्वयः—दुर्बले अपि निजपतौ पार्श्वगे कुटुम्बिनी तत् कार्यकृत् (स्यात् एवम्) तारकापि शशिनः अनुकूलता-सम्भवे पक्षपातिनी भवति ॥ ११ ॥

भाषा—दुर्बल भी पति अपना उसके पार्श्व में रहे तो उस पुरुष की) स्त्री उस पुरुष के अभीष्ट कार्य को करती है वैसे ही नक्षत्र भी चन्द्रमा की अनुकूलता होने में पक्षपाती होता (अर्थात् चन्द्र अधीने फल को ग्रहण करता है इससे यह सिद्ध हुआ कि कृष्णपक्ष में भी चन्द्रबल होने से ताराबल ग्राह्य करना) (१) ॥ ११ ॥

इति श्रीकाशिखण्डान्तर्गतदेवडीहग्रामनिवासिशाण्डिल्यवंशाव-
तंसविविधशास्त्रपरमपण्डितश्रीलालबहादुरत्रिपाठिपुत्र
ज्यौतिवित्पण्डितशिवदत्तत्रिपाठिविरचितायां
विवाहवृन्दावनसान्वयशिवकरीभाषाटीकायां
चन्द्रबलाध्यायः षष्ठः
समाप्तः ॥ ६ ॥

अथ राहुसत्ताध्यायः ७

अब कोई आचार्य कहते हैं कि राहु ग्रह नहीं है उस विषयमें अपनी कुशलता दिखातेहैं।

॥ श्लोक ॥

यद्वराहमिहिरोनराहुरि-

---

(१) "चन्द्रस्यसर्वदाबलमसिततारावलम् ग्राह्यम् ॥" चन्द्रबलः हमेशा लेना ॥

त्याहताण्डवितबाहुरुच्चकैः ॥
संहितास्मृतिसहायिनीवह-
त्यत्रतत्पथविमाथिनीश्रुतिः ॥ १ ॥

अन्वयः—यत् बराहमिहिरः न राहु इति आह (कथन्भूतः बराहः) उच्चकैः ताण्डवितबाहुः अत्र (अस्मिन्विषये) तत् पथविमाथिनीसंहिता स्मृतिसहायिनीश्रुतिःवहति ॥१॥

भाषा—जो बराहमिहिराचार्य नहीं राहु ग्रह हैं ऐसा कहते हैं (कैसे हैं बराहमिहिराचार्य) ऊंचताण्डवितबाहु अर्थात् बाहु उठाय नृत्य करते (यानी इनका उपहास किया गया) इस विषय में उन बराह के मार्ग को ध्वस्त करनेवाली संहिता स्मृति के सहित वेद भी कहता है (संहिता स्मृति, वेद से विरुद्ध कहे हैं (१) ॥ १ ॥

(१) "जिह्वावक्रेढिपरितस्तिमिरतुदोपमण्डलम् यदिसलेहम्" "वज्रनिभयसम्प्रदायोपाटलिकुसमोपमोराहुः ॥" अर्थात् वज्र भय देनेवाले पाटलि फूल के समान राहु है । स्मृति "सर्वंभूमिसमंदानं सर्वेब्रह्मसमाद्विजाः । सर्वंगङ्गासमंतोयंराहुग्रस्तेनिशाकरे ॥" सर्वेषामेववर्णानां सूतकंराहुदर्शने । यानी राहु दर्शन में सर्ववर्णों को सूतक होता है और वेद का प्रमाण यह "माध्यन्दिनीश्रुति कहती है "स्वरभानुर्हतोषासुरिः सूर्यं तमसाविव्याध ॥" अथर्ववेद और इसी-

अथ राहु के गृह को कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

नैऋतीदिगियमस्यदिक्पते-
र्ध्यानदानवलिभिः फलाप्तये ॥
वेश्मचास्यशशभृद्विमण्डल-
क्रान्तिमण्डलमिथश्चतुष्पथम् ॥ २ ॥

अन्वयः—अस्य (राहोः) दिक्पतेः इयम् नैऋतीदिक् (.प्रसिद्धा किञ्च) अयम् ध्यानदानवलिभिः फलाप्तये (भवति)

पनिषद् में यह लिखा है "सोऽहंघनमितिघनमितिकिलकिललच्य राहोः शिरमाच्छादयतिभाछिन्नंपाप्मावैछायारजनोरूपापाप्मानं करोदुराधर्षयतिछ्पौंविरश्मिविरेचयतिपृथ्वीमाच्छादयतिदीप्तिमा-च्छादयतिद्यूतिमाच्छादयति इत्यादि ॥" अर्थात् सूर्य चन्द्र आकाशादिकका छादक राहु है ऐसे अनेक प्रमाण राहु के ग्रह होने के हैं—यहां ग्रन्थकर्ताने अपनी कुशलता मात्र दिखलायी है जिस कारण से राहु ग्रह नहीं ऐसा वराहमिहिराचार्य नहीं कहते किन्तु वह यह कहते हैं कि ग्रहण में राहु छादक ग्रह नहीं होते हैं क्योंकि यह लिखा है। "योसावसुरोराहुस्तस्यवरोब्रह्मणाप्राप्तः। आप्यायनमुपरागेदत्तहुतांशेनतेनभविता ॥" इस राक्षस राहु को ब्रह्माने पहले वरदान दिया यह पहिले मालूम है यह ग्रहण में जो हवन दानादिक का फल है वह राहु पावे इससे यह सिद्ध हुआ कि वराहमिहिर का कहा ठीक है॥

अस्य (राहोः) ग्रहभूत् विमण्डलक्रान्तिमण्डलम् मिथः चतु-ष्पथम् वेश्म च (अस्ति) ॥ २ ॥

भाषा—इस राहु की दिशा का पति (होना) यह नैऋत्य दिशा (प्रसिद्ध) है (अर्थात् राहु नैऋत्य दिशा का स्वामी है) यह (राहु) ध्यान दान वलि करके जो फल उसकी प्राप्ति के लिये होता है, यहां ध्यान भी इसका लिखा है "करालवदनः खड्गचर्म-माली वरप्रदः" इत्यादि, यानी करालवदन तलवार चर्म माला धारण किये हुए वर देनेवाला इत्यादि। यह तो ध्यान हुआ "दानंगोमेदादिवलयः" अर्थात् गोमेदादिमणि दान वलि "कृष्णपुष्पोपहाराद्यैः" पूजा इत्यादि की फलप्राप्ति के लिये है इस प्रमाण से यह सिद्ध हुआ कि राहु ग्रह है। (परन्तु यह आशंका होती है कि जैसे अन्य ग्रहों का क्रान्तिवृत्त में जो मेषादिक राशि न्यास की गई है उसमें ग्रहों का भ्रमण है वैसे इस राहु का नहीं है इसका उत्तर यह है) यह (राहु) चन्द्रमा का जो शरवृत्त और क्रान्तिवृत्त दोनों का परस्पर सम्पातस्थान (अर्थात् दोनों का संयोग स्थान) जो कि चार मार्ग (जैसे

राहु

श० वृ० क्रा० वृ० यह मार्ग चक्र है) वही राहु

का स्थान है (तो इसके चलने से इसका चलना भी सिद्ध हुआ यही चन्द्रमा का शरपात स्थान है यह ग्रह गणित में प्रसिद्ध है) ॥ २ ॥

॥ श्लोकः ॥

सोन्धकारचरतांवहन्मही-
च्छाययाविशतिसोममण्डलम् ॥
दीपितापरदलेन्दुमण्डल-
च्छाययासहचसूर्यमण्डलम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—स (राहुः) अन्धकारचरताम् वहन् (सन्) महीच्छायया (सह) सोममण्डलम् (विशति) दीपितापरदलेन्दुमण्डलच्छायया सह सूर्यमण्डलम् (विशति) ॥ ३ ॥

भाषा—वह राहु अन्धकार में चलते हुए पृथ्वी छाया से चन्द्रमण्डल को आच्छादन करता है (स्पष्टाशय—राहु अन्धेरे में चलनेवाला पृथ्वी की छाया में भी अन्धकार ही होता उस अन्धकार मार्ग से चन्द्रमण्डल को छादन करता है। अन्धार को बढ़ाता हुआ राहु) प्रकाशमान अपरदल चन्द्रमण्डल को छाया करके सहित सूर्यमण्डल को भी प्रवेश करके छादन करता है (स्पष्टाशय यह है अमावाश्या में चन्द्रमा का ऊपरी भाग प्रकाशमान रहता और नीचे

का भाग अन्धकार रहता है तो उस अन्धकार के छायामार्ग से अन्धकार रूप राहु सूर्यमण्डल में प्रवेशकर छादक होता है इससे गोल गणित और स्मृति इत्यादिक का विरोध परिहरण हुआ (१) ॥३॥

अब आशंका यह है शरवृत्त क्रान्तिवृत्त दोनों के सम्पात में कैसे राहु है उसे कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

वृत्तयोः पतनमेवपातइ-
त्याहुरत्रकिलराहुरीक्षते ॥
आपतन्तममृतद्युतिंसुधा-
स्नानदानहवनांशलालसः ॥ ४ ॥

अन्वयः—वृत्तयोः पतनं एव पातः (गोलविदः) इति आहुः अत्र (पाते राहुः) आपतन्तं अमृतद्युतिम् (चन्द्रं) ईक्षते किल (इति आगमे) कथम्भूतः सुधास्नानदानहवनांशलालसः ॥ ४ ॥

भाषा—दोनों वृत्तों (अर्थात् शरवृत्त क्रान्तिवृत्त)

---

(१) गोलाध्यायेराहुः कुभामण्डलगः शशांकं शशांकगश्छादयोतिनबिम्बम् ॥ यानी राहु पृथ्वी की छाया मण्डल में हो के चन्द्रमा को छादन करता और चन्द्रमा की छाया मण्डल होके सूर्य बिम्ब को छादन करता है ॥

के पतन को निश्चय करके पात (गोल गणित आ-नवेवाले) इस तरह कहते उस पात में चलते हुए अमृत तेजवाले (चन्द्रमा) को (ग्रहण करने के लिये) देखता है (कैसा वह राहु है) अमृत स्नान दान हवन इन सबों के अंशको लेने के लिये तत्पर है (१) ॥ ४ ॥

यहां पर आशंका होती है कि जब ऐसा है तो हरएक पर्व में ग्रहण क्यों नहीं होता उस पर कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

सैंहिकेयगृहतामुपेयुषो-
र्दूरगोवियतिवृत्तपातयोः ॥

(१) अभिप्राय इसका यह है कि पात में स्थित राहु जानता है कि हम को ब्रह्मा से वरदान हुआ है कि अमृतस्नानदानादिक का भाग लेना इस वजह से अमृतमय चन्द्रमा को अमृतलालसी राहु ग्रहण करता है । सूर्यग्रहण में भी चन्द्रछायासान्निध्य रहता है । इस वजह से सूर्यग्रहण में भी राहु कारण होता है ब्रह्मा का वरप्रदानादिक ब्रह्मपुराणादिक में प्रसिद्ध हैं । आगम-प्रमाण होने से राहु संपात में रहता यह सिद्ध हुआ। यही बात वराहमिहिराचार्य ने कही है "योवासुरोराहुस्तस्यवरोब्रह्मणापुरा-

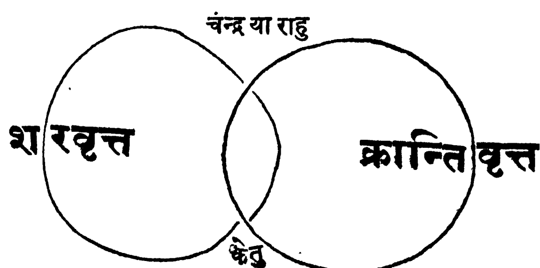
ग्रासमेतिनरविर्नचन्द्रमाः
गृह्यतेसखलुपार्श्वगस्तयोः ५ ॥

अन्वयः—सैंहिकेयगृहतां उपेयुषोः वृत्तपातयोः दूरगः रविः वियति ग्रासं न एति (न प्राप्नोति) न (च) चन्द्रमाः (ग्रासं एति) तयोः (शरवृत्तक्रान्तिवृत्तपातयोः) पार्श्वगः स (रविः) खलु (इति निश्चितं राहुणा) गृह्यते ॥ ५ ॥

भाषा—राहु के गृह को प्राप्त जो दोनों शरवृत्त क्रान्तिवृत्तों का पात है सो दूर है (और) सूर्य आकाश में है (इस वजह) सूर्यग्रास नहीं होता और न तो चन्द्रग्रास होता शरवृत्त क्रान्तिवृत्त का संपात जहां है इसके पार्श्व में जब रवि जाते हैं तब राहु करके ग्रहण किये जाते हैं (१) ॥ ५ ॥

मतः । चप्यायनमुपरागेद्दत्तहुतांशेनतेनभविता ॥" ऐसे बहुत से प्रमाण हैं ॥

(१) स्पष्टाशय: शरवृत्त क्रान्तिवृत्त के दो संपात हैं। जैसे



ऐसे राहु को गणित से निरूपण कर अब जातक व संहिता से कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

राशिवृत्तवसतिः ससूर्यव-
द्भावगोचरफलैर्नहीयते ॥
रिष्टभङ्गजननैकनायको-
हौरिकैरपिसकैर्नकीर्त्यते ॥ ६ ॥

अन्वयः—स (राहुः) राशिवृत्तवसतिः सूर्यवत् भावगोचरफलैः न हीयते (किन्तुहीयते) स राहुः अरिष्टभङ्गजनने एकनायकः कैः हौरिकैः अपि स न कीर्त्यते ॥ ६ ॥

भाषा—वह राहु राशिवृत्त में वास करते सूर्य की नाईं भाव फल गोचर करके नहीं प्राप्त होता (किन्तु होता है। इस वजह से संहिता में सूर्य का जैसा

इस वृत्त में दो संपात हैं इनमें एक तो चन्द्रपात स्थान दूसरा उनसे सप्तम है वे दोनों राहु के स्थान हैं उनमें एक स्थान राहु कहा जाता दूसरा जो सप्तम वह केतु कहा जाता है तो दोनों दूर हैं इस वजह से सूर्य चन्द्रग्रास नहीं होता वजह यह है कि शर अधिक रहता है शर जो है सो राहु और चन्द्रविम्ब के अन्तर में रहता है मानैक्यार्द्ध से कम शर होने से ग्रहण होता है शर अधिक होने से नहीं यह ग्रहगणित में प्रसिद्ध है॥

भावफल है वैसा राहु का भी कहा है इस कारण से राहु का भाव गोचर फल होने से राहु ग्रह सिद्ध हुआ इस तरह जातकों में भी वह राहु) अरिष्ट और अरिष्टभङ्ग जनाने में इन दोनों का स्वामी होता है कौन होराशास्त्र जाननेवाले निश्चय से (उस राहु का) नहीं कहते (अर्थात् सब जातक शास्त्र जाननेवालों को ज्ञात है कि अरिष्ट का जनक और अरिष्ट का भंग करना इन दोनों का कर्ता राहु है (१) ॥ ६ ॥

अब आशंका यह होती है कि यह चन्द्रपात राहु का गृह है तो भौमादिक पातों का गृह क्यों नही होता उस विषय में कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

एषशेषखगपाततुल्यतां
नैतिचन्द्ररविपर्वगावितः ॥

---

(१) "राहुश्चतुश्चतुष्टयस्थोमरणायनिरीक्षितोभवतिपापैः॥" यानी केन्द्र में राहु हो और पापग्रह से देखा जाता हो तो मरण के लिये होता है यह अरिष्टजनक हुआ। "अजवृषभकर्किलग्नेरक्षतिराहुः समस्तपीडाभ्यः॥" यहां अरिष्ट भंग करता है अनेक प्रमाण होने से इस राहु को जातक शास्त्र भी ग्रहण करता है॥

जातकादिषु यथेन्दुमन्दिरा-
त्कितथानफलमन्यराशितः ॥ ७ ॥

अन्वयः—एषः (चन्द्रपातः) शेषखगपाततुल्यतां न एति (यत् अयम्) चन्द्ररविपर्वगर्वितः किं (च) यथा इन्दु-मन्दिरात् जातकादिषु फलं (स्यात्) तथा अन्यराशितः न (स्यात्) ॥ ७ ॥

भाषा—यह चन्द्रपात भौमादिक पातों के तुल्य नहीं प्राप्त होता (वजह यह है कि चन्द्रपात) चन्द्र सूर्य के ग्रहणकर्ता होने से गर्वित (अर्थात् गर्व को प्राप्त है यानी चन्द्र सूर्य राहु से सन्निहित होते हैं तो ग्रहण होता इतर में नहीं, इस वजह से अन्य पातों के तुल्य नहीं होता है) किन्तु जैसा चन्द्रराशि से जातकादि (जातक संहिता स्वरशास्त्र यमला-दिक) ग्रन्थों में फल होता वैसा दूसरे ग्रहों की राशि से फल नहीं होता (इस वजह से सब ग्रन्थों में जैसे चन्द्रराशि से फल होता है उसका पात राशि से भी है यानी यह सिद्ध हुआ कि यह पात शेष पातों के बराबर नहीं है) ॥ ७ ॥

इस तरह से प्रथम पात में राहु को स्थित कर द्वितीय पात में स्थिति करते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

वृत्तपातमपरंस्वपाततो-
राहुरातसमयात्स्वयंभुवः ॥
मन्दिरंतदपितस्यतद्गत-
स्त्यज्यतेजगतिदिव्यरिष्टवत् ॥८॥

अन्वयः—स्वपाततः वृत्तपातं अपरं स्वयम्भुवः समयात् राहुः एति (गच्छति) तत् अपि तस्य मन्दिरं (अस्ति) तद्गतः (राहुः) जगति (लोके) दिव्यरिष्टवत् त्यज्यते ॥८॥

भाषा—(चन्द्रमा का शरवृत्त क्रान्तिवृत्त का जो संपात है वही चन्द्रपात है वही राहु का स्थान है इस) उसके पात से (छः राशि के अन्तर द्वितीय संपात होता है यह) जो वृत्तपात दूसरा है उसमें ब्रह्मवरदान से राहु जाता है वह भी उस राहु का गृह है (इसको लोक में केतु ऐसा कहते हैं उसमें राहु के आने से संसार में आकाशारिष्ट की नाईं लोग त्यागते हैं (१) ॥ ८ ॥

(१) दिव्यरिष्ट शब्द से यहां पर केतु को समझना यानी दि-

आशंका यह होती है कि संपात का सब ग्रहों
में चन्द्रमा की मुख्यता होने में यह फल
देनेवाला है तब चन्द्रमा का ऊंच फल
क्यों नहीं होता इसको कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

पातवद्गतिवशेनशीतगो-
रुच्चमस्तुफलदंकिलेतिचेत् ॥
अस्तुकिन्तुनहितान्निवेशितं
राहुवद्ग्रहपदेविरिञ्चिना ॥ ९ ॥

अन्वयः—शीतगोः उच्चं फलदं किल अस्तु (किंवत्) पातवत् (केन) गतिवशेन इति चेत् अस्तु (तर्हि) किन्तु हि (यस्मात्) तत् (उच्चम्) विरिञ्चिना राहुवत् ग्रहपदे न निवेशितम् (न स्थापितम्) ॥ ९ ॥

भाषा—चन्द्रमा का उच्च फल देनेवाला निश्चय

तीय संपातगत राहु लोक में केतु के नाम से त्याज्य है। ब्रह्मपुराणादिक में इसका प्रमाण भी है यथा "विष्णुनासुदर्शनछिन्नंराहोः शिरोराहुरपरंकेतुः" इति, यानी राहु विष्णु के सुदर्शन से काटा गया जिसमें शिर राहु और धड़ केतु के नाम से प्रसिद्ध है इस वजह एक शरीर है दो भाग करने से राहु केतु के नाम से प्रसिद्ध हुए)॥

कारके हो (किसकी नाईं) पात की नाईं (किससे) गतिवश से ऐसा जब कि है तो रहे (तब) किन्तु जिस कारण से उस उच्च को ब्रह्मा ने राहु के समान ग्रह पंक्ति में नहीं रखा (अर्थात् उस उच्च को ब्रह्मा के वर का अभाव है यानी पात को तो ब्रह्मा का वरदान हुआ है इससे फल दातृत्व है यह पहले कहा गया किन्तु यह उच्च फल देनेवाला नहीं हो सकता ॥९॥

अब इस तरह चन्द्रोच्च के फलदातृत्व आगम प्रमाण से निरादर कर गोलयुक्ति से दूषण देते हैं ।

॥ श्लोक ॥

किंचगोलगणितानियन्मही-
मध्यकेन्द्रमधिकृत्यतेनिरे ॥
तद्गतः शशिनमीक्षतेस्फुटं
व्युच्चहेतुमपिपातवर्त्मनि ॥ १० ॥

अन्वयः—किं च यत् गोलगणितानि महीमध्यकेन्द्रं अधिकृत्य तेनिरे (विस्तृतानि) तद्गतः (नरः) पातवर्त्मनि स्फुटं शशिनं व्युचहेतुं ईक्षिते (पश्यति) अपि (निश्चयार्थः) ॥ १० ॥

भाषा—किंच (इस शब्द का यह अर्थ है कि

युक्त्यान्तर करके भी दोष है) जो गोल गणित (कक्षा-वृत्तादि) को पृथ्वी का मध्य केन्द्र मान कर विस्तार किया है (यथा सिद्धान्तों में लिखा है 'वृत्तस्यमध्यं किलकेन्द्रमुक्तं', अर्थात् वृत्त का जो मध्य वही निश्चय करके केन्द्र कहा गया है। जिस वजह से सब कक्षा-वृत्त नाड़ी वृत्तादिकों का मध्य जो है सो भूगर्भ है) उस भूगर्भ में स्थित नर पात मार्ग में स्पष्ट चन्द्रमा के उच्च को छोड़ कर देखता है (१) ॥ १० ॥

---

(१) इस वजह से कहा है "चन्द्रस्यकक्षावलयेहिपातः" यानी चन्द्रकक्षावृत्त में पात रहता इसी कारण से भूगर्भ में स्थित द्रष्टा कक्षावृत्त में स्पष्ट चन्द्रमा को देखता है और वहीं उसका पात भी रहता है दोनों के एक वृत्त में होने से उसके पात को फल दातृत्व धर्म प्राप्त होता है किन्तु उच्च का नहीं होता इसी वजह से कहा "व्युच्चहेतुं" परन्तु यह सब ग्रन्थकर्ता ने कहा है वह सब जनों का मोहन मात्र है वास्तव में यह नहीं है यद्यपि कक्षा प्रतिवृत्त का अथवा नीचोच्च वृत्तों का जो स्थान है वह उच्च है तौभी उच्च हेतु के बिना कक्षावृत्त में स्पष्ट चन्द्रदर्शन कैसे हो स्पष्ट चन्द्रमा का कारण उच्च होता है यह सूर्यसिद्धान्त में लिखा भी है "अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्तयोभगणाश्रिताः। शीघ्रमन्दोच्चपाताख्यग्रहाणांगतिहेतवः ॥" यानी अदृश्य रूप काल की मूर्ति भगण के आधीन शीघ्रोच्च मन्दोच्च पात ग्रहों की गति के हेतु है

॥ श्लोकः ॥

अत्रयेनविकलादलार्द्धम-
प्यह्नियान्तिफलमस्तुकिंततः ॥
तावदेवफलगौरवं गति-
र्यावतीत्यधिकलः कलानिधिः ॥ ११ ॥

अन्वयः—अत्र ये (भौमादीनांपाताः ते) विकलादलार्द्धं अपि अह्नि (दिवसे) न यान्ति ततः किं फलं अस्तु (अपितुनास्तु अतः) यावतीगतिः तावत् एव फलगौरवं इति (हेतोः) कलानिधिः अधिफलः ॥ ११ ॥

भाषा—यहां पर जो (भौमादिकों का पात है सो) एक विकला एक विकला का आधा उसका आधा भी एक दिन में नहीं चलता तिससे उसका फल क्या होगा (कुछ फल नहीं हो सकता । इस वजह से) जितनी अधिक गति होती उतना ही

इसी कारण से "व्युत्क्रहेतुं" जो कहा वह अयुक्त कहा इस वजह से युक्त्यन्तर से कहते हैं "अर्कमर्कजकुजार्जतुंगतां ॥" इत्यादि जो कहा है इसमें दिखलावेंगे और गतिवश से जो कहा है उसको दृढ़ करके अन्य पातों का फल दातृत्व धर्म नहीं होना इसको कहके चन्द्र फल को गौरव से दृढ़ करते हैं ॥

निश्चय करके फल गौरव होता है इस कारण से चन्द्रमा अधिक फल देनेवाले कहे जाते हैं (१) ॥११॥

॥ श्लोक ॥

किंचगोलगणितेषुजिष्णुजः
सोमरोमकमयादयोपिच ॥
पर्ययेणननुराहुपातयो-
र्नामिनीविदधुरेवतान्त्रिकाः ॥ १२ ॥

अन्वयः—किंच जिष्णुजः सोमरोमकमयादयः अपिच ननु (एते) तान्त्रिकाः गोलगणितेषु पर्ययेण राहुपातयोः नामनी विदधुः एव ॥ १२ ॥

भाषा—किञ्च शब्द प्रमाणान्तर को कहता है जिष्णुजः (ब्रह्मगुप्त) सोमरोमक मुनि मायासुर पितामह वशिष्ठ यह भी निश्चय करके शास्त्र के बनानेवाले गोल गणित में पर्यय से राहु पात ऐसा नाम रखते हैं (२) ॥ १२ ॥

---

(१) एकतस्तुग्रहाः सर्वं एकतः शशलाञ्छनः । ततोधिकतरश्चन्द्रस्तस्माच्चन्द्रंपरीक्षयेत् ॥

(२) जैसे घट कलश इसका प्रमाण भी है "कुमुदिनीपतिपातोराहुमाहुरिहकेपितमेव" इस कारण से जो पात है सोई राहु है अर्थात् सोमरोमकादिक का आशय है कि जो वृत्त संपात है वही निश्चय से राहु है ॥

अब आशंका यह होती कि पात राहु हो लेकिन उच्च के फलदातृत्व अभाव में क्या आता है यहां पर "व्युच्चहेतुं" कारण उपन्यस्त है तौभी सूक्ष्म दृष्टि विचार में संदिग्ध है ऐसी आशंका को मन में धारण करके निरास में युक्त्यन्तर को कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

अर्कमर्कजकुजार्यतुंगतां
किंनयन्तियदितत्पृथग्भवेत् ॥
कल्पनातदियमुच्चमुच्चरन्
कोपिरोपितफलं न च श्रुतः ॥ १३ ॥

अन्वयः—तत् (उच्चं) यदि पृथग्भवेत् (तर्हिसोमरोमकादयः) अर्कजकुजार्यतुंगतां अर्कं किं नयन्ति तत् (तस्मात्कारणात् इयं कल्पना (उच्चंहिकल्पनामात्रम्) उच्चंरोपितफलं उच्चरन् (कथयन्) कोपि न च श्रुतः ॥ १३ ॥

भाषा—वह उच्च जब पृथक् है (अर्थात् फल देने में स्वतन्त्र है तब सोमरोमकादिक मुनियों ने कहा है कि) शनैश्चर, मङ्गल बृहस्पति इनका ऊंच सूर्य कैसे होते (यदि इनका सूर्य ही शीघ्रोच्च है तब इनका फल दोनों में पृथक् न हो) तिस कारण से

कल्पना है (ऐसा जब है तो उच्च भी कल्पना मात्र है अर्थात् मन्द फल साधन करने के वास्ते है। गोलाध्याय में इसका प्रमाण भी है 'यः स्यात्प्रदेशः प्रतिमण्डलस्यदूरेभुवस्तस्यकृतोच्चसंज्ञाः। सोपिप्रदेशश्चलतीतितस्मात्प्रकल्पितातुंगगतिर्गतिज्ञैः' ॥ जो है प्रदेश प्रतिमण्डलका पृथ्वी से दूर में किया है उसकी ऊंच संज्ञा वह भी प्रदेश चलता है तिस कारण से प्रकल्पित है उच्चगति । गति जाननेवालों करके इस कारण से ऊंच की कल्पना मात्र से नहीं फलदातृत्व है ऐसा जब कि है तो पात भी शरसाधन के लिये कल्पना मात्र है कैसे वह फलदातृत्व होगा। ऐसी आशंका में कहते है) ऊंच को रोपित फल कहते कोई नहीं सुना गया (अर्थात् ऊंच का फल कहीं न सुना गया। तो उसके फल श्रवण के अभाव से कल्पना मात्र सिद्ध हुई इस कारण पात को यह कहा है ऊंच के फलदातृत्व अभाव में ग्रन्थकर्ताने किस वास्ते यह सब प्रपञ्च किया इसका पर्यवसान तो आगम से निश्चित है इस वजह से पहले से यहां पर आगम का अभाव है कारण कैसे नहीं कहा ॥ १३ ॥

अब आशंका यह होती है कि होनाधिपति राहु
कैसे नहीं होते हैं उस विषय में कहते हैं।

॥ शालिनी छन्दः ॥ श्लोक ॥

राहोर्नाहोरात्रवर्षाधिपत्यं
सत्यं सर्वव्योमगानामधीशौ ॥
यस्यच्छायापुष्पवन्तौपिनाष्टि
क्वास्तेतस्यस्वामितायाविनष्टिः ॥१४॥

अन्वयः—(अहो) राहोः अहोरात्रिवर्षाधिपत्यं न (स्यात् तत्) सत्यं (तथापि) सर्वव्योमगानां अधीशौ पुष्पन्तौ (चन्द्रसूर्यौ) यस्य (राहोः) छायां पिनष्टि तस्य (राहोः) स्वामितायाः विनष्टिः क्वास्ते ॥ १४ ॥

भाषा—(हे गणक) राहु का दिन रात्रि वर्षाधिपति होना नहीं है तो यह सत्य है। तौभी सब ग्रहों के स्वामी चन्द्रसूर्य जिस राहु की छाया से नाश हो जाते हैं तिस राहु का स्वामिताधर्म नहीं होगा क्या (१) ॥ १४ ॥

(१) स्पष्टाशय—ग्रहों के स्वामी जो चन्द्र सूर्य जिस राहु की छाया माचा से विह्वल हो जाते तिस राहु का स्वामी होने का अधिकार नहीं है यह हम नहीं कह सकते। इस वजह से परंपरा करके दिन वर्षाधिपति होना सिद्ध हुआ यानी वर्षाधिपति होते हैं।

अब गति वश से फल कहके राहु का गति-
सद्भाव में प्रमाण देते हैं।

॥ द्रुतविलम्बितं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

प्रतिदिनंखचरः प्रचरन्फलं
किमपियच्छतिचारफलोहिसः ॥
ग्रहणऋक्षगएवसचेन्नकिं
चलतिकिंचिदुपप्लवएवतत् ॥ १५ ॥

अन्वयः—खचरः प्रतिदिनं प्रचरन् (सन्) किम् अपि फलं यच्छति हि (यस्मात्कारणात्) स (खचरः) चारफलः स (राहुः) चेत् ग्रहणऋक्षग एव न अस्ति (तत्) उपप्लव एव किंचित् किं चलति ॥ १५ ॥

भाषा—आकाश में चलनेवाला ग्रह हरएक दिन चलते हुए क्या निश्चय करके फल देते हैं। जिस कारण वे ग्रह चार (यानी गति करके) फल देनेवाले कहे जाते (जैसे ग्रह चलते हैं वैसे फल देते हैं) ग्रह यदि ग्रहण के नक्षत्र में नहीं रहता है तब ग्रहण कुछ चलता है (१) ॥ १५ ॥

---

(१)—अष्टांग्रंथ ग्रहण में राहु नजदीक रहता है यह पहले कहा गया है ग्रहण थोड़ा २ प्रति मासमें १॥ डेढ अंश करके या ६ महीनों में ८ अंश करके पीछे से चलता है इस वजह से एक

रहु की तरह केतु को भी ग्रह कायम करते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

उदयमेतियदादिवितत्परं
चरतिकेतुरपि प्रतिवासरम् ॥
भवतिनग्रहएवगतिंविना
जगतिकर्मविपाकवदावदः ॥ १६ ॥

अन्वयः—यदा दिवि (आकाशे) तत्परम् (तत्परराहोः परभागं) उदयम् एति (तदा) केतुः अपि प्रतिवासरम् चरति गतिंविनाग्रहः एव न भवति (किं विशिष्टः ग्रहः) जगति कर्मविपाकवदावदः ॥ १६ ॥

भाषा—जब आकाश में राहु का पर भाग (यानी शरीर का दूसरा भाग) उदय होता है (तब) केतु भी हरएक दिन चलता है (आशय यह है कि वृत्तों का पात जो दूसरा है सो राहु से छः राशियों के अन्तर

ग्रहण को जिस नक्षत्र में देखा जाता है उससे दूसरा ग्रहण उससे पृष्ठ के नक्षत्र में और पर ग्रहण उससे पृष्ठ नक्षत्र यह प्रत्यक्ष देखने में आता है इसी वजह से ग्रहण चलता सिद्ध हुआ और वही राहु की गति है ग्रहण में अवश्य करके तत्सान्निध्य होने से और राहु गति सिद्ध होने से ग्रह का धर्म और फल देने का धर्म ये दोनों सिद्ध हुए ॥

पर रहता वह केतु है यह पहले कहा गया तो उसके सान्निध्य में जो ग्रहण है वह भी पूर्व ग्रहण के तुल्य चलता है इस वजह से केतु की भी गति सिद्ध हुई (गति सिद्ध होने में ग्रह धर्म और दातृत्व धर्म दोनों सिद्ध हुए) गति के विना ग्रह निश्चय से नहीं होता है (यह कैसे ग्रह है) जगत् में कर्मविपाक को कहनेवाले कहते हैं (१) ॥ १६ ॥

आशंका यह होती है कि ग्रहण में अन्धेरा प्रत्यक्ष देखने में आता है तो वह ग्रह कैसे होगा इस तरह से परमत की आशंका को भोज राजा दूषण देते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

परिहरन्त्युपरागपरागतं
तमउपप्लवएवसाकिंग्रहः ॥
इतिमणित्थवचांसिवितृण्वता
मतमतक्ष्यतभोजमहीभुजा ॥१७॥

---

(१) अष्टाशय—जिस ग्रह की निश्चय से गति रहती है वह ग्रह होता है तो केतु को गति होने से वह केतु पूर्व कर्मविपाक जनित जो शुभाशुभ फल का सूचक हुआ तिस कारण से केतु भी ग्रहत्व धर्म व फलदातृत्व धर्म को प्राप्त होने से ग्रह सिद्ध हुआ ॥

अन्वयः—उपरागपरागतं तमः उपप्लवः (अरिष्टं) एव परिहरन्ति (त्यजन्ति) स किं ग्रहः इति (यत्) मतं (तत्) मणित्थवचांसि विवृण्वताभोजमहीभुजा अतक्ष्यत (अच्छिद्यति) ॥ १७ ॥

भाषा—ग्रहण में प्राप्त अन्धकार अरिष्ट को नाईं त्याज्य करते हैं तो वह क्या ग्रह है अर्थात् नहीं है । तैसा ही सूर्य चन्द्रमा के ग्रहण में स्वाभाविक दीप्ति के अवरोधो का प्रत्यक्ष जो अन्धेरा दिखाता है वह उत्पात है परिवेषादिक के समीप इस वजह से जो अन्धेरा है सो उत्पात है इसौ कारण से उसको आचार्य लोगों ने त्याज्य किया है) इस तरह की जिसकी मति है उस मणित्थ वाक्यों को विवरण करते भोज राजा ने छेदन किया (अर्थात् यह मत मणित्थ वाक्य विवरण में भोज राजा ने निरादर किया इस वजह से जैसे उत्पात गणितागत मे नहीं पाते हैं और ग्रहण तो सम्यक् पाते हैं इस कारण से वह अन्धकार उत्पात नहीं है किन्तु वह उत्पात दोष से जहां तहां किञ्चित् देखने में आता है और चन्द्र सूर्य ग्रहण तो सर्व देशों में दिखाता है इसी कारण से वह उत्पात नहीं ठहरा इस तरह गणितागत और प्रत्यक्ष आगम प्रमाण ब्रह्मप्रदानादिक ग्रहचार में और तत्फल का-

थन लोक में प्रसिद्ध है इसका वाक्य भी है "राहुकृतं ग्रहणं स्यादागोपालांगनादिसिद्धमिदम् ॥" यानी राहुकृत ग्रहण होता है यह ब्रह्मगुप्तका कहा है इत्यादि प्रमाणों करके उस मत को भोज राजा ने निराकृत किया ॥ १७ ॥

आशंका यह होती है कि आगम प्रमाण से राहु की सिद्धि है परन्तु दिग् देश काल का वर्णादि भेद करके गोल वासना में नहीं आते उस विषय में कहते हैं।

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

अथाप्यसौकेवलवासनायां
नायातिसिद्धिंतदपिप्रियंनः ॥
अवासनंकिंनसुरद्युरात्र-
मर्कायनाभ्यांभवतैवभेजे ॥ १८ ॥

अन्वयः—अथ अपि (यद्यपि) असौ केवल (गोल) वासनायां सिद्धिं न आयाति तत् अपि नः प्रियं (अस्तु तत्कथम्) अर्कायनाभ्याम् सुरद्युरात्रम् भवता एव किं न भेजे (अपि तु भेजे)॥ १८ ॥

भाषा—अब निर्णय से (यद्यपि) यह राहु

केवल (गोल) वासना में सिद्धि को नहीं प्राप्त हो तौभी हमको प्रिय है (प्रिय हो परन्तु गोल वासना से सिद्ध वह कैसे । उत्तर इसका यह है) सूर्य के उत्तरायण दक्षिणायन करके देवताओं का दिन रात्र वासना से बाहर आपने क्या नहीं ग्रहण किया (अर्थात् ग्रहण किया है । स्पष्टाशय इसका यह है कि मेरुपर्वत पर बैठे हुए देवताओं का नाड़िकामण्डल जो क्षितिज है उसके ऊपर स्थित क्रान्तिवृत्त में मेषादिक छः राशियां दृश्य हैं और तुलादिक छः राशियां नीचे स्थित अदृश्य हैं इस वजह में मेषादिक छः राशियों में स्थित सूर्य जब होते हैं तब देवताओं का दिन होता है और तुलादिक छः राशियों में रात्रि होती है इस कारण से दिन रात्रि गोल वासना से सिद्ध हुआ। इसका वाक्य भी है "शिशिरपूर्वमृतुत्रयमुत्तरम् ह्ययनमाहुरहश्चतदामरम् ॥" इत्यादिक पुराणादिक में उत्तरायण दिन दक्षिणायन रात्रि। इसकारण आगम के विरोध भय से यह वासना बाहर भी दिन रात्रि को आपने स्वीकार कियो है इस वजह सें हमने एक यह राहु वासना बाहर को आगम भय से ग्रहण कियो है ॥ १८ ॥

अब दोनों के विरोध को परिहरण कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

सिद्धान्तपक्षस्तुपरंदिनार्द्धा-
न्निशानिशार्धात्परतोदिनश्रीः ॥
एवंपुराणेगणितेचसाम्य-
मर्कायनाभ्यां सदसत्फलेषु ॥ १९ ॥

अन्वयः—सिद्धान्तपक्षः तु (अयम्) दिनार्द्धात् परं निशा निशार्द्धात् परतः दिनश्रीः एवम् (सति) अर्कायनाभ्यां (सकाशात्) सत् असत् फलेषु पुराणेगणिते च साम्यं (स्यात्) ॥ १९ ॥

भाषा—सिद्धान्त पक्ष तो यह है कि दिनार्द्ध से परे रात्रि होती है और निशार्द्ध से परे दिन श्री (अर्थात् दिन) होती है इस प्रकार से सूर्य्य के उत्तरायण दक्षिणायन से सत् असत् के विषय पुराण में और गणित में तुल्य होता है (स्पष्टाशय इसका यह है कि गणित में कर्क की संक्रान्ति में दिनार्द्ध होता है इसके पर भाग रात्रिउन्मुख होने से रात्रि कहते हैं इस तरह मकर की संक्रान्ति में निशार्द्ध होता है उसके परे दिनोन्मुख होता है इसको दिन कहते है तैसे ही सिद्धान्त में विरोध

परिहार देते हैं "दिनंसुराणामयनं तदुत्तरं निशेतर-त्सांहितिकैः प्रकीर्तितम्। दिनोन्मुखेर्केंदिनमेवतन्मतं निशा तथा तत्फलकीर्तिनाय तत् ॥" यानी जो उत्तरायण है सो देवताओं का दिन है और इतर यानी दक्षिणायन रात्रि संहिता करके प्रकीर्तित है दिनोन्मुख सूर्य के होने से दिन कहा गया है ॥ १९ ॥

अब इसको स्पष्ट कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

ककंगतेर्कोंहिसुरापराह्णः
फलंपुरारात्रिवदाहुरस्य ॥
नक्रंगतेचापरात्रमेषा-
मेतत्परंवासरवत्स्मरन्ति ॥ २० ॥

अन्वयः—हि (यस्मात्कारणात्) ककं गते अर्के (सति) सुरापराह्णः फलं पुरा रात्रिवत् आहुः नक्रंगते (अर्केसति) एषां (देवानां) अपररात्रं च (स्मरन्ति) एतत् परं वासरवत् स्मरन्ति ॥ २० ॥

भाषा—जिस कारण से कर्क राशि के सूर्य होते हैं तो देवताओं का अपराह्ण होता है (अर्थात् दिन का उत्तरार्द्ध होता है) इसका फल संहिताकारों ने रात्रि की नाईं कहा है, मकर राशि के सूर्य हों तो

इन देवताओं की अपर रात्रि कही गई है उस रात्रि को दिन की नाईं कहा है ॥ २० ॥

अब इसके पुष्ट करने को दृष्टान्त दूसरा भी कहते हैं।

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

अतश्चकैश्चिद्दशमीष्वपिप्रा-
क्कापालिकोवेधविधिः किलोक्तः ॥
मासोन्यएवंनियमव्रतादौ
पित्र्येनिशार्द्धेसतिपूर्णिमास्याम् ॥२१॥

अन्वयः—अतश्च कश्चित् दशमीषु अपि प्राक् कापालिकः वेधाविधिः किल उक्तः एवम् पूर्णिमास्याम् पित्र्ये निशार्द्धे सति नियमव्रतदौ अन्यः मासः (स्यात्) ॥ २१ ॥

भाषा—इस हेतु से कोई दशमी तिथि में पूर्व कापालिक वेधविधि निश्चय से कहते हैं (अर्थात्) आधी रात से दो प्रहर दिन तक पूर्व कपाल है और दो प्रहर दिन से आधी रात तक पश्चिम कपाल है यह दोनों ग्रहगणित में प्रसिद्ध हैं दो कपाल में हो वह कपालिक कहा जाता है इसका प्रमाण "दशमीशेषसंयुक्तोयदिस्यादरुणोदयः। वैष्णवैस्तुनकर्तव्यं तद्दि-

वैकादशीव्रतम् ॥ यानी दशमी शेष जो संयुक्त हो अ-रुणोदय काल में तो वैष्णव लोग एकादशी व्रत नहीं करते हैं इत्यादि वाक्यों से अरुणोदय में दशमीविद्धा एकादशी जैसे वैष्णव लोग त्याज्य करते हैं तैसे नि-म्बादित्य संप्रदाय ने अर्द्ध रात्रि में दशमी को एका-दशी त्याग कियी है । अर्द्ध रात्रि से ऊपर उत्तर दिन होता है इसका वाक्य है 'अर्द्धरात्रेपिकेषाञ्चिद्दशमी-वेधइष्यते' अर्थात् अर्द्धरात्रि में भी कोई आचार्य दशमी वेध कहते हैं । ऐसे धर्म्मशास्त्र में भी लिखा है 'पित्राशौचार्त्तवादिषुकेचिदर्द्धरात्रादुपर्य्युत्तरदिनमि-च्छन्ति ॥' यानी पितृशौच आर्त्तवादिक में कोई आचार्य अर्द्धरात्रि के ऊपर उत्तर दिन को चाहते हैं इस कारण से (विष्टिरंगारकश्चैवव्यतिपातश्चवैधृतिः ॥ प्रत्यरिर्जन्म-नक्षत्रं माध्यन्हात्परतः शुभम्" इत्यादि वाक्यों से माना गया । इस प्रकार करके पूर्णिमासी पितृ लोगों को अर्द्धरात्रि से नियम व्रतादिक में दूसरा मास होता है । नियम शब्द के कहने से यह समझना चाहिये चातुर्मास श्रावण, भाद्रपद, कुवार और कार्तिक इन मासों में क्रमसे शाक, दधि, तक्र और पानी यह त्याज करना इसी को नियम कहते हैं, व्रत शब्द

कहने से यह समझना चाहिये कि कार्तिक व्रतादि का आरम्भ पूर्व मास की पूर्णमासी से कहना चाहिये जिस वजह से पूर्णमासी में पितरों की अर्धरात्रि है प्रमाण भी है "चन्द्रस्योर्ध्वभागेवसन्तः पितरः स्वमस्तकोपरिदर्शेसूर्यंपश्यन्ति ॥" अर्थात् चन्द्रमा के ऊर्ध्व भाग में पितर लोग वास करते अपने मस्तक के ऊपर आमावश्या में सूर्य को देखते इस कारण से वहां पर दिनार्द्ध होता है। इस प्रकार पूर्णमासी में सूर्य्य के नीचे आधी रात देखते हैं आधा कृष्णपक्ष में सूर्य्योदय होता शुक्लपक्ष के आधे में सूर्य्यास्त होता इस प्रकार पितृमान को बासाना करके सिद्धान्त में प्रसिद्ध है ॥ २१ ॥

अब राहु के सद्भाव में दूसरा प्रमाण देते हैं।

॥ द्रुतविलम्बितं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

तदितिविद्यतएवसकिंपरै
रुधिरविन्दुवपुर्विलसन्ति ये ॥
तइहतामसकीलककेतवः
स्वपितृराहुसमर्थनहेतवः ॥ २२ ॥

अन्वयः—तत् (तस्मात्) इति (हेतोः) सः (राहुः)

विद्यत एव परैः रुधिरविन्दुवपुः (यथा तथा) ये तामसकील-
कर्केतवः विलसंति ते स्वंपितृराहुसमर्थनहेतवः (स्युः) ॥२२॥

भाषा—तिस कारण से इस प्रकार वह राहु प्रकाशमान निश्चय से है दूसरे हेतु करके भी स्थितिमान् है वह हेतु कहते हैं रक्त विन्दु के समान शरीर (जैसा तैसा) जो तामस कीलक केतु इत्यादिक, देखने में प्रकाशमान आते हैं वे सब अपना पिता राहु के जनाने का हेतु है (१) ॥ २२ ॥

राहु को ग्रह धर्म पहले कहा है तोभी दुष्ट कहते हैं।

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

यः पवगस्तस्यगातनंदष्टा
सैवग्रहत्वेपिमहत्प्रमाणम् ॥

(१) स्पष्टाशय—ये सब तारा आकाश में रक्त के समान जब दिखाई दें तो उत्पात का लक्षण है और वेही राहु के चिन्ह द्योतक हैं वे सब राहु के पुत्र हैं इसका प्रमाण वराहसंहिता में है "शतजानलानुरूपास्त्रिशूलताराकुजालजाः षष्टिः। नाम्ना च कौकुमारास्तेसौम्याशासंस्थितापापाः॥ त्रिशत्यधिकाराहोस्तेतामसकीलकाइतिख्याताः॥ रविबिम्बगाश्चस्तेषां फलमर्कवचोक्तम् ॥" यानी इन सबों का फल सूर्य की नाईं कहा है॥

विलोमगामीविधुपातएव
तस्माद्ग्रहोराहुरितिप्रतीतः ॥ २३ ॥

अन्वयः—यः पवंगः तस्य गतिः (साक्षात्) न दृष्टा सा एव (गतिः) ग्रहत्वे अपि महत्प्रमाणम् (स्यात्) यस्मात्कारणात्) एव विधुपातः (राहुः) विलोमगामी तस्मात् राहुः ग्रहः इति प्रतीतः ॥ २३ ॥

भाषा—जो ग्रहण में राहु है उसकी गति (प्रत्यक्ष) नहीं देखी (किन्तु अनुमान से ग्रहण नक्षत्र में मानी जाती है इस कारण से गति अनुमान से सिद्ध है) वह गति ग्रहधर्म में निश्चय से है यह विशेष प्रमाण है (जिस कारण से) निश्चय से चन्द्रपात राहु विलोमगामी (यानी सदा वक्र चारी है जैसे चन्द्रमा सूर्य सर्वदा शीघ्रगामी हैं तैसे यह चन्द्रपात राहु सदाविलोमगामी है इसका प्रमाण भूपाल में लिखा है "राहुकेतूसदावक्रौशीघ्रगौशशिभास्करौ" इत्यादि बहुत हे प्रमाण हैं) इस कारण से राहु ग्रह सिद्ध हुआ (परन्तु यह बात ग्रन्थकर्ता की नहीं है ऐसा मालूम होता है क्योंकि 'प्रतिदिनखचर' इत्यादिक से सिद्ध हुआ है फिर से पुनरुक्ति करना वह

दोष है तिस कारण सें विद्यत इसी से अध्याय की समाप्ति होती है ऐसा भाष्य होता है) ॥ २३ ॥

इति श्रीकाशिखण्डान्तर्गतभृगुक्षेत्रसमीपदेवडीहग्रामनिवासिशाण्डिल्यवंशावतंसविविधशास्त्रपरमपण्डितश्रीलालबहादुरत्रिपाठिपुत्रज्योतिर्वित्पण्डितशिवदत्तत्रिपाठिविरचितायां विवाहवृन्दावनसान्वयशिवकरीभाषाटीकायां राहुसप्ताध्यायः सप्तमः समाप्तः ॥ ७ ॥

अथ षड्वर्गाध्यायः ८

अब षड्वर्गादि उसमें द्वादश भाव जातक रीति से स्पष्ट कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

कृत्वालग्नादर्कवद्रात्रिखण्डं
भूयोंऽयक्षैस्तद्घटानिर्विलग्नम् ॥
चक्रार्धोनेतेचतत्कालएव
जयेयातामस्तमध्याह्नलग्ने ॥ १ ॥

अन्वयः—लग्नात् अर्कवत् रात्रिखण्डं कृत्वा (तस्यघटीभिः) भूयः ऽयक्षैः विलग्नम् (कार्य्यम्) ते (हे लग्ने) चक्राधोने

(सति) एव तत्काले अस्तं मध्याह्नलग्ने (क्रमेण) च जायेयाताम् ॥ १ ॥

भाषा—लग्न पर से सूर्य की नाड़ी रात्रि खण्ड करके उस घटी पर से फिर लंकोदय करके लग्न को बनाये (अर्थात् लग्न को सूर्य मान के अयनांश जोड़ दे उसपर से चर साधन करके रात्रि प्रमाण बनावे उस रात्रि का आधा इष्ट काल कल्पना करे तिसके बाद अयनांशायुक्त लग्न को भुक्तांश मान के या भोग्य बना के लंकोदय मान से भुक्तांश भोग्यांश करके लग्न बनावे उस समय में जो लग्न आवेगा वह चतुर्थ लग्न होगा) वे दोनों लग्न वो चतुर्थ में छः राशियों के घटाने से इष्ट काल समय में सप्तम दशम क्रम से दोनों उत्पन्न (यानीस्पष्ट) होंगे ॥ १ ॥

॥ श्लोकः ॥

लग्नन्तुर्यात्तुर्यमस्ताद्विशोध्यं
मध्यादस्तमध्यमैन्द्रीविलग्नात् ॥
शेषत्र्यंशान्द्विर्द्विशाद्येषुदद्या-
देवंभावाः सन्धिरेतद्दलैक्यम् ॥ २ ॥

अन्वयः—लग्नं तुर्यात् (शोध्यम्) तुर्यं अस्तात् विशो-

ष्यम् भध्यात् अस्तं (विशोध्यम्) इन्दुवीबिलग्नात् मध्यमं (शोध्यम्) शेषत्र्यंशान् आद्येषु (लग्नादिषु) द्विः द्विः वारं दद्यात् एवम् (द्वादश) भावाः (स्युः) एतत् दलैक्यं सन्धिः (स्यात्) ॥ २ ॥

भाषा—लग्न को चतुर्थ भाव में घटाना चतुर्थ को सप्तम में घटाना सप्तम को दशम लग्न में घटाना लग्न में दशम लग्न को घटाना शेष (जो कि चार जगहें हैं उनको पृथक् २ रख कर उन) के तृतीयांश (यानी तीन से भाग लेना जो फल मिले उस) को लग्नादिक में दो २ वार जोड़ना इस प्रकार द्वादश भाव स्पष्ट हो जायंगे तिन दो भावों को जोड़ कर आधा करने से उस भाव की सन्धि होती है (१) ॥ २ ॥

---

(१) स्पष्टाशय—लग्न को चतुर्थ भाव में घटाने पर जो शेष बचे उसमें तीन का भाग लेना जो लब्धि मिले वह षंशादिक लग्न में जोड़ने से द्वितीय भाव होगा फिर उसी को द्वितीय भाव में जोड़ने से द्वितीय भाव होगा इस तरह से चतुर्थ को सप्तम में घटाने से जो शेष बचे उसका तृतीयांश षंशादिक चतुर्थ भाव में जोड़ेंगे तो पञ्चम भाव होगा और उसी को पञ्चम भाव में जोड़ने से षष्ठ भाव होगा इस प्रकार सप्तम नवमादिक द्वादश भाव हो जायंगे दो भावों के योग का आधा करना सन्धि होती है जैसे द्वादश भाव में लग्न को जोड़ कर आधा करने से दोनों

अथ ग्रह फल के भाव कल्पनावश से तारतम्य को कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

सन्धौखेटोनिःफलोभावभागै-
स्तुल्यः सम्यग्भावपक्तिंव्यनक्ति ॥
सन्धेरूनाधिक्यमाप्तोगतैष्य-
भावाधीनं सन्दधातिस्वपाकम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—सन्धौ खेटः निःफलः (स्यात्) भावभागैः तुल्यः भावपक्तिं सम्यक् व्यनक्ति (प्रकटयति) सन्धेः (सकाशात्) ऊनाधिक्यं आप्तः गतैष्यभावाधीनं स्वपाकं सन्दधाति ॥ ३ ॥

भाषा—सन्धि में ग्रह कुछ फल नहीं देते हैं भाव के अंश के बराबर हों तो भाव फल को परिपूर्ण देते हैं सन्धि से कम अधिक हों तो क्रम से गत भावों के आगामी भाव के अधीन अपना पाक फल देते हैं (१) ॥ ३ ॥

भावों के मध्यव की सन्धि अर्थात् द्वादश भाव की सन्धि होती है इस प्रकार लग्न द्वितीय, द्वितीय तृतीय, तृतीय चतुर्थ इत्यादि भावों के योग का आधा करते जायंगे तो इन भावों की सन्धि हो आयंगी ॥

(१) अभिप्राय—जो ग्रह जिस भाव में रहता है वह उसी

अथ इन दोनों के भेद में निर्णय करते हैं।

॥ श्लोकः ॥

नांगीकारो भावजानां गुणानां
तद्दोषाणां तत्वतस्त्याग एव ॥
भावव्यक्तावष्टमत्वं गतोऽपि
त्याज्योलग्नात्सप्तमः सप्तसप्तिः ॥४॥

अन्वयः—भावजानां गुणानां नांगीकारः तद्दोषाणां तत्वतः त्यागलग्नात् सप्तमः सप्तसप्तिः भावव्यक्तौ (सत्यां) अष्टमत्वागतः अपि त्याज्यः (त्याज्य एव) ॥ ४ ॥

भाषा—भाव से जायमान जो गुण वह नहीं

भाव का फल देता है और उस भाव से अधिक और उस भाव की सन्धि से कम हो तौभी उसी भाव का फल देता है और सन्धि से अधिक होने से अगले भाव का फल देता है इस कारण से ज्योतिषशास्त्रज्ञाता को यह कहना चाहिये कि जो ग्रह जिस भाव का फलदाता आता हो इस विचार से उसी भाव में उस ग्रह को लिखे बहुत से ज्योतिषी लोग भाव से अधिक होने से ग्रह को भाव कुण्डली में सन्धि में लिख देते हैं सो यह अनुचित करते हैं सन्धि में तब लिखना चाहिये जब सन्धि के तुल्य ग्रह हो संधि से अधिक या कम होने में पर पूर्व भाव का फल त्रैराशिक करके कुछ कम या अधिक देते हैं इससे जिस भाव का फल जो ग्रह देता हो उसको उसी भाव में लिखना चाहिये ॥

स्वीकार है (इस वजह से) उस भाव से जायमान जो दोष है वास्तव त्याज्य ही है निश्चय से (यहां पर पहिले का उदाहरण देते हैं स्वभाविक) लग्न से सप्तम में सूर्य है भाव स्पष्ट है षष्टम गत है तोभी त्याज्य ही है (१) ॥ ४ ॥

अब युक्ति के सहित द्वितीय उदाहरण देते हैं।

॥ श्लोक ॥

प्रत्याख्येयः पाक्षिकोपीह दोषः
सम्यग्व्यापीयो गुणः सोनुगम्यः ॥
यस्मादंशैर्गेहभावाधिकः सन्न-
स्याद्भूत्यैभार्गवः पञ्चमोऽपि ॥ ५ ॥

अन्वयः—यस्मात् (कारणात्) दोषः पाक्षिकः अपि इह (विवाहे) प्रत्याख्येयः (त्याज्यः) गुणः यः सम्यग्व्यापी स अनुगम्यः (तस्मात्कारणात्) पञ्चमः अपि भार्गवः अंशैः गेहभावाधिकः सन् भूत्यै (शुभाय) न स्यात् ॥ ५ ॥

भाषा—जिस कारण से दोष पाक्षिक (यानी पक्ष

---

(१) स्पष्टार्थ यह है कि सूर्य सप्तम में अनिष्ट है षष्टम स्थान में शुभ है परन्तु स्वभाविक सप्तम में है भाव स्पष्ट से षष्टम में होते हैं तो वह सूर्य शुभ फल देनेवाले हुए तोभी वह सूर्य त्याज्य ही किये जायंगे ॥

से है भी वह) त्याज्य ही है जो गुण है सम्यक् व्यापी वह अनुगम्य (यानी ग्राह्य) है (स्पष्टाशय यह है कि पक्षान्तर से किसी तरह का दोष प्राप्त हुआ तो वह दोष त्याग ही करना चाहिये और गुण परिपूर्णता प्राप्त हुआ है जो ग्रहण करना चाहिये ऐसी सब आचार्यों की सम्मति है तिस कारण से) पञ्चम में शुक्र अंश शेष भाव से अधिक है वह शुभ के वास्ते नहीं हैं (स्पष्टाशय—इसका यह है कि पञ्चम में शुक्र शुभ हैं षष्ठ स्थान में अशुभ होते हैं भाव से दो तरफ जो सन्धि है उन दोनों के बीच में जो वर्तमान अंश है वह अंश उस भाव का है इस वजह से पूर्व सन्धि के अंश से अधिक अंश ग्रह होने से उत्तर भाव में होते हैं इस वजह से स्वभाव करके पञ्चम में जो शुक्र है और भाव वश से षष्ठ भाव में हो तोभी त्याज्यही होते हैं) ॥ ५ ॥

अब लग्न पर से इष्ट काल का ज्ञान उस विषय में पहिले संक्रान्ति ज्ञान से सूर्य ज्ञान होना और लग्नांश ज्ञान होना कहते हैं ।

॥ श्लोक ॥

सन्क्रान्त्यन्तर्वासरैर्यद्द्युवृन्दा-

लब्धं भानुर्भादिमेषादिमिश्रम् ॥
भक्ता रामैर्लग्नभुक्तानवांशा
दिग्भिर्निघ्नास्त्रिंशदंशा भवेयुः ॥ ६ ॥

अन्वयः—संक्रान्त्यन्तर्वासरैः द्युवृन्दात् यल्लब्धं (तत्) मेषादिभिः मिश्रं भानुः (स्यात्) लग्नभुक्तानवांशा दिग्भिः निघ्नाः रामैः भक्ताः त्रिंशत् अंशाः भवेयुः ॥ ६ ॥

भाषा—संक्रान्त्यन्तर दिन से दिन गण लेने से जो लब्धि मिलेगी इस राश्यादि को मेषादिक राशि में जोड़ने से सूर्य होते हैं (स्पष्टाशय यह है कि जिस मास में जिस दिन का सूर्य्य बनाना हो उस मास में पहली संक्रान्ति के भोग्य समय से द्वितीय संक्रान्ति के प्रारम्भ समय तक जितना दिनादिक होगा वही संक्रान्त्यन्तर कहलाता है और पहिली संक्रान्ति के भोग्य समय से इष्ट दिन तक जो दिनादिक है वही दिन गण कहलाता है उस दिन गण में पूर्वोक्त संक्रांत्यन्तर से भाग लेने से जो लब्धि मिलेगी वह राश्यादि होगी उसको मेषादि गत राशि में जोड़ने से इष्ट दिन में स्पष्ट सूर्य होंगे) लग्न के भुक्त नवांशको दश से गुण देना तीन से भाग लेना तो वह अंश होगा (अर्थात् लग्न के प-

हिले नवांश से लेकर इष्ट नवांश से पहिले जितना भुक्त नवांश हुआ हो उसको दश से गुणा कर तीन से भाग लेने से अंशादिक लग्न होगा) ॥ ६ ॥

अब लग्न सूर्य से इष्ट काल कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

रात्रौभानुर्भार्धयुक्सायनांश-
स्तन्वर्कांशास्वोदयघ्नाःपृथक्के ॥
त्रिंशद्भक्ताभुक्तभोग्याः पलादि-
तादृक्कालोमध्यगः स्वोदयाढ्यः ॥७॥

अन्वयः—रात्रौ भानुः भार्द्धयुक् सायनांशःकार्यः तन्वर्कांशाः (क्रमेण) भुक्तभोग्याः पृथक्के स्वोदयघ्नाः त्रिंशद्भक्ताः पलादिः (स्यात्) मध्यगः स्वोदयाढ्यः तादृक् कालः (स्यात्) ॥

भाषा—रात्रि में सूर्य में ६ राशियां जोड़ कर अयनांश जोड़ना (और दिन का हो तो यथावत् सूर्य में अयनांश जोड़ना और लग्न का भी सायन करना) लग्न सूर्य के (क्रम से) भुक्त भोग्य को स्वोदय से फरक २ गुणना (स्पष्टाशय-यह है कि लग्न में अयनांश जोड़ने से भुक्त कहा जाता है और लग्न में या सूर्य में अयनांश जोड़कर अंशादिको तीस अंश में घ-

टाने से भोग्य होता है उस पूर्वोक्त लग्न के भुक्तांश को लग्नोदयमान से गुणा कर) तीस से भाग लेना जो लब्धि मिलेगी वह पलादिक लग्न का भुक्तांश होगा ऐसेही सूर्य के भोग्यांश पर से भोग्य पलादि लेआना। लग्न और सूर्य के बीच उदय का मान जोड़ने से लग्न सूर्य के मध्यवर्ती तादृश इष्ट काल होगा ॥ ७ ॥

अब लग्नकाल को कहके लग्न से कालहोरा कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

तत्कालार्कन्यूनलग्नांशपिण्डो
भक्तः पञ्चक्षोणिभिर्भुक्तहोराः ॥
भास्वच्छुक्रज्ञेन्दुसौरार्यभौमाः
संख्यायेरन्वारतस्तेतदीशाः ॥ ८ ॥

अन्वयः—तत्कालार्कन्यूनलग्नांशपिण्डः पञ्च क्षोणिभिः भक्तः भुक्तः होराः (स्युः) वारतः संख्यायेरन् (गणयेरन्) ते भास्वत् शुक्रज्ञेन्दुसौरार्यभौमाः तत् ईशाः भवन्ति ॥ ८ ॥

भाषा—इष्ट समय के सूर्य में लग्न घटा के अंश-पिण्ड करना उसमें १५ का भाग देने से (जो लब्धि मिलेगी) वह गत होरा होगी उतनी संख्या पर्यन्त

दृष्ट का (यानी जिस रोज की कालहोरा बनाते हैं उस वार) से गणना करना तो (क्रम से) सूर्य शुक्र, बुध, चन्द्रमा, शनि, गुरु और मङ्गल येह तिस होरा के स्वामी होते हैं ॥ ८ ॥

अब पाप होरा का भङ्ग कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

होराः क्रूराः सौम्यवर्गाधिकेस्यु-
र्लग्नेमोघाः सौम्यवारे च रात्र्याम् ॥
पापारिष्टंनिःफलं शक्तिभाजां
स्यात्षड्वर्गेलग्नगेसद्ग्रहाणाम् ॥९॥

अन्वयः—सौम्यवर्गाधिके लग्ने (सति) क्रूराः होराः मोघाः (स्युः) सौम्यवारे रात्र्यां च (मोघाः) पाप (जनितं) अरिष्टं निःफलं स्यात् (कस्मिन् सति) शक्तिभाजां सद्ग्रहाणां षड्वर्गेलग्नगे (सति) ॥ ९ ॥

भाषा—शुभ ग्रह का वर्ग अधिक (यानी चार शुभग्रह से अधिक होने से पापग्रह की होरा लग्न में हो तो (वह) पाप होरा निःफल हो जाती है शुभ ग्रह वार में और रात्रि में भी निःफल हो जाती है (इसमें प्रमाण गर्गजी का है "क्रूरवारेक्रूरहोरान-शस्ता इह मङ्गले । नातिदुष्टाशुभेवारेरात्रौस्वल्पफला-

मता ॥" इत्यादि इस विषय में और प्रमाण भी है "नलग्नंसद्मतुर्वर्गं दुष्यतेक्रालहोराया ॥" इसी प्रसंग से यह भी कहते है) पापग्रह का किया अरिष्ट निःफल हो जाता है (कब) जब कि बलवान् शुभग्रह का षड्वर्ग लग्न में हो ॥ ६ ॥

अब वारप्रवृत्ति को कहते हैं।

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

चरार्धदेशान्तरयुग्वियोगौ
क्रमेणयाम्योत्तरगोलगेर्के ॥
योगेपुरारव्युदयाद्वियोगे
पश्चात्प्रवृत्तिर्दिनवारकर्तुः ॥ १० ॥

अन्वयः—चरार्धदेशान्तरक्रमेणयुग्वियोगौकार्यौ (क-स्मिन् सति) याम्योत्तरगोलगे अर्के (सति) योगे दिनवार कर्तुः प्रवृत्तिः रव्युदयात् पुरा वियोगे पश्चात् भवेत् ॥ १० ॥

भाषा—चर पल को और देशान्तर पल को क्रम से योग करना और अन्तर करना (किस स-मय में) जब सूर्य याम्य गोल में हों तो योग करने से (उत्तर गोल में वियोग करने से (उतने पलों करके) वारकर्ता को वारप्रवृत्ति सूर्योदय से पहले

होती है और वियोग में (उतने पलों करके) पीछे से (वारप्रवृत्ति) होती है (१) ॥ १० ॥

---

(१) परन्तु यह वारप्रवृत्ति असंगत है क्योंकि वासना बाहर है और सप्तऋषि, वाराहादि के वचनों से विरुद्ध हैं जिस कारण से लङ्का में सूर्योदय से सब देशों में वारप्रवृत्ति होती है लङ्का में जो क्षितिजवृत्त है वह अन्य देशों में उन्मण्डलवृत्त होता है वह उन्मण्डल उत्तर गोल में अपने क्षितिजवृत्त से ऊपर होता है और दक्षिण गोल में नीचे रहता है उन दोनों का अन्तर चर कहलाता है इस वजह से उत्तर गोल में मध्य रेखा में स्वोदय से ऊपर चरपल करके वारप्रवृत्ति होती है और दक्षिण में पहले होती मध्य रेखा का और स्वदेश का अन्तर देशान्तर पल होता है तिन पलों करके रेखा के पश्चिम देश में ऊपर उदय होता है पूर्व देश में नीचे उदय होता है इस कारण इस प्रकार करके चर और देशान्तर का संस्कार अर्थात् योग अन्तर वश से ऊपर अथवा नीचे वार प्रवृत्ति होती है इसी कारण सिद्धान्त ग्रन्थों में कहा है "अर्कोदयादूर्ध्वमधश्च।" अर्थात् उत्तर गोल में स्वोदय से ऊपर दक्षिण गोल में स्वोदय से नीचे, और ऐसाही संहिता में और सप्तऋषियों ने भी कहा है "उत्तरदक्षिणचरदलहीनयुतानाडिकाः रवेरुदयात्। प्राग्पश्चान्तरदेशान्तरयोजनखाष्टांशकेनापि॥" अर्थात् उतर दक्षिण गोल में क्रम से चरदल के हीन युत नाड़ी करके सूर्योदय से पीछे देशान्तर के अस्सी भाग करके भी प्रवृत्ति होती है और भी है "सौम्येगोलेसवितुरुदयात्।" इत्यादि अर्थात् सौम्य गोल में सूर्योदय से वारप्रवृत्ति होती है इस कारण से गोल या-

अब कालहोरा ले आने को कहते हैं।

॥ इन्द्रवज्रा छन्दः ॥ श्लोकः ॥

द्विघ्नेष्टनाडीशरलब्धतुल्या
वारप्रवेशादपिकालहोराः ॥
संख्योक्तवत्तास्वथयद्युभाभ्यां
क्रूराकुवर्गश्चतदातिदोषः ॥ ११ ॥

घमा से वह विरुद्ध हुआ और सप्तऋष्यादि के वचनों से विरुद्ध सिद्ध हुआ और यह कहो कि यह पाठान्तर है सो मत कहो यही सर्वत्र पाठ और यह कहो कि अर्थ दूसरा है सो भी ठीक नहीं उत्तानार्थत्व में अर्थान्तर असम्भव से अर्थान्तर होगा जो विचार किया जाय परन्तु यहां अर्थान्तर भी नहीं हो सकता अब यह कहो कि इस मध्य रेखा से पश्चिम देश निवासी होते हैं इस वजह से अपने देशाभिप्राय से कहते हैं तो वह भी ठीक नहीं है क्योंकि उत्तर गोल में देशान्तर धन करके चर हीन करने से व्यभिचार होता है कारण यह है कि इसके अवश्य संस्कार करने से पश्चिम देशान्तर के अवशेष से तत्तुल्य धन करके पहले वारप्रवृत्ति जो है सोई शोभा है यह जो कहते हैं कि "क्रियोऽपिपश्चात्" इस वजह से कहा भी इसका अवलम्ब नहीं मिला है जिससे यह कहा जाय कि इन्होंने पश्चिम देशनिवासी अर्थ देशाभिप्राय करके यह कहा जिस कारण से उत्तर गोल में कम चर होती है कदाचित् हो सकता है इससे कहां तक इससे माननीय है॥

अन्वय—वारप्रवेशात् द्विघ्नेष्टनाडीशरलब्धतुल्याः अपि कालहोराः (स्युः) तासु (कालहोरासु) संख्या उक्तवत् (स्यात्) अथ यत् द्वाभ्यां (प्रकाराभ्यां) क्रूरा (होरा) कुवर्गश्चेत्तदा अतिदोषः (भवेत्) ॥ ११ ॥

भाषा—वारप्रवेश से लेकर दो से गुणा की हुई इष्ट नाड़ी में पांच से भाग लेना लब्धि के तुल्य निश्चय से कालहोरा होती है उस होरा की संख्या-गणना पूर्ववत् होती (स्पष्टाशय—यह है कि वार-प्रवृत्ति समय से जितना अपना इष्ट दण्ड हो उसको दो से गुणा कर पांच से भाग लेना जो लब्धि मिलेगी उतनी संख्यावाले ग्रह यानी क्रम से सूर्य, शुक्र, बुध, चन्द्र, शनैश्चर, वृहस्पति और मङ्गल इनकी काल-होरा होती है) जो दोनों प्रकार में क्रूर ग्रह की होरा आवे और पापग्रह का अधिक वर्ग हो तो महान् दोष है (लग्न गत होने से सर्वथा त्याज्य करना) ॥ ११ ॥

अब यह प्रसंग कर दूसरा महान् दोष कहते हैं

॥ शार्दूलविक्रीडितम् छन्दः ॥ श्लोक ॥

गण्डान्तेष्वपिवैधृतावुभयतः सं-
क्रातियामद्वयेयामार्द्धव्यतिपात

विष्टिकुलिकैर्भग्नं विलग्नं जगुः ॥
द्विद्व्यनामनवोऽर्कतः कुलिकिनो-
ऽप्येकामुहूर्तानिशित्याज्यास्तिथ्यु-
डुवारजाश्चनपरेदोषाखशादीन्विना॥१२॥

अन्वयः—गण्डान्तेषु अपि वैधृतौ उभयतः संक्रान्ति यामद्वये यामार्धंव्यतिपातविष्टिकुलिकैः भग्नं विलग्नं जगुः (मुनयः) द्विद्वि ऊना मनवः अर्कतः कुलिकिनः (मुहूर्ताभवन्ति) निशि (तु) ऽप्येकातिथ्युडुवारजाः परेदोषाः च खशादीन् विना न त्याज्याः ॥ १२ ॥

भाषा—गण्डान्त (यानी त्रिविध गण्डान्त) में वैधृति में संक्रान्ति के समय से दोनों तरफ दोप्रहर (अर्थात् सोलह २ दण्ड) और अर्धयाम व्यतिपात भद्रा कुलिक यह सब दोष नाश करनेवाले लग्न को (अर्थात् लग्न के शुभफल को नाश करनेवाले) हैं ऐसा मुनियों ने कहा है (अब कुलिकादिक दोष कहते हैं) दो दो हीन करके चौदह में रव्यादि वार में कुलिक होता है (स्पष्टाशय यह है अत्तवार के चौदहवें, सोमवार के बारहवें और मङ्गल के दशवें इत्यादि मुहूर्तों में कुलिक होता है) रात्रि में एक एक हीन कर (अर्थात् अत्तवार के तेरहवें, सोमवार

के ग्यारहवें, मङ्गल के नौवें इत्यादि मुहूर्तों में कु-
लिक होता है दिन में या रात्रि में १५ मुहूर्त होते
हैं यह प्रसिद्ध है अब यह प्रसंग और दोष भी
कहते हैं जो हमने कहा है वह सब) तिथि नक्षत्र
वार से जायमान यह जो पर दोष सो खशादि
(अर्थात् खश हुआ वङ्ग) देशों को छोड़ वार (अन्य
देशों में) नहीं त्याज्य है (स्पष्टाशय—यह है दग्धादि
तिथि दोष उपग्रहादि नक्षत्रदोष कंटक कालवे-
लादिक वार दोष हैं यह क्रम से नैपाल हुगलादि
देशोंमें त्याज्य है और देश में नहीं और इनसे भिन्न
दोष अन्य देशों में त्याज्य हैं) ॥ १२ ॥

अब लग्न में षड्वर्गशुद्धि कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

राश्यंशाः शशिभूगुरीक्षणहताःस्तित-
थ्यभ्रभूदिक्शरैर्भक्ताभार्धद्दकाण-
नन्दादिनकृद्भागाग्रहाः यस्य यत् ॥
त्रिंशांशाः सितसौम्यजीवरविज-
क्ष्माजन्मनां व्युत्क्रमादोजर्क्षेषुश-
राश्वसर्पमरुतःपञ्चेतिषाड्वर्गिकाः॥१३॥

अन्वयः—राश्यंशाः शशिभूगुणशरहताः तिथ्यभ्रभूदिक् शरैः भक्ताः (भार्धादयः वर्गाः स्युः) भार्धहक्काणनन्दद्विनकृत् भागाः यस्य यत् गृहं (तस्यपूर्ववर्गः) सितसौम्यजीवरविजभूमिजन्मनां (समराशौ) त्रिंशांशाः (भवन्ति) ओजर्क्षेषु शराष्टवसर्पमरुतः मख्रू व्युत्क्रमात् (त्रिंशांशाः भवन्ति) इति षाड्वर्गिका (सन्ति) ॥ १३ ॥

भाषा—राशि को छोड़ कर अंशको (चार स्थान में लिखना क्रम से) एक १ । ३ । २ इनसे गुण कर क्रम से १५ । १० । १० । ५ भाग लेना जो लब्धि मिलेगी वह होरादि (अर्थात् होरा द्रेकाण नवांश द्वादशांश ये चार वर्ग होते हैं जिस ग्रह का जो गृह है उस ग्रह का वह वर्ग होता है (अब त्रिंशांश कहते हैं सम राशि में शुक्र, बुध, गुरु, शनि और मङ्गल इनका त्रिंशांश होता है विषम राशि ५ । ८ । ७ । ५ उक्त क्रम से यह त्रिंशांश होता है यह षड्वर्ग कहा जाता है) (१) ॥ १३ ॥

(१) स्पष्टाशय—यह है समराशि में ५ अंश शुक्र का ७ अंश बुध का तिसके बाद ८ अंश बृहस्पति का ५ अंश शनि का ५ अंश मङ्गल का त्रिंशांश होता है विषम राशि में पहले ५ अंश मङ्गल का फिर ५ अंश शनि का ८ अंश गुरु का ७ अंश बुध का ५ अंश शुक्र का येही छः वर्ग हैं ॥

अब शुभ पापवर्ग जानने के लिये राशियों
के स्वामी कहते हैं ।

॥ वसन्ततिलकं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

कुजकवीन्दुजचन्द्ररवीन्दुजाः
सितकुजेज्ययमार्कजसूरयः ॥
भवनपालवपाश्चतदादय-
स्त्वजमृगाननतौलिकुलीरकाः ॥१४॥

अन्वयः—कुजकवीन्दुजचन्द्ररवीन्दुजाः सितकुजेज्ययमार्कजसूरयः (एते) भवनपालवपाश्चभवन्तितदादयः अजमृगानन तौलिकुलीरकाः (स्युः) ॥ १४ ॥

भाषा—मङ्गल, शुक्र, बुध, चन्द्र, रवि, बुध, शुक्र, मङ्गल, गुरु, शनि, शनि और गुरु ये राशि पति वो नवांशपति होते हैं तदादि मेष, मकर, तुला कर्क (इनसे नवांश होता है) (१) ॥ १४ ॥

---

(१) स्पष्टाशय मेष का नवांश मेष से वृष का नवांश मकर से मिथुन का नवांश तुला से कर्क का नवांश कर्क से सिंह का नवांश फिर मेष से इत्यादि इसी तरह नवांश चलता है ऐसे पहले नवांश जान के भुक्त नवांश से लेकर गणना करने से वर्तमान नवांश राशि होती है उसका स्वामी जो होगा उस राशि का नवांशस्वामी भी वही होगा ॥

अब होरादिक को कहते हैं ।

॥ वसन्ततिलकं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

होरेसमेऽब्जखगयोर्विषमेरवीन्द्वो-
र्द्रेक्काणकाः प्रथमपञ्चनवेश्वराणाम् ॥
स्युर्द्वादशांशपतयः स्वगृहाच्छुभानि
भानिग्रहाश्चनिजमित्रशुभांशभाजः ॥१५॥

अन्वयः—समे अब्जखगयोः होरे (स्तः) विषमेरवीन्द्वोः (होरे स्तः स्वगृहात्) प्रथमपञ्चनवेश्वराणां दृक्काणकाः (भवन्ति) स्वगृहात् द्वादशांशपतयः (स्युः) शुभानिभानिनिज-मित्रग्रहः च शुभांशभाजः (शुभाः स्युः) ॥ १५ ॥

भाषा—सम राशि में क्रम से चन्द्र सूर्य की होरा होती है विषम राशि में क्रम से सूर्य चन्द्रमा की होरा होती है (होरा प्रमाण १५ अंश का) अपने गृह से पहला, पांचवां, नौवां राशिपति का दृकाण (दश दश अंश) होता है स्वगृह से द्वादशांशपति (ढाई २ अंश प्रत्येक राशि में) होते हैं शुभ राशि हो शुभ-ग्रह भी हो अपना मित्र अपना अंश शुभ होता है (अर्थात् अपना मित्र शुभग्रह का नवांश स्थित हो लग्न में तो शुभ होता है) ॥ १५ ॥

अब तिथ्यादिक का सन्धिकाल कहते हैं ।

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

भजेतभुक्त्यन्तरभुक्तियोगैः
पृथक्पृथक्षष्टिगुणान् गुणाग्नीन् ॥
तिथीभयोगान्तरनाड्यइन्दोः
पुण्यारवेः पुण्यतमास्त्विमाःस्युः॥१६॥

अन्वयः—षष्टिगुणान् गुणाग्नीन् पृथक्पृथक् भुक्त्यन्तर-भुक्तयोगैः भजेत् (क्रमेण) तिथिभयोगान्तरनाड्यः (स्युः) इमाः इन्दोःपुण्या रवेः तु पुण्यमताः स्युः ॥ १६ ॥

भाषा—साठ से गुणे हुए तैंतीस को पृथक् २ (अर्थात् तीन जगह) रखकर क्रम से गत्यन्तर भुक्ति गति योग से भाग लेने से तिथि नक्षत्र योग इनका अन्तर (अर्थात् सन्धि नाडी) होगी (स्पष्टाशय—यह है तैंतीस को साठ से गुणा कर तीन जगह स्थापन कर पहले अङ्क में चन्द्र, सूर्य की गत्यन्तर से भाग लेने से तिथि की सन्धि होती है दूसरे स्थान में चन्द्र गति से भाग लेने से नक्षत्र की सन्धि आती है तीसरे स्थान में चन्द्र, सूर्य के गतियोग से भाग लेने पर योग की सन्धि नाड़ी होती है) इस प्रकार

से सम्बित यह अन्तर नाडी चन्द्रमा की जो है सो पवित्र है और सूर्य की तो अति पुण्यतमा (अर्थात् अति पुण्यदा) है (१) ॥ १६ ॥

अब भौमादिक ग्रहों का संक्रान्तिकाल कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

कुजादिकानामपिविम्बलिप्ताः
खषड्गुणाः स्वस्वजवेनभाज्याः ॥
नाड्यादिकः संक्रमणान्तराल-
कालः स्पुटस्तत्स्फुटभुक्तिविम्बैः ॥१७॥

अन्वयः—कुजादिकानां अपि विम्बलिप्ताः खषट्गुणाः (कार्याः) स्वस्वजवेनभाज्याः संक्रमणान्तरालकालः ना-ड्यादिकः (भवेत्) तत् स्फुटभुक्तिविम्बैः स्फुटः (स्यात्)

भाषा—भौमादिक ग्रहों की विम्बलिप्ता को साठ से गुणा कर अपनी २ गति से भाग लेने पर

(१) आशय—सूर्य चन्द्रमा का विम्ब तैंतीस पल हैं इस कारण से यह रीति करके तैंतीस को साठ से गुणने पर अपनी अपनी गति से भाग लेने पर अन्तर काल होता है यह अन्तर काल नक्षत्र ,योग राशि के अन्तराल में होता है संक्रान्ति काल में है ॥

संक्रमणान्तरकाल नाड्यादिक होता है (यह विशेष है कि मध्यम विम्ब करके जो संक्रमण काल साधन किया गया है वह मध्यम काल होता है) और वहां स्पष्ट गति स्पष्ट विम्ब से साधना करने से स्पष्ट काल होता है ॥ १७ ॥

अब ऋतुओं की सन्धि व ऋतु ले आने को कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

रवेर्भवेदेकगृहाधिकस्य
यदंशवृन्दंखलुसायनस्य ॥
यदत्रराशिद्वयभागतष्ट-
लब्धंवसन्तादृतवोभवन्ति ॥ १८ ॥

अन्वयः—एकगृहाधिकस्य सायनस्य रवेः यत् अंशवृन्दम् (भवेत्) तत् राशिद्वयभागतष्टं यल्लब्धं (तत्) अत्रखलु-वसन्तात् ऋतवः भवन्ति ॥ १८ ॥

भाषा—एक राशि युक्त सायन सूर्य का जो अंश समूह हो वह साठ से भाग लेने पर जो लब्धि मि-

होगी वह यहां निश्चय से वसंत से (ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, और शिशिर) ऋतुयां होती हैं (१) ॥

अब ऋतुओं का सन्धिकाल कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

तत्सन्धयोऽङ्गाङ्कघटीसमाः स्यु-
र्द्विसंगुणाश्चेद्विषुवायनीयाः ॥
ससन्धिसन्धिः खलुयत्रशेषः
शून्यंभवेदेषविशेषपुण्यः ॥१९॥

अन्वयः—तत् (तेषां) सन्धयः अंगअङ्कघटीसमाः स्युः चेत् विषुवायनीयाः (तर्हि) द्विसंगुणाः (सन्धयः स्युः) यत्र-शेषः शून्यः भवेत् स खलुसन्धिसन्धिः भवेत् एषः (कालः) विशेषपुण्यः (स्यात्) ॥ १९ ॥

भाषा—तिन ऋतुओं की सन्धि छः छः घटियों के तुल्य होती हैं (अर्थात् तीन २ घटी पूर्व में तीन २ घटी पर में) यदि विषुवायनी (यानी मेष, तुला, मकर और कर्क इनकी संक्रान्ति हो तो छः छः की दूनी (यानी १३२ घटी अर्थात् ६६ घटी पहले ६६ घटी पर में) सन्धि होती है जिस काल में शेष

(१) मृगादिराशिद्वयभानुभोगात् षडर्तवः स्युः शिशिरोवसन्तः । ग्रीष्मश्चवर्षाश्चशरच्चतद्वद्धेमन्तनामाकथितोत्रषष्ठः॥

शून्य हो (अर्थात् ६० भाग लेने पर जो शेष शून्य हो तो एक के अन्त में अन्त के आदि में) वह काल निश्चय से सन्धि २ होती है यह काल अतिशय पुण्य-प्रदा है (यहां पर विशेष जाना कि सन्धि की सन्धि में पुण्य विशेष ग्रहण से सन्धि काल में साधारण पुण्य रहता है यह सूचित हुआ) ॥ १६ ॥

अब सन्धियों का फल कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

सन्धौपुरन्ध्रीशुचमेतिवन्ध्या
मृतप्रजावायदिसन्धिसन्धिः ॥
वदन्तिवात्स्याऋतुनाविमूढा-
निशीथमध्यंदिनसन्धिषूढाम् ॥२०॥

अन्वयः—सन्धौपुरंध्रीशुचम् (शोकं) एति यदि सन्धि-सन्धिः (तर्हि) वन्ध्या मृतप्रजा वा (भवेत्) निशीथमध्यं दिनसन्धिषु ऊढाम् (विवाहिताम्) ऋतूनां विमूढा वात्स्याः (मुनयः) वदन्ति ॥ २० ॥

भाषा—(तिथि नक्षत्रादिक के) सन्धिकाल में (विवाही) स्त्री शोक को प्राप्त होती है यदि सन्धि की सन्धि हो (तब स्त्री) या तो बन्ध्या या मृतवत्सा हो (अर्थात् सन्तान न जीवे) (अब प्रसङ्ग करके मध्य

दिन मध्य रात्रि सन्धिकाल के फल कहते हैं) मध्य-रात्रि में या दोपहर दिन की सन्धि में विवाहिता (स्त्री) ऋतु (अर्थात् रजोधर्म) से रहित होती है (यह) वात्स्यमुनि ने कहा है (१) ॥ २० ॥

अब शूल योग सन्धि का विषय कहते हैं

॥ रथोद्धता छन्दः ॥ श्लोकः ॥

शूलवैधृतवरीयसांचय-
त्पंचमेषुचतिथिष्ववान्तरे ॥
रेवतीन्द्रफणिभोद्भवन्तद-
प्यागताद्द्विगुणमुत्सृजेत्सुधीः ॥२१॥

अन्वयः—शूलवैधृतवरीयसां च यत् पञ्चमेषु तिथिषु च अवान्तरे रेवतीन्द्रफणिभाद्भवं तत् अपि आगतात् द्विगुणं सुधीः उत्सृजेत् (त्यजेत्) ॥ २१ ॥

भाषा—शूल, वैधृति, वरीय ये योग और जो पञ्चमी तिथि (पञ्चमी, दशमी और पूर्णिमा इन) के अन्तर में रेवती ज्येष्ठा श्लेषा इनसे दो दो (अर्थात् शूल, गण्ड, वैधृति, विष्कुम्भ, वरीय, और परिघ

(१) मूर्तः कालोनिवसतिमहानिशायां च दिनदलेयस्मात् ॥ दशपूर्वंदशपरतः तस्मात्वर्ज्यानि च पलानि ॥ इति ॥

पञ्चमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी और पूर्णिमा एवम् अश्विनी, ज्येष्ठा, मूल, अश्लेषा और मघा इन सबों) को पण्डित त्याज्य करे (अर्थात् इन सबों की ग-ण्डान्त संज्ञा है॥ २१ ॥

अब तिथ्यादिक की सन्धि व्यवहार के लिये कहते हैं।

॥ वसन्ततिलकं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

नक्षत्रयोगतिथिसन्धिषुनाडिकैका
तिथ्यष्टविंशतिपलैः सहितोभयत्र॥
कर्कालिमीनतनुसन्धिषुदिक्पलानि
त्याज्यानिशेषविवरेष्वपिपञ्चपञ्च ॥२२॥

अन्वयः—नक्षत्रयोगतिथिसन्धिषु एका नाडिका (क्र-मेण) तिथ्यष्टविंशतिपलैः सहिता उभयत्र (पूर्वपश्चाच्च त्याज्या) कर्कालिमीनतनुसन्धिषु दिक्पलानि त्याज्यानि शेषविवरेषु अपि पञ्चपञ्च (पलानि त्याज्यानि) ॥ २२ ॥

भाषा—नक्षत्र (सन्धि) योग (सन्धि) तिथि (इन) की सन्धियों में एक २ दण्ड और (क्रमसे) प-न्द्रह आठ बीस पलों के सहित (अर्थात् नक्षत्र संधि १ दण्ड १५ पल। योग सन्धि १ दण्ड ८ पल। तिथि सन्धि १ दण्ड २० पल) यह दोनों तरह (अर्थात्

पहले और अन्त में इतनी २ संधि होती है) कर्क वृश्चिक, मीन इन लग्नों की संधि में १० पल (दोनों तरफ यानी पहिले पीछे) त्याज्य होते हैं और शेष (वृष, मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, धन, मकर, कुम्भ और मेष) की संधि में पांच पांच पल (दोनों तरफ अर्थात् पहिले पीछे त्याज्य होते हैं) ॥ २२ ॥

अब मास सन्धि को कहते हैं।

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

अमातिथिः पार्श्वतिथिद्वयेन
समं न माङ्गल्यमुपादधाति ॥
लोकंपृणस्तत्रातिथेः प्रणेता
यस्मान्नपीयूषवपुर्वपुष्मान् ॥ २३ ॥

अन्वयः—अमातिथिः पार्श्वतिथिद्वयेन समम् (सहितम्) माङ्गल्यम् न उपादधाति (न धारयति) यस्मात् तत्र (तस्मिन् तिथित्रये) लोकंपृणः तिथेः प्रणेता पीयूषवपुः वपुष्मान् न (अस्ति) ॥ २३ ॥

भाषा—अमावस्या, चतुर्दशी, प्रतिपदा के सहित तिथियों में मांगल्य कार्य नहीं रखना (इसका कारण यह है) जिस वजह से इन तीन तिथियों

में चन्द्रमा तिथिप्रवर्तक अमृतमय शरीर प्रशस्त रूप वाले नहीं रहते हैं (अर्थात् चतुर्दश्यादिक कृष्ण पक्ष में ऐसे चन्द्रमा अस्तगत होने से त्याज्य किये नहीं तो अमृतमय कान्तिमान् तिथिकर्ता चन्द्रमा त्याग योग नहीं हैं। परन्तु एक प्रबल दोष गुणों को नाश करते हैं) ॥ २३ ॥

अन्य आचार्य चन्द्रबल्य से द्वितीया तिथि को निषेध करते उनके मत में दोष देकर कुछ विशेष कहते हैं ।

॥ श्लोक ः॥

उदेतिचायंप्रतिपत्समाप्तौ
कृशापिवर्धिष्णुतयाप्रशस्तः ॥
द्वीपान्तरस्थोविफलोपिताव-
द्यावन्नपृथ्वीनयनाध्वनीनः ॥ २४ ॥

अन्वयः— अयम् (चन्द्रमाः) प्रतिपत् समाप्तौ उदेति च कृशः अपि वर्धिष्णुतया (हेतुना) प्रशस्तः द्वीपान्तरस्थः (चन्द्रः) तावत् अपि निफलः यावत् पृथ्वीनयनाध्वनीनः न (अस्ति) ॥ २४ ॥

भाषा—यह चन्द्रमा प्रतिपदा की समाप्ति में उदय होता है "उदेति च" शब्द का यह अर्थ है कि

सामीप्य में सप्तम्यर्थ (वह चन्द्रमा) खिन्न भी है (तौभी) शरीर बढ़ने के वजह से शुभ है (जैसे बालक शरीर बढ़ने के वजह से शोभायमान होता वैसे चन्द्रमा की रीति है) द्वीपान्तर (अर्थात् अन्य देशों) में स्थित (चन्द्रमा) तब तक निश्चय से विफल (यानी फल रहित) रहते हैं जब तक वहां पर रहनेवाले पुरुष नहीं देखते (१) ॥ २४ ॥

अब जन्मादिक का निषेध कहते हैं ।

॥ वसन्ततिलकं छन्दः ॥ श्लोक ॥

नोजन्ममासतिथिभेषुनचाधिकोने
मासेतिथौचपृथुमङ्गलमामनन्ति ॥
यज्ज्येष्ठगर्भजमपत्यमुपेतमेत-
ज्ज्येष्ठेमहोत्सवमवश्यमियान्नवृद्धिम् ॥२५॥

---

(१) स्पष्टाशय शास्त्र मार्ग से देखाते है चन्द्रमा और देशान्तर में भी देखे जाते हों वह चन्द्रमा "लङ्कापुरेर्कस्ययदोदयः स्यात् तदादिनार्धं यमकोटिपुर्याम् ॥" इत्यादि गोल वासना से प्रसिद्ध है इस वजह से स्वदेशभूमि पर रहनेवाल पुरुषों के जब तक न देखने में आवें तभी तक विफल रहते और आकाश आदि दोष से चन्द्रमा न देखायं तो दोष नहीं है ॥

अन्वयः—जन्ममासतिथिभेषु नअधिकोनेमासे च तिथौ च पृथुमङ्गलं न आमनन्ति यत् ज्येष्टगर्भजं अपत्यं ज्येष्ठमहोत्सवं उपेतं एतत् अवश्यं वृद्धिम् न इयात् (न प्राप्नुयात्) ॥ २५ ॥

भाषा—जन्म मास, जन्म तिथि, जन्म नक्षत्र में पृथु मङ्गल (चौल उपनयन विवाहादि) नहीं कहते हैं और अधिक मास क्षय मास में नहीं कहा है और अधिक तिथि क्षय तिथि में नहीं कहा है जो ज्येष्ठ गर्भ के पुत्र या पुत्री का ज्येष्ठ महीना में महोत्सव (चौल व्रतबन्ध विवाहादि) प्राप्त हो वह अवश्य वृद्धि को प्राप्त नहीं होता (ज्येष्ठ महीने में मङ्गल शुभ नहीं होता है) ॥ २५ ॥

अब गुण दोष विचार करनेवाले की प्रशंसा कहते हैं ।

॥ रथोद्धता छन्दः ॥ श्लोक ॥

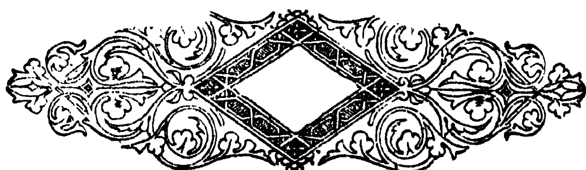
इत्यतन्द्रियहशोनिरूचिरे
यद्गुणागुणमयंमुनीश्वराः ॥
दैवविद्विदितजन्मतन्मतः
कीर्तिभाग्भवतिलग्नलग्नधीः ॥ २६ ॥

अन्वयः—इति यत् गुणागुणमयं अतीन्द्रियदृशः (दिव्यद्रष्टारः) मुनीश्वराः निरूचिरे (निजगदुः) विदितजन्मतन्मतः लग्नलग्नधीः दैववित् कीर्तिभाग्भवति ॥ २६ ॥

भाषा—इस कारण जो गुण और दोष के समूह को दिव्यदृष्टिवाले मुनीश्वर लोग कहते हैं कि ज्ञात है जन्म ऐसे मत लग्न में लगा है बुद्धि ज्योतिषी कीर्ति के भोगनेवाले होते हैं (अर्थात् जन्म मति गुण और दोष विचार में चतुर लग्न में निरत है एक बुद्धि ऐसे ज्योतिर्विद् संसार में कीर्तिमान होते और परलोक में शिव समीप में वास करते है ॥ २६ ॥

इति श्रीकाशिखण्डान्तर्गतभृगुक्षेत्रसमीपदेवडीहग्रामनिवासिशाण्डिल्यवंशावतंसविविधशास्त्रपरमपण्डितश्रीलालबहादुरत्रिपाठिपुत्रज्योतिर्वित्पण्डितशिवदत्तत्रिपाठिविरचितायां विवाहवृन्दावनसान्वयशिवकरीभाषाटीकायां षड्वर्गाध्यायोऽष्टमः

समाप्तः ॥ ८ ॥



अथ गोधूलिकाध्यायः ९

इस प्रकार सब लग्नों की शुद्धि रखकर अब गोधूलिक लग्न विशेष तिसमें गोधूली का समय और अपनी कुशलता दिखलाते हैं ।

॥ शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

प्राचींकुंकुमचर्चितामिवदिशंमु-
क्ताफलस्रग्विणींकौसुंभांशुकभा-
सिनीमिवदिशंप्राचेतसींदर्शयन् ॥
यावद्यातिकरग्रहंसहरविसन्ध्यां-
कुरङ्गीदृशातावन्मङ्गलमङ्ग-
लग्नसुरभीरेणोः करंगृह्यतः ॥ १ ॥

अन्वयः—तावत् अङ्गलग्नसुरभीरेणोः (कुमार्याः) करं गृह्यतः (पुरुषस्य) मङ्गलं (भवति) यावत् रविः सन्ध्या-कुरङ्गीदृशासहकरग्रहं याति (किं कुर्वन्सन्) कुंकुमचर्चितां इव प्राचीं दिशं (प्रति आत्मान) दर्शयन् (कथम्भूतां प्राचीं) मुक्ताफलस्राविणीं (कांमिव) प्राचेतसीं दिशं इव (कथम्भूतां प्राचेतसीं) कौसुंभांशुकभासिनीम् ॥ १ ॥

भाषा—तब तक शरीर में लगी हुई गौ की धूलि (जिस स्त्री की) पाणिग्रहण करनेवाले (पुरुष) का मङ्गल होता है अब है जब तक सूर्य सन्ध्या मृग नयनो के साथ करग्रह को जाते हैं (अर्थात् सायं सन्ध्या में गौओं की धूलि की सम्भावना होती इससे यह कहा गया क्या करते हैं) कुंकुम रंग से शोभित की नाईं पूर्वदिशा में (अपने शरीर को) दिखाते हुए (अर्थात् इसी तरह सायं काल में पश्चिम दिशा में कुंकुम के सादृश स्वाभाविक सन्ध्या राग हो जाता यानी कुंकुम के सदृश वह काल शोभित होता है (कैसी है पश्चिम दिशा) मुक्ताफल की माला ऐसी (अर्थात् नक्षत्र माला की नाईं मुक्ताफल हार किसकी नाईं दिखलाते भये) पश्चिम दिशा की नाईं (अर्थात् पश्चिम दिशा में दिखाई देते (वह कैसी पश्चिम दिशा है कुसुम पुष्प विशेष है उस पुष्प की जो कान्ति उसकी नाईं (अर्थात् यावत् सन्ध्या स्वरूप रहता और गौओं की धूलि भी उस समय में देखने में आती उस काल में करग्रह करनेवाले पुरुषों को मङ्गल होता है) ॥ १ ॥

अब गोधूलि की प्रशंसा और उसके अधिकारी को कहते हैं ।

॥ वसन्ततिलकं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

उत्कर्णतर्णकविलोकनवल्गुवल्ग-
त्पीनस्तनोद्धूषितदुर्धरधेनुधूलिः ॥
गोधूलिकं सृजति गोपपृथग्जनानां
दोषैर्महद्भिरपि लग्नमनूनमन्यैः ॥ ॥

अन्वयः—उत्कर्णतर्णकविलोकनवल्गुवल्गत्पीनस्तनोद्धूषितदुर्धरधेनुधूलिः गोधूलिकं (लग्नं) गोपपृथक् जनानां सृजति (दधति किं विशिष्टं लग्नं) अन्यैः महद्भिः दोषैः अनूनं सहितम् अपि ॥ २ ॥

भाषा—उत् (उठाया है) कर्ण (दोनों कान तर्णक वच्छा उसको) अवलोकन (अर्थात् देखना तिस से) वल्गु (शोभा) वल्गत् (यानी गमन) पीन (मोटा) स्तन उत् (कर्ष से) हूषित (सन्तुष्ट) दुर्धर (यानी दुःख से धरने को शक्य ऐसी) धेनु (गौ) की धूरि वह गोधूलिक लग्न गोप पृथक् जनों को (अर्थात् हीन वर्णों को) सृजति (देना) इसकी प्रशंसा कहते हैं कैसा वह लग्न है) अन्यै (और) महद्भिः दोषैः (महान् दोषों करके) अनून

(सहित) तौभी (शुभ है अर्थात् गोधूली लग्न में हमेशा सप्तम में सूर्य रहते हैं वह महादोष है जिस वजह से "मदनमूतिशय" इत्यादि कहते हैं और दोष अष्टम में भौमादिक ग्रह युक्त हो तौभी तो गोधूलि लग्न शुभ है ॥ २ ॥

जब ऐसा है तब कोई आचार्य छठे अठे चन्द्रमा को लग्न का भङ्ग कहते हैं उसका निरादर करते हैं।

॥ श्लोकः ॥

गोधूलिकेपिविधुमष्टमषष्ठमूर्तिं
यन्मोचयान्तितदयंस्वरुचिप्रपञ्चः ॥
पश्चाङ्गशुद्धिनयमेवविवाहधिष्ण्यै-
र्यस्मादिदंसततमस्तगतेपतंगे ॥ ३ ॥

अन्वयः—गोधूलिके अपि अष्टमषष्ठमूर्तिं विधुं यत् (केचित्) मोचयन्ति (त्याजयन्ति) तत् अयं स्वरुचिप्रपञ्चः यस्मात् इदं (गोधूलिकं) विवाहधिष्ण्यैः (सह) पञ्चाङ्गशुद्धिं अयम् एव (यस्मात् इदं गोधूलिक) सततं अस्तं गते पतंगे ॥ ३ ॥

भाषा—गोधूलि में भी अठे छठे चन्द्रमा जिस

कारण जिस किसी ने त्याज्य किया है तिस कारण से अपना रुचिंप्रपञ्च किया (इसका वाक्य भी है 'जामित्रंनविचिंतयेत् ग्रहयुतम् ।' यानी ग्रहयुक्त जामित्र दोष नहीं विचार करना इत्यादि और "हित्वाचन्द्रमसंषडष्टमगतं गोधूलिकंशस्यते" अर्थात् षडाष्ट चन्द्र को छोड़ करके गोधूलि लग्न शस्त है यह अपना रुचिविस्तार है अथवा अपनी रुचि करके प्रपञ्च किया जनों के मोहनार्थ किस कारण से) जिस कारण से यह गोधूलि लग्न विवाहनक्षत्रों करके सहित पञ्चाङ्ग शुद्धि यही निश्चय है अर्थात् पञ्चाङ्ग शुद्धि गोधूलि में विवाह नक्षत्र होना यही पञ्चांगशुद्धि मुख्य है दूसरा लग्न शुद्ध्यादिक नहीं और पञ्चांगादिक कहने से तिथ्यादिक की शुद्धि स्वाभाविक दोष से रहित होना चाहिये यह प्रसिद्ध है आगे सब प्रपञ्च दिखलाते हैं कैसे जिस कारण से) इस गोधूलिक लग्न में हमेशा सप्तम में सूर्य रहते हैं (इत्यादि ऐसा महादोष जब ग्रहण हुआ तो और है षडाष्ट में चन्द्रादिक और अष्टम भौमादिक दोष को क्यों न ग्रहण किया जाय) ॥ ३ ॥

॥ श्लोकः ॥

नांशोनलग्नमिहदृष्टयुतंस्वभर्त्रा
नार्कारसौरतमसामपिसङ्गभङ्गः ॥
किंचन्द्रचारभयमेकमिहास्तुकिंचि-
न्नात्रप्रमाणवचनं किमपिश्रुतंनः ॥४॥

अन्वयः—किञ्च इह (अस्मिन् गोधूलिके) अंशः स्वभर्त्राऽदृष्टयुतः न (अस्ति) लग्नं च स्वभर्त्राऽदृष्टयुतं न अर्कारसौरतमसांसङ्गभङ्गः अपि न एकंचन्द्रचारभयं किंचित् अस्तु अत्र वः (युष्माकं) प्रमाणवचनं किं अपि न श्रुतम् ॥ ४ ॥

भाषा—किञ्च शब्द युक्त्यन्तर में है इस गोधूलि में नवांश अपने स्वामी से दृष्टयुक्त न हो और लग्न भी अपने स्वामी से दृष्टियुत न हो सूर्य, मङ्गल, शनि और राहु इनका जो संयोग (यानी एकत्र) इन करके जो लग्न भंग सो भी नहीं है इस प्रकार रहते एक चन्द्रमा के चार भय कुछ होगा (अर्थात् नहीं हो सकता) यहां पर (इस चन्द्र चार विषय में) हम सब को प्रमाण वचन कुछ भी नहीं सुनने में आया (अर्थात् इस विषय में जो वाक्य प्रामाणिक माननीय है वैसी हमर्षि लोगों की सम्मति नहीं है

यानी "हित्वाचन्द्रमसं षड्ष्टमगतं" यह माननीय नहीं है) ॥ ४ ॥

अब यहां पर क्या देखना चाहिये सो कहते हैं।

वसन्ततिलकं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

सार्केशनौविरविचित्रशिखण्डिसूनौ
तत्केवलंकुलिकयामदलोपलम्भात् ॥
प्रायेणशङ्करभुवामशुभर्क्षपक्ष-
क्रूरक्षणेषुशुभकृत्करपीडनंस्यात् ॥५॥

अन्वयः—तत् (गोधूलिः भवति) सार्कशनौदृश्यतेचि-त्रशिखण्डिसूनौविरवि (गोधूलिः भवति कस्मात्) केवलं कुलिकयामदलोपलम्भात् शङ्करभुवां करपीडनं प्रायेण अशुभर्क्ष-पक्षक्रूरक्षेषुशुभकृत्स्यात् ॥ ५ ॥

भाषा—वह गोधूलि शनैश्चर के सूर्य रहते होती है गुरुवार के सूर्य अस्त होने पर गोधूलि होती किस कारण से केवल कुलिक और याम दल के उपलम्भ (यानी प्राप्त होने से) अर्थात् शनैश्वर की रात्रि में प्रथम मुहूर्त कुलिक होता है इस वजह से शनैश्वर के सूर्य रहते गोधूलि होती है और गुरुवार को आठवां मुहूर्त अर्द्धयाम होता है इस वजह से गुरुवार के सूर्यास्त होने पर गोधूलि होती है केवल यही पञ्चांग

मध्य में वारदोष होने से कहा है और से नहीं यहां पर क्या करना चाहिये सो कहते हैं हीन वर्णों का विवाह बाहुल्य करके अशुभ नक्षत्र अशुभ पक्ष क्रूर मुहूर्त में शुभ कारक कहा है अर्थात् हीन जातियों का विवाह शुभ है फिर पञ्चाङ्ग मध्य में क्या विचार है सो शौनक मुनि कहते हैं यथा वाक्य 'आन्त्यना-मशुभर्क्ष' इत्यादि अन्त्य जातियों का विवाह अशुभ नक्षत्रादिक में शुभ होता) ॥ ५ ॥

अब जो कहा है सार्क ज्ञानौ इत्यादि उसके परिमाण को कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

अत्रोभयत्रघटिकादलमिष्टमाहु-
र्ग्राह्यस्तदम्बरमणेरपिनार्धविम्बः ॥
कालार्गलानियतयेतपनार्धविम्ब-
वेलाव्यवस्थितिरियंरचयांबभूवे ॥६॥

अन्वयः—अत्र (अस्मिन् गोधूलिकेयस्मात्) उभयत्रघ-टिकादलं इष्टं आहुः तत् (तस्मात्कारणात्) अम्बरमणेः अर्धविम्बः अपि (कालः) न ग्राह्यः इयं तपनार्धविम्बवेला-व्यवस्थितिः कालार्गला नियतये (मुनिभिः) रचयाम्बभूवे अरचि ॥ ६ ॥

भाषा—इस गोधूलि में (जिस कारण से) दोनों तरफ (अर्थात् आधा सूर्यास्त से पहले और पीछे) एक घटी का आधा (अर्थात् ३० पल) इष्ट कहा (यानी गोधूलि का समय कहा है) तिस कारण से सूर्य के अर्ध विम्ब (अर्थात् आधा है चक्र। जिस काल में वह काल) नहीं ग्राह्य है यह सूर्य का अर्ध विम्ब की वेला (यानी काल) उसकी व्यवस्थिति (यानी अवस्थान काल की अर्गली उसका नियती यानी नियमकारों ने (मुनियों ने) रचना कियी) (१)॥६

इति श्रीकाशिखण्डान्तर्गतदेवडीहग्रामनिवासिशाण्डिल्यवंशाव-
तंसविविधशास्त्रपारङ्गतपण्डितश्रीलालबहादुरत्रिपाठिपुत्र-
ज्योतिर्वित्पण्डितशिवदत्तत्रिपाठिविरचितायां
विवाहवृन्दावनसान्वयशिवकरीभाषाटी-
कायां गोधूलिकाध्यायः
समाप्तः॥ ८॥



(१) इस गोधूलि काल के नियम करने का प्रमाण है "दिनान्तेसूर्यविम्बार्धपूर्वंपश्चाद्घटीदलम्। कालार्गलेववेलायां धात्रो-द्वाहायनिर्मिता" इति। अर्थ, दिन के अवसान में सूर्य विम्बार्ध से पहले पीछे आधी घटी समय में काल की अर्गला अर्थात् कब से इष्ट काल ग्रहण किया जाता है वह ब्रह्मा ने उद्वाह के विषय में निर्माण किया इस गोधूलि में भी छठे आठवें चन्द्रमा को त्याज्य

अथ मासगोचराध्यायः १०

अब मास गोचर विचाराध्याय को कहते हैं उसमें पहले सौर व चान्द्रमास का विचार कहते हैं ।

॥ मन्दाक्रान्ता छन्दः ॥ श्लोकः ॥

चैत्रेमासिप्रतिपदितिथौवासरेर्कस्य-
सर्वैर्मेषादिस्थैर्गगनगातिभिर्भूर्भुवः स्वः

जो कहा है ग्रन्थकर्ता ने वह सम्यक् विचार मार्ग में नहीं आता क्यों नहीं आता उसका कारण यह है कि पहले कह चुके हैं 'पञ्चांगशुद्धिमियमेवविवाहधिष्ण्यैः' अर्थात् यह पञ्चांग शुद्धि विवाह नक्षत्रों करके इत्यादिक अर्थात् पञ्चांग शुद्धि वही है जो कि तिथ्यादिक प्रसिद्ध है सो नारद वशिष्ठ आदिकों ने पञ्चांग शुद्धि विरह दोष इत्यादिक महा दोष प्रकरण में कहा है । दोष दो प्रकार के हैं एक तो प्राकृतिक दूसरा आगन्तुक अर्थात् जिस कर्म में तिथ्यादिक नहीं कहा गया हैं उस तिथ्यादि की प्राप्ति में प्राकृतिक दोष कहलाता है जैसे विवाह में अमवास्या व्यतीपात भरणी इत्यादि ग्रहाधिजनित दोष आगन्तुक कहलाता है जैसे तिथि में दग्धत्वधर्म होता नक्षत्र में पाप वेधादिक इस वजह से पञ्चांग को प्राकृतिक दोष निश्चय से यहां पर शुद्धि है आगन्तुक दोष विरह जो है सो नहीं उसके योगकरण नहीं अभिधान होने

प्रवृत्तिः ॥ एवंपौषेमृगमुखगते
भास्वतिस्यान्नचासावुक्तः श्रेयान्परि-
णयविधाविन्दुमासोऽस्तितस्मात् ॥१॥

से शुद्धि शब्द से आगन्तुक दोष विरह उत्तमान में वार दोष भी समझना और "खार्जुरिकं समांघ्रिभम्" अर्थात् खर्जुरिक चक्र में वेध के तुल्य जो नक्षत्र चरण है इत्यादि नारदादिकों के पठित दोषों में फिर से कहना यह आपत्ति है २१ एक्कीस परिगणना से असम्भव है इस वजह से पञ्चांगों का प्राकृतिक दोष विरह निश्चय से शुद्धि होना यह सिद्ध हुआ इस वजह इस प्रकार करके "पञ्चांगशुद्धिस्त्रयमेवगोधूलिकं" ऐसा हुआ । अब यदि ऐसे कहा जाय तब "पञ्चांगशुद्धिमयमेवविवाहधिष्ण्यैः" ऐसे कहनेवाले का यह आशय है कि विवाहविहित नक्षत्र में पञ्चांग का ग्रहादि-जनित दोष अभाव लक्षण से शुद्धि के कहा तौभो ठीक नहीं क्योंकि योग और करण के असम्भव से । यह कहो कि यथा सम्भव हो तौभो वह नहीं है क्योंकि पञ्चपद की व्यर्थता से इस वजह से शुद्धि शब्द से प्राकृतिक दोषाभाव स्वीकार के योग्य है यह कहता है कि जब ऐसा है तब पञ्चांग शुद्धि बाहर से "सकिं-शनौ" इत्यादि करके कुलिक अर्द्धयाम कैसे त्याज्य करते हो इ-सका उत्तर यह है कि वारदोष से । अच्छा जब ऐसा है तब नारद वशिष्ठादिकों ने पञ्चांग शुद्धि विरह इत्यादि पठित दोषमें वार दोष का पृथक् ग्रहण है तब "कुलिकक्रान्तिसाम्यं च ।" अर्थात् कुलिक क्रान्तिसाम्य इस हेतु आगेम बल से कुलिक यमादिकों

अन्वयः—(यस्मात्) चैत्रेमासि (शुक्ल) प्रतिपदितिथौ अर्कस्यवासरे सर्वैः गगनचरतिभिः (रव्यादिग्रहैः) मेषादिस्थैः भूर्भुवः स्वः प्रवृत्तिः (आसीत्) एवम् पौषेमृगमुखगतेभास्वति न स्यात् तस्मात् असौ इन्दुमासः (यः) अस्ति (स) च परिणयविधौ श्रेयान् (श्रेष्ठः) उक्तः ॥ १ ॥

भाषा—जिस कारण से चैत्र महीना शुक्लपक्ष प्रतिपद् तिथि सूर्य के वार में सब सूर्यादिक ग्रह मेषादि राशि में स्थित रहें तो क्रम से भूः लोक भुवः लोक स्वः लोक की प्रवृत्ति हुई (अर्थात् ये तीनों लोक उत्पन्न हुए उसी समय इसका और प्रमाण

को त्याज्य किया । यदि ऐसा है तो षष्ठाष्टम चन्द्रमा करके क्यों अपराध है वह भी आगम बल से त्याज्य है । अच्छा यह कहिये "नावप्रमाणवचनंकिमपिश्रुतं ।" अर्थात् इस विषय में प्रमाण वचन को नहीं सुना सो भी नहीं जिस वजह से आगम प्रमाण वाक्य है "षष्ठाष्टमे मूर्तिगते च चन्द्रेगोधूलिकेमृत्युमुपैतिकन्या । कुजे-ष्टमेमूर्तिगतेथवास्तेवरस्यनाशं प्रवदन्तिगर्गाः ॥ १ ॥ धिष्ण्यंग्रक्रूरयुतं त्याज्यंमूर्तौषष्टाष्टमेचन्द्रम् । कुजंरन्ध्रास्तलग्नगंविनारंभंशुभेयुतंगो-धूलंशुभदस्थवेत् ॥" इन दोनों का अर्थ स्पष्ट है इत्यादि बहुत स-म्मति है इस विषय में परन्तु यह भी ठीक नहीं क्योंकि "प्रत्या-ख्येयः पाक्षिकोपीहदोषः ।" इत्यादिक बहुत कहने से कुछ प्रयो-जन नहीं है इस कारण षष्ठ अष्टम चन्द्रादिक और उक्त दोष भी गोधूलिक लग्नमें त्याज्य करना चाहिये यह सिद्ध हुआ ॥

भी है 'भूर्लोकाख्योदक्षिणोव्यक्षदेशात्तस्मात् सौम्योयं भुवः स्वश्चमेरुः॥' अर्थात् व्यक्ष देश से भूः लोक दक्षिण है उससे उत्तर दिशा में भुवः मेरु है इस वजह से पृथ्वी लोकत्रय आधिष्ठात्री कही जाती इन सब लोकों की प्रवृत्ति अर्थात् प्रथम निर्माण को ब्रह्मा ने किया प्रमाण "सृष्टाभचक्रांकमलोद्भवेन ॥" इसका आशय स्पष्ट ही है और भी है 'लङ्कानगर्यामुदयाच्च-भानुः ॥' अर्थात् लङ्का नगरी में सूर्य के उदय से यह जो कहा है वैसे) पौष महीना में मकरादि में स्थित सूर्य नहीं रहे तिस कारण से यह चन्द्रमास जो है सो विवाह विधि में श्रेष्ठ कहा है (१) ॥ १ ॥

---

(१) स्पष्टाशय—लङ्का के क्षितिज में स्थित मेषादि में चन्द्रमा सूर्य जब हुए तब तीनों लोकों की एक साथ प्रवृत्ति हुई वहां पर चन्द्र सूर्य के समकाल होने से चन्द्रमासादि जो है सो ग्रहण हुआ वह मेष राशि में सूर्य के गत होने से चैत्र मास में सूर्य का होरा रहा इस वजह से "अर्कस्यवारे" इत्यादि कहा यह सब पौष महीने में मकरादि स्थित सूर्य में नहीं घटता है जिस कारण से सौर वर्ष मासादिक प्रवृत्ति संहिताकारों ने मकरादि स्वीकार किया है। प्रमाण भी है "मृगादिराशिद्वयभानु-भोगात्" इस वजह से चान्द्रमास मुख्य ठहरा यह ग्रन्थकर्ता की उक्ति है परन्तु यह चतुरस्र नहीं है जिस वजह से प्रवृत्ति काल

इस दोनों के विरोध में युक्ति के सहित निर्णय को पूर्वपक्ष से कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

नेष्टः पौषोमृगयुजिरवावाद्दत-
श्चेत्प्रवीणो श्चारुश्चैत्रोप्यज-
सहचरेभास्करेसुन्दरीणाम् ॥

में मेषादि गत सूर्य होने से सौरमास को भी प्रवृत्ति हुई वह फलकीर्तन के वास्ते है वास्तव तो मेषादि यह जो कहा है सो निश्चय से ग्रहगणित में प्रसिद्ध है प्रमाण 'दिनंसुराणामयनंयदुत्तरं" इत्यादि से सिद्ध हुआ परन्तु प्रवृत्ति काल में चान्द्र दिन वर्षादि में भी प्रवृति है उसको मुख्य क्यों नहीं कहा तिस कारण से यह युक्ति कर चान्द्र मास को भी श्रेष्ठत्व कहना यह उचित है किन्तु युक्त्यन्तर संहिता आगम बल से ग्रहण करना योग्य है उसका प्रमाण भी देते हैं "नक्षत्रेणयुक्तः कालः । सास्मिन्पौर्णमासीतिसंज्ञायाम् ॥" और नक्षत्र करके युक्त जो काल है वह काल भी लिया जाता क्योंकि जो नक्षत्र जिस महीने की पूर्णिमा में युक्त हुआ है यही उस महीने की संज्ञा कायम की गई यह पाणिनीय के अनुशासन से ज्येष्ठी पौषी इत्यादि संज्ञा सौरादिक महीने में नहीं प्राप्त होती तिस कारण से चान्द्रमास निश्चय से मुख्य है इसी वजह से नारद जी ने भी कहा है "यस्मिन्मासेपौर्णमासीयेनधिष्ण्येनसंयुता । तन्नक्षत्राह्वयोमासः पौर्णमासीतदाह्वया ॥ तत्पश्ची

माण्डव्याद्यैः स्मृतशुभफलस्या-
स्यकिंनोपयामे मीनोपिस्यादवि-
कृतफलः फाल्गुनस्यप्रसंगात् ॥२॥

अन्वयः—सुन्दरीणां उपयामे (विवाहे) मृगयुजिरवौ पौषः नेष्टः चेत् प्रवीणैः आदृतः तर्हि चैत्रः अपि अजसहचरे (मेषगते) भास्करे (सति) चारुः (शुभः स्यात्) अस्य (फाल्गुनस्य) माण्डव्याद्यैः स्मृतफलस्यप्रसङ्गात् मीनः अपि अविकृतफलः किं न स्यात् (अपितुअविकृतफलः एव) ॥२॥

शुक्लकृष्णावथौदेवपित्र्यौचतावुभौ ॥" अर्थ जिस महीने में पूर्णमासी जिस नक्षत्र से युक्त हो वह नक्षत्राह्वय अर्थात् नक्षत्र मास कहलाता और पूर्णमासी भी तिस संज्ञा को कही जाती हैं तो वे दोनों पक्ष शुक्ल कृष्ण देव पितृ कर्म में शुभ होते हैं इस प्रकार इस अभिधान को कहा 'पक्षौपूर्वापरौशुक्लकृष्णौमासस्तुता-वुभौ' अर्थात् पूर्व पक्ष शुक्ल होता है पर पक्ष कृष्ण होता है इन दोनों से यह मास होता है अर्थात् एक शुक्लादि मास होता है दूसरा कृष्णादि मास होता है इस वजह से सिद्धान्त में कहा है 'मासास्तथाचतिथयस्तुहिनांशुमानात्॥' अर्थात् मास और तिथि चान्द्र मास से लेना इस कारण से सौरादि मास गौण प्रयोग वृत्ति करके माननीय है यह हमारा सिद्धान्त है परन्तु वादी कहता है कि ऐसा जब है तब "रवेरवैशाखिरणमुत्तरायणं ॥" यह विवाह में सौर मास कैसे कहा उत्तर इसका यह है कि आषाढ़ादि चार महीनों में विवाह नहीं होता इस वजह से चान्द्रमास ग्रन्थान्तर में कहा है ॥

भाषा—स्त्री के विवाह में मकर राशि के रहते सूर्य पुष्य महीना नेष्ट है (अर्थात् मकर राशि गत सूर्य शुभत्व होने से अशुभ जो पौष महीना उसके योग से वह मकर गत सूर्य नहीं शुभ होते पर आशङ्का यह होती है कि विपरीत क्यों नहीं हो जाता अर्थात् मकर गत सूर्य शुभ हैं तो उस महीने को शुभधर्म प्राप्त होना चाहिये इस विषय में कहते हैं) जो पण्डित लोगों ने (मकर राशि में रवि रहते पौष महीनों को ग्रहण किया है (क्योंकि मकर गत सूर्य के शुभ होने से तब चैत्र महीना भी मेष राशि के सूर्य रहते शुभ है परन्तु ऐसा नहीं किन्तु) इस फाल्गुन के मांडव्यादि आचार्यों करके कथित शुभ फल के प्रसङ्ग से मीन राशि फल सूर्य में भी अविकृत (अर्थात् विकाररहित) फल क्यों नहीं होता है (अर्थात् यथावत् फल रह जाता है शुभ फाल्गुन के योग से भी दुष्ट मीन का दुष्ट ही फल होता है ऐसा भी नहीं है किन्तु है इस प्रकार सौर माननेवाले को यह दोष अनिष्ट है) ॥ २ ॥

इस प्रकार होते सिद्धान्त पक्ष कहते हैं

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

झषोननिन्द्योयदिफाल्गुनेस्या-
दजस्तुवैशाखगतोनानिन्द्यः ॥
मध्वाश्रितोद्वावपिवर्जनीया-
वित्यादिवाचामियमेवमुक्तिः ॥ ३ ॥

अन्वयः—फाल्गुनेझषः (मीनगतार्कः) स्यात् (तर्हि) न निन्द्यः अजस्तुवैशाखगतः न निंद्यः मध्वाश्रितौद्वौ (मीन मेषगतार्कौ) अपि वर्जनीयौ इत्यादि वाचां इयं एव मुक्ति ॥

भाषा—जो फाल्गुन में मीन राशि के सूर्य हों तो नहीं निन्दित हैं (चान्द्रमास की मुख्यता से इस प्रसङ्ग से व्रतबन्ध में निर्णय को करते हैं) मेष राशि से वैशाख में जब सूर्य होते है तब नहीं निंदित हैं 'मेषेर्के च व्रतंनहि' यानी मेष राशि के सूर्य में व्रतबन्ध नहीं निन्दित है वजह यह है कि शुभ मेष शुभ वैशाख के योग से शुभत्व धर्म प्राप्त हुआ परन्तु वास्तविक) चैत्र महीने में दोनों मीन मेष के सूर्य वर्जनीय हैं (चैत्र की दुष्टत्व से अर्थात् मीन स्वरूप ही से निन्दित है और मेष चैत्र के याग से इस कारण

चान्द्रमास की मुख्यता से यह सर्वत्र हेतु है) इत्यादिक को कहनेवाले की युक्ति निश्चय से यही उक्ति है ॥३॥

जब निश्चय से चन्द्रमास मुख्य है तब पृथक् सौरमास को कैसे कहा ऐसी आशङ्का में कहते हैं।

॥ शालिनी छन्दः ॥ श्लोक. ॥

प्रायः सौरंमानमिष्टंविवाहे
तत्किंचान्द्रेमासमाहुः फलेन ॥
यस्मात्सम्यक्तत्फलाप्तिस्तदैक्ये
सौरोमासः केवलः किञ्चिदूनः ॥ ४ ॥

अन्वयः—(यदि) प्रायः सौरं मानं विवाहे इष्टं (स्यात्) तत् (तदा) फलेन चान्द्रमासं किं आहुः (शौनकादयः) यस्मात् (सौरचन्द्रमासौविवाहे उक्तौ) तत् (तस्मात्) तदैक्ये (सति) सम्यक् फलाप्तिः (भवति) केवलः सौरः मासः किञ्चित् ऊनः (स्यात्) ॥ ४ ॥

भाषा—जो बाहुल्य करके सौरमान को विवाह में स्वीकार किया है तो फल करके चान्द्रमास को क्यों कहा है (शौनकादिक 'धनमानपरिभ्रष्टाचैत्रेचात्पप्रमैथुना त्वसती ॥' अर्थात् धन और मान से परिभ्रष्टा हो और मैथुन करके अतृप्ता हो असती हो चैत्र म-

होना में विवाहिता स्त्री इत्यादिक करके) जिस कारण से सौर चान्द्रमास दोनों विवाह में कहे हैं तिस कारण से सौर व चान्द्रमास के एकत्व होने में अच्छी तरह से फल की प्राप्ति होती है केवल सौर मास (चान्द्रमास की अपेक्षा) कुछ कम है (चान्द्र-की मुख्यता होने से) ॥ ४ ॥

इस प्रकार सौर चान्द्रमास का बलाबल कहके गोचराष्टकवर्ग का बलाबल कहते हैं ।

॥ रथोद्धता छन्दः ॥ श्लोकः ॥

योषितांगुरुपतङ्गगोचरे
शोभनेशुभकरः करग्रहः ॥
अष्टवर्गविधिनातदत्यये
सूर्यशुद्धिमपरेनृणांजगुः ॥ ५ ॥

अन्वयः—योषितां गुरुपतंगगोचेरेशोभने (सति) कर-ग्रहः शुभकरः (स्यात्) तत् अत्यये (अलाभे सति) अष्ट-वर्गविधिना (गुरुपतंगबले शुभः स्यात्) अपरेनृणां सूर्यशुद्धिं जगुः ॥ ५ ॥

भाषा—स्त्री के गुरु सूर्य के गोचर में शुभ होने से विवाह शुभकार होता है तिस गुरु सूर्य के गोचर

में नहीं शुभ होने से अष्टवर्ग विधि से अगर शुभ हो तौभी विवाह शुभ होता है। अपराचार्य पुरुष के लिये सूर्यशुद्धि कहते हैं गुरु शुद्धि नहीं कहते तिसका प्रमाण 'प्राक्भानुरप्युपचयेतिपुरुषाणां गुरुशुद्धिस्तुव्रतबन्धे' अर्थात् सूर्य भी पहले पुरुष के उपचय अर्थात् शुभ स्थान में शुभ होते हैं तो शुभ होते हैं और व्रतबन्ध में गुरु शुद्ध लिया जाता है इसी कारण से गुरुशुद्धि पुरुष के विवाह में नहीं कही और शूद्रादिकों के व्रतबन्ध के अभाव से विवाह ही में गुरुशुद्धि और सूर्यशुद्धि दोनों कही ॥ ५ ॥

यहां आशङ्का यह होती है कि गोचर को मुख्य कैसे कहा तिस विषय में कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

अष्टवर्गफलमेवजातके-
नास्यकिंपरिणयेपिमुख्यता ॥
सत्यमुद्वहतजन्मशास्त्रयो-
रन्यथामुनिभिरेवसस्मरे ॥ ६ ॥

अन्वयः—जातके अष्टवर्गफलं एव (अस्ति) अस्य (अष्टवर्गस्य) परिणये अपि मुख्यता किं न स्यात् सत्यम्

(कथं) उद्वहनजन्मशास्त्रयोः अन्यथा मुनिभिः एव सस्मरे (स्मृतः) ॥ ६

भाषा—जातक ग्रन्थों में अष्टवर्ग फल को निश्चय से कहा है (तहां पर जो चन्द्र राशि फल को कहा है वही गोचर फल कहलाता यह संहिता ग्रन्थों में पठित है तिस वजह से) इस अष्टवर्ग फल का विवाह में मुख्यत क्यों न हो (स्पष्टाशय—यह है कि गोचरफल को एक चन्द्रराशि से कहा है और अष्टवर्ग फल को आठ राशियों से कहा है इसी वजह से अष्टवर्ग की अधिकता होने से विवाह में भी इस की मुख्यता कैसे न हो अर्थात् अवश्य होनी चाहिये इससे यह सिद्ध हुआ कि केवल अष्टवर्ग का आधा फल हुआ) ठीक है (जातक में अष्टवर्ग फल की मुख्यता को मानते हैं परन्तु विवाह में मुख्यता नहीं मानते क्योंकि) विवाह शास्त्र व जन्म शास्त्र में भेद मुनियों ने निश्चय से कहा है ॥ ६ ॥

इस विषय में उदाहरण दिखाते हैं ।

॥ रथोद्धता छन्दः ॥ श्लोक ॥

क्रूरमष्टममरिष्टमिष्टदं
सप्तमं शुभमशान्तिजन्मनि ॥

नेयमुद्वहनरीतिरित्यसा-
वत्रगोचरपथोरथोद्धतः ॥ ७ ॥

अन्वयः—जन्मनि अष्टमं क्रूरं अरिष्टं उशन्तिसप्तमं शुभं (ग्रहं) इष्टदं (उशन्ति) इयं उद्वहनरीतिः न (भवति) इति (हेतोः) अत्र असौगोचरपथः (गोचरमार्गः) रथोद्धतः (रथैरुद्धतः) ॥ ७ ॥

भाषा—जन्म काल में अष्टम स्थान में पापग्रह अशुभ कहा है और सप्तम स्थान में शुभ ग्रह शुभप्रद कहा है यह विवाह मार्ग रीति नहीं होती (क्योंकि जन्म काल में अष्टम क्रूर ग्रह अशुभ होते हैं और विवाह में शुभ होते हैं जन्मकाल में सप्तम शुभ ग्रह शुभ होते हैं और विवाह में अशुभ होते हैं इस वजह से विवाह शास्त्र और जातक शास्त्र में भेद हुआ) इस कारण इस विवाह में यह गोचर मार्ग रथों करके उद्धत है (अर्थात् यह गोचर मार्ग अतिघृष्ट है और चिक्कणमार्ग है और परम्परा गत स्फुटतर है रथोद्धत शब्द से रथोद्धत छन्द भी श्लोक का सूचित होता है ॥ ७ ॥

इति श्री काशिखण्डान्तर्गतभृगुक्षेत्रसमीपदेवडीहग्रामनिवासिश्री-
शिकुलवंशावतंसविविधशास्त्रपरमपण्डितश्रीलालबहादुर-
त्रिपाठिपुत्रज्योतिर्वित्पण्डितशिवदत्तत्रिपाठिविरचि-
तायां विवाहवृन्दावनसान्वयशिवकरीभाषाटीकायां
मासगोचराध्यायोदशमः
समाप्तः ॥ १० ॥

अथ योगाध्यायः ११

भाव फल कहके योगज कहते हैं ।

॥ शालिनी छन्दः ॥ श्लोकः ॥

चक्रस्यार्धेप्राचिपश्चात्क्रमेण
क्रूरात्क्रूरैश्चक्रमित्यामनन्ति ॥
अत्रोढायाः सुभ्रुवस्वैरिणीत्वे
भ्राम्यत्युच्चैश्चक्रवाच्चत्तवृत्तिः ॥ १ ॥

अन्वयः—चक्रस्य प्राचिः पश्चादर्द्धेक्रमेणक्रूरात्क्रूरैः कृत्वाचक्रं इति (योगं मुनयः) आमनन्ति अत्र (योगे) ऊढायाः सुभ्रुवः चित्तवृत्तिः स्वैरिणीत्वे (पौंश्चल्यविषये) चक्रवत् उच्चैः भ्राम्यति ॥ १ ॥

भाषा—चक्र के पूर्वार्द्ध और परार्द्ध में क्रम से पापग्रह और शुभ ग्रह होने से चक्रनाम (योग मु-

नियों ने) कहा है (स्पष्टाशय—यह है कि दशम भाव के भोग्यांश से लेकर चतुर्थ भाव के भुक्तांशपर्यंत चक्र का पूर्वार्द्ध कहलाता और चतुर्थ भाव के भोग्यांश से लेकर दशम भाव के भुक्तांशपर्यन्त चक्र का परार्द्ध कहलाता है चक्र के पूर्वार्द्ध में पापग्रह हों और परार्द्ध में शुभग्रह हों) इस योग में विवाहिता सुन्दर भौंहवाली स्त्री की चित्तवृत्ति पुंश्चलता में चक्र की तरह ऊंची होकर भ्रमण करती है "चतुर्थेस्वैरिणीप्रोक्ता:पञ्चमे बन्धकीस्मृता ॥" यह स्मृति में लिखा है अर्थात् चार पुरुष से रति करानेवाली स्त्री स्वैरिणी और पांच पुरुष से रति करानेवाली बन्धकी कही जाती है यह योग सब ग्रहों करके होता है) ॥

॥ श्लोकः ॥

तनुनिमीलनगैश्चशुभाशुभै-
र्ध्वजइतीहकृतोद्वहनावधूः ॥
सगुणलाभवतीभवतींगितैः
प्रियमनोयमनोन्मुखविभ्रमा ॥ २ ॥

अन्वयः—तनुनिमीलनगैः (क्रमेण) च शुभाशुभैः (अयं) ध्वज इति (योगः) इह (अस्मिन्योगे) कृतोद्वहना वधूः सगुणलाभवती भवति (कथम्भूता) इंगितैः (स्वचेष्टितैः) प्रियमनोयमनोन्मुखविभ्रमा ॥ २ ॥

भाषा—लग्न व अष्टम में क्रम से शुभग्रह और पापग्रह होने से ध्वज नाम योग होता है इस योग में विवाहिता स्त्री गुण सहित लाभवती होती है फिर कैसी होती है कि अपना हाव भाव कटाक्षादि करके स्वामी के मन को आकर्षण में सन्मुख विलास रखे (अर्थात् अपने प्रिय पति के मन को हमेशा शृङ्गार भूषणादि से प्रसन्न रखे ऐसी होती है) ॥ २ ॥

॥ श्लोकः ॥

अखिलकेन्द्रसखैः खलखेचरै-
र्भवतिवापिरिहार्पितपुंस्करा ॥
युवतिरुज्झितकान्तगृहागृहे
जनयितुः कुरुतेकुत्सितोत्सवान् ॥ ३ ॥

अन्वयः—अखिलकेन्द्रसखैः खलखेचरैः वापिःभवति इह (अस्मिन्योगे) अर्पितपुंस्करायुवतिः उज्झितकान्तगृहा (सती) जनयितुः गृहे कुत्सितोत्सवान् (कुरुते) ॥ ३ ॥

भाषा—सम्पूर्ण केन्द्रों में संपूर्ण पाप ग्रह होने से वापी योग होता है इस योग में विवाहिता स्त्री पति गृह को छोड़ कर पिता के घर में कुत्सित शब्द का उत्सव यानी उत्साह करे (अर्थात् पिता के घर में पौंश्चल्य विषय में आनन्द करे ॥ ३ ॥

॥ श्लोकः ॥

गगनतोयतपस्सुशुभैर्भृगु-
र्गदतिशंखमशंस्खलयत्यसौ ॥
धनयशोवयशोभितनुश्रियां
परिणयेनपयोरुहचक्षुषाम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—गगनतोयतपस्सुशुभैः (स्थितैः) शंखंभृगुः गदति असौ (योगः) अशं स्खलयति केनपरिणयेन कासां पयोरुहचक्षुषाम् (कथम्भूतानां) धनयशोवयशोभितनुश्रियां ॥ ४ ॥

भाषा—दशम, चतुर्थ, नवम इन स्थानों में शुभ ग्रहों के होने से शंख योग भृगु मुनि कहते हैं वह योग क्लेश को नाश करता है क्यों करके विवाह करने से किसका कमल नेत्रवाली स्त्री का वह कैसी स्त्री है धन यश और नीति करके शोभित है शरीर की कान्ति जिसकी अर्थात् जिस स्त्री के विवाह में यह शंख योग हो तो दुःख को नाश करके स्त्री की शोभा को बढ़ाता है ॥ ४ ॥

श्रीवत्स योग को कहते हैं ।

॥ वसन्ततिलकं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

एकादशेकुजरवीरविजः सपत्ने-

विक्तेविधुस्तपसिशेषनभश्चराश्चेत् ॥
श्रीवत्सएषसुखयत्यपिरूपरिक्तां
सौभाग्यभोगभरभृङ्गितरङ्गिताङ्गीम् ॥५॥

अन्वयः—एकादशे कुजरवी रविजः सपत्ने वित्ते विधुः तपसि शेषनभश्चराश्चेत् (स्युः तदा) श्रीवत्सः (नामयोगः स्यात) एषः (योगः) रूपरिक्तां अपि सुखयति (कथंभूतां) सौभाग्य भोगभरभृङ्गितरङ्गिताङ्गीम् ॥ ५ ॥

भाषा—एकादश में मङ्गल रवि हों शनैश्चर छठे में और द्वितीय में चन्द्रमा और नवम में शेष ग्रह जो हों तो श्रीवत्स नाम योग होता है यह योग रूपरहित स्त्री को भी सुख को प्राप्त कराता है कैसी वह स्त्री है कि सौभाग्य का जो भोग उसका जो भार उसकी जो रचना तिसकी जो लहर ऐसी श-रीरवाली है (अर्थात् सौभाग्य से उसके शरीर का तेज बढ़ित रहै) ॥ ५ ॥

कार्मुक योग के लक्षण कहते हैं ।

॥ शालिनी छन्दः ॥ श्लोकः ॥

सौम्यामूर्तौस्वांतराश्योरसौम्याः
कुर्युर्योगंकार्मुकंकन्यकास्मिन् ॥

हत्वाकान्तंकान्तवेषाविषाद्यै-
र्वेश्यारामंरंरमीतिस्वरत्या ॥ ६ ॥

अन्वयः—मूर्तौ सौम्याः स्वान्तराश्योः असौम्याः कार्मुकंयोगंकुर्युः अस्मिन् (योगे) कन्यका कान्तवेषा (सती) वेश्यारामंरंरमीति (कयाहेतुभूतया) स्वरत्या (किं कृत्वा) विषाद्यैः कान्तं हत्वा ॥ ६ ॥

भाषा—लग्न में संपूर्ण शुभ ग्रह होने से और द्वितीय द्वादश में सब पापग्रह होने से कार्मुक योग को कहते हैं इस योग में विवाहिता स्त्री कान्तवेषा (अर्थात् पुरुष रूप बन कर) वेश्या की तरह सुख से रमण करे (अर्थात् वेश्या के सदृश कार्य कर सुखी भोगी हो किससे) अपनी भोगकुशलता से (अर्थात् भोग क्रिया में चतुर होवे, क्योंकर) विष शस्त्र बन्धन आदि से स्वामी को मार करके ॥ ६ ॥

आनन्द योग कहते हैं।

॥ शालिनी छन्दः ॥ श्लोकः ॥

सूनौशुक्रः साङ्गिरागौरररश्मि-
र्दुश्चिक्येस्यादंगनाभ्युद्गमश्चेत् ॥
अनन्दोऽयंसुन्दरीसान्द्रसौख्या
तेनानन्दंवंशयोर्विस्तृणाति ॥ ७ ॥

अन्वयः—सूनौ शुक्रः दुश्चिक्येसांगिरागौररश्मिः अङ्गना-भ्युद्गमः चेत् (स्यात् तदा) अयं आनन्दः (नामयोगः भवेत्) तेन (योगेन) सुन्दरीसान्द्रसौख्या वंशयोः आनन्दं विस्तृ-णाति (विस्तारयति) ॥ ७ ॥

भाषा—पञ्चम में शुक्र तृतीय में बृहस्पति च-न्द्रमा दोनों हों तब स्त्री का विवाह यदि होवे तो आनन्द नाम योग होता है (अथवा यह भी अर्थ सिद्ध हो सकता है कि पञ्चम में शुक्र और तृतीय में बृहस्पति चन्द्रमा हों और कन्या लग्न हो तोभी आनन्द योग होता है तिस योग में विवाहिता स्त्री सघन सौख्य को और दोनों वंश अर्थात् पिता और स्वामी के वंश में आनन्द को बढ़ाती है ॥ ७॥

कुठार योग कहते हैं

॥ पुष्पिताग्रा छन्दः ॥ श्लोकः ॥

व्ययारिपुहिबुकेषुवक्रशुक्र-
द्युमणिसुतैः क्रमशः कुठारएषः ॥
इहविहरतिसंहतस्ववंशा-
विटपतलेपटलेखिताभिसारा ॥ ८ ॥

अन्वयः—व्ययरिपुहिबुकेषु वक्रशुक्रद्युमणिसुतैः क्रमशः (स्थितैः) एषः कुठारः (नामयोगः स्यात्) इह (अस्मिन्

कुठारे परिणीता) विटपतले (भण्डसमूहे) विहरति (कथ-म्भूता) संहृतस्ववंशा पटलेखिताभिसारा॥ ८॥

भाषा—द्वादश, षष्ठ, चतुर्थ स्थान में मङ्गल शुक्र शनि क्रम से स्थित हों तो यह कुठार योग होता है इस कुठार नाम योग में विवाहिता स्त्री भण्ड-समूह में विहार करे कैसी वह स्त्री है कि मार कर अपने वंश को वस्त्रांचल में लेखित है सार ऐसी हो अर्थात् मनुष्यों के साथ भोग विषय के लिये अपने वंश को मार कर स्वतन्त्र आनन्द को करती है अथवा अभिचार ऐसा भी पाठ है तिस पाठ से व्य-भिचारिणी वह होती है (वास्तव में दोनों पाठों का आशय एक ही है अर्थात् वह स्त्री परपुरुषगामिनी है) ॥ ८ ॥

कूर्म योग कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

रविकविरविजेन्दुभिः क्रमेण
व्ययधनषण्निधनेषु कूर्म एषः ॥
इह विहितकरग्रहाग्रहाणि-
भ्रमतिभुजिष्यतया परः शतानि ॥ ९ ॥

अन्वयः—रविकविरविजेन्दुभिः क्रमेणव्ययधनषट् निधनेषु (स्थितैः) एषः कूर्मः (नामयोगः स्यात्) इह (अस्मिन्योगे) विहितकरग्रहा परःशतानि गृहाणि भ्रमति (कयाहेतुभूतया) भुजिष्यतया ॥ ९ ॥

भाषा—सूर्य, शुक्र, शनि और चन्द्रमा क्रम से द्वादश द्वितीय षष्ठ अष्टम इन स्थानों में स्थित हों तो यह कूर्म नाम योग होता है इस योग में विवाहिता स्त्री पराये सैकड़ों गृह में भ्रमण करे किस कारण से भोजन के दोष करके (अर्थात् पेट के वास्ते घर २ में दासी कर्म किया करे) ॥ ९ ॥

अर्द्ध चन्द्र योग को कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

भवपरिभवविक्रमः क्रमेण-
द्युमणिमहीसुतसौरिभिः सनाथैः ॥
परिणमति दलेन्दुरिन्दुमुख्याः
कुलयुगलोद्धृतिधुर्यतां विधास्यन् ॥ १० ॥

अन्वयः—भवपरिभवविक्रमैः द्युमणिमहीसुतसौरिभिः क्रमेण सनाथैः (स्थितैः) दलेन्दुः (नामयोगः) परिणमति (किं करिष्यन्) इन्दुमुख्याः कुलयुगलोद्धृतिः धुर्यतां विधास्यन् ॥ १० ॥

भाषा—एकादश, षष्ठ, तृतीय स्थानों में सूर्य

मङ्गल और शनि यथा क्रम से सहित पति के स्थित होने से यहाँ चन्द्र नाम योग प्राप्त करते हैं क्या करते चन्द्रमुखी स्त्री कुल दोनों के उद्धरण की धुर्यता को करते (स्पष्टाशय—यह है कि पूर्वोक्त स्थानों में सहित स्वामी के उक्त ग्रह होने से अर्द्धचन्द्र नाम योग होता है उसमें विवाहिता स्त्री पिता कुल और स्वामी कुल दोनों को बढ़ाती है जैसे रथों में लगी हुई धूरा दोनों चक्रों को आगे को बढ़ाती है ऐसे वह स्त्री दोनों कुलों को बढ़ाती है ॥ १० ॥

मुशल योग को कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

व्ययानिधनतनूषुमंदचन्द्रा-
रुणांकिरणैर्मुशलं जगुर्मुनीन्द्राः ॥
इहवृष्णिकुलान्तकेकुमारी
कुलमारीनचकापिकार्यसिद्धिः ॥११॥

अन्वयः—व्ययनिधनतनूषुमंदचन्द्रारुणकिरणैः (यथाक्रमं स्थितैः कृत्वा) मुशलं (नामयोगं) मुनीन्द्राः जगुः इहवृष्णिकुलान्तके (योगे) कुमारीकुलमारी (भवति) नचकापिकार्यसिद्धिर्भवति ॥ ११ ॥

भाषा—द्वादश, अष्टम और लग्न इन स्थानों में

शनि चन्द्र और सूर्य यथाक्रम स्थित होने से मुशल नामक योग मुनियों ने कहा है इस यादवकुल के नाश करनेवाले (१) मुशल योग में स्त्री कुलनाशिनी

---

(१) एक समय विश्वामित्रकण्व दुर्वासा अङ्गिरा वशिष्ठादि द्वारका के पास पिंडारक क्षेत्र में हरि के ध्यान लगाये बैठे हुए उसी समय सांबादि नाम यादवकुमार शिकार खेलने के वास्ते थे पिंडारक क्षेत्र में आये तो वहां सब मुनि लोगों को तपस्या करते देखा वह सब यादवों ने मुनि लोगों को देख हँसी कियो कि सांब जो बहुत सुन्दर थे उनको स्त्री का रूप बना कर और उनके उदर पर कपड़ा बांध ऊंचा कर मुनि लोगों के पास जाकर माथा नवा हाथ जोड़ कर मन में छल लेकर और ऊपर मीठे वचन से पूछा कि हे मुनियों यह स्त्री गर्भवती है वह अपने मुखसे लाज के कारण नहीं पूछती है तिससे हमही लोग पूछते हैं कि इसके उदर में पुत्र अथवा कन्या हो उसको आप बतलाइये क्योंकि आप त्रिकालज्ञाता है। कुमारों की ऐसी हँसी लिये हुए वाणी को ऋषिगण जान गये क्योंकि वे त्रिकालज्ञ तो कहलाते ही थे ऐसा छल जान कर कोप से मुनियों ने शाप दिया कि रे मन्दबुधि कुमारों इसके पेट में एक मुशल है जिसके पैदा होने से तुम्हारे कुल का नाश होगा। मुनि का ऐसा शाप सुन डरते कांपते वहां से थोड़ी दूर आकर सांब के उदर छोड़ते भये तिसमें एक बहुत कठोर मुशल निकला उस मुशल को लेकर डर के मारे उग्रसेन महाराज के पास गये अपने किये कर्म को सुनाया जिसको सुनकर

होती है, कुछ कार्यसाधिनी नहीं होती है अर्थात् केवल कुलनाशिनी वह स्त्री होती है ॥ ११ ॥

अब गज योग कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

तनुनवभवगैः क्रमेणयोगो-
बुधविवुधार्चितपंगुभिर्गजः स्यात् ॥
इहयुश्तिरहंकृताकृतार्थान्-
वितरातिदैवतदैवतत्परावा ॥ १२ ॥

सब यादव डर गये फिर कुछ सोंच विचार कर महाराज उग्रसेन ने उसका चूर्ण करवा कर समुद्र में फेंकवा दिया लेकिन उस मुशल का बीच का भाग जो रेतने से छूट गया था उसको एक मछली लील गई उस मछली को एक केवट ने अपने जाल में कहीं फंसा लिया फिर उसको फार मास खाया और उदर में जो लोहा था उसके अपने वाण के अग्रभाग में लगा लिया और यही यादवों के नाश का मुख्य कारण हुआ। जिस वक्त में यादवों ने प्रश्न किया उस वक्त में मुशल योग था और उसी मुशल योग का फल मुशल का पैदा होना मिला इससे यह भी अर्थ स्पष्ट भया कि यह योग जातक प्रश्न इत्यादि सब में अपने फल को दे सकता है और सब में इन योगों को दैवज्ञ लोगों को अवश्य सोंचना विचारना चाहिये इसका पूरा वृत्तान्त भागवत में लिखा है, एकादश स्कन्ध में है ॥

अन्वयः—तनुनवभवगैः क्रमेण बुधविबुधार्चितपंगुभिः (कृत्वा) गजः योगः स्यात् इह युवतिः अहंकृता कृतार्थान् वितरति (ददाति) वा दैवतदैवततत्परा (स्यात्) ॥ १२ ॥

भाषा—लग्न नवम, एकादश इन स्थानों में क्रम से बुध बृहस्पति और शनि के स्थित होने से गज नाम योग होता है इस योग में स्त्री अहङ्कार से उत्पन्न अर्थ को देती है अथवा देवार्चन में और भाग्य में रत रहती है अर्थात् इस योग में विवाहिता स्त्री देवताओं के अर्चन में स्वामी आदिक के संयोग में तत्पर रहै यानी भाग्यवती हो ॥ १२ ॥

इति श्री काशिखण्डान्तर्गतभृगुक्षेत्रसमीपदेवडीहग्रामनिवासिशाण्डिल्यवंशावतंसविविधशास्त्रपरमपण्डितश्रीलालबहादुरत्रिपाठिपुत्रज्योतिर्वित्पण्डितशिवदत्तत्रिपाठिविरचितायां विवाहवृन्दावनसान्वयशिवकरीभाषाटीकायां षष्ठयोगाध्यायएकादशः समाप्तः ॥ ११ ॥



अथ ग्रहाणांभाव-कुण्डलिकाध्यायः १२

इसमें पहले अरि पराक्रम लाभ इत्यादि का सामान्य से फल कहके अब हरएक स्थान का विशेष से फल कहते हैं ।

॥ शिखरिणी छन्दः ॥ श्लोकः ॥

चिरञ्जीवान् जीवः कविरविरलानंगसुभगां
शशांकोर्विपुत्रौयमयुवतिपार्श्वप्रणयिनीम् ॥
बुधोभर्तुर्भक्तांमृगदृशमशीलां शनिरपि-
त्रयीमूर्तिर्मूर्तौसृजातिशिखिशस्त्रादिनिधनम् ॥

अन्वयः—मूर्तौजीवः चिरञ्जीवाम् मृगदृशं सृजति कविः अविरलानंगसुभगां (सृजति) शशांकोर्वीपुत्रौयमयुवतिपार्श्वप्रणयिनीम् (सृजतः) बुधः भर्तुः भक्ताम् (सृजति) शनिः अपि अशीलां (सृजति) त्रयीमूर्तिर्मूर्तौशिखिशस्त्रादिनिधनम् (सृजति) ॥ १ ॥

भाषा—(विवाह) लग्न में गुरु स्त्री को चिरजीवी करते हैं (अर्थात् वह स्त्री बहुत दिन जीवे) शुक्र सघन कामदेव से सुभागा करते है (अर्थात्

वह स्त्री सौभाग्यवती होती है) चन्द्रमा मंगल यमराज के स्त्री के समीप प्रीति रखनेवाली स्त्री करते है (अर्थात् वह स्त्री यमलोक की रहनी हो) बुध स्वामी की भक्ता स्त्री को करते हैं शनैश्चर निश्चय से दुष्टा स्त्री करते हैं सूर्य अग्निशस्त्र से इत्यादि निधन को करते हैं (यहां पर विवाह समय के लग्नास्त होने से जो फल ग्रह देते हैं सो जन्म प्रश्नादि में भी देते हैं) ॥ १ ॥

अब धन भाव को कहते हैं।

॥ पृथ्वी छन्दः ॥ श्लोकः ॥

नितान्तधननीधनेसितसितांशुजीवेन्दुजा
रुजादहनदस्युभिर्विधुरितान्धरानन्दनः ॥
सुतेष्वपिमितंपचांमलिनमूर्तिमर्कात्मजः
स्त्रियंसहजदुर्भगांजनयतिद्युतीनांपतिः ॥२॥

अन्वयः—धनस्थिताः सितसितांशुजीवेन्दुजाः नितान्तम् धननींस्त्रियम् (जनयन्ति) धरानन्दनः (भौमः) रुजादहनदस्युभिः विधुरिताम् (अर्कात्मजः) सुतेषु अपि मितंपचांमलिनमूर्तिं (जनयति) द्युतीनांपतिः (सूर्य्य): सहजदुर्भगां (जनयति) ॥ २ ॥

भाषा—द्वितीय भाव में बैठे हुए शुक्र, चन्द्रमा,

गुरु और बुध अत्यन्त करके धनवाली स्त्री करते हैं मंगल रोग, अग्नि और चोर (अथवा सर्पादि) से अतिरहिता स्त्री को जनाते हैं शनैश्चर पुत्र के विषय में निश्चय से कृपणाता और मलीन शरीरवाली स्त्री को जनाते हैं सूर्य स्वाभाविक दुष्ट शीलवाली (अथवा भ्रातृरहित) स्त्री को जनाते है ॥ २ ॥

अब तृतीय भाव को कहते हैं ।

॥ द्रुतविलम्बितम् छन्दः ॥ श्लोक ॥

इनशनीसहजेसधनांवधूं
तनुधनींसचिवः शुभगांशशी ॥
सुकृतिनींकुरुतः कुजसोमजौ
नयतिदेवरिदेवरिपूपनीः ॥ ३ ॥

अन्वयः—सहजेइनशनीसधनां वधूं कुरुतः सचिवः तनुधनीं (करोति) शशी शुभगां (करोति) कुजसोमजौसुकृतिनीं कुरुतः) देवरिपूपनीः (शुक्रः) देवरि नयति ॥ ३ ॥

भाषा—तृतीय भाव में सूर्य शनैश्चर धन सहित स्त्री को करते है बृहस्पति क्षीण स्त्री को धनवाली करते हैं चन्द्रमा स्त्री को भाग्यवती करते है मंगल

और बुध मुक्रत करनेवाली करते है (अर्थात् पूज्य करनेवाली हो) शुक्र देवर में प्रीतिवाली (अर्थात् देवरगामिनी) को बनाते है ॥ ३ ॥

अब चतुर्थ भाव को कहते हैं ।

॥ प्रहर्षिणी छन्दः ॥ श्लोकः ॥

दारिद्र्यंरविरवनीसुतोवरांग-
व्याघातंगुरुभृगुजेन्दुजाः प्रभुत्वम् ॥
बाल्येऽब्जप्रियवियुतिंशनिस्तनांभः
शून्यत्वंसृजतिसुखेसुवासिनीनाम् ॥४॥

अन्वयः—सुखे रविः दारिद्र्यम् सृजति अवनिसुतः (भौमः) वरांगव्याघातम् (सृजति) गुरुभृगुजेन्दुजाः प्रभुत्वं (सृजन्ति) अब्जः बाल्ये प्रियवियुतिम् (सृजति) शनिः स्तनांभःशून्यत्वम् (सृजति कासाम्) सुवासिनीनाम् ॥ ४ ॥

भाषा—चतुर्थ भाव में सूर्य दारिद्रता को करते है और मंगल वराङ्गव्याघात (अर्थात् सिर घात) को करते हैं गुरु, शुक्र और बुध स्वामित्व करते हैं चन्द्रमा बाल्यावस्था में स्वामीरहिता को करते हैं और शनी स्तनांभ के शून्यत्व (अर्थात् दूध रहित स्तन) को करते हैं (किन के) प्रौढ़ा स्त्री के ॥ ४ ॥

अब पंचम भाव को कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

सत्पुत्रामसुरसुरेज्यसोमपुत्राः
पुत्रारिंरविरसुतप्रजांद्विजेन्द्रः ॥
शोकार्तामवनिसुतः सुतस्थऐनिः
सन्ततिसततरुजंसृजेत्कुमारीम् ॥५॥

अन्वयः—असुरसुरेज्यसोमपुत्रासुतस्थाकुमारीं सत्पुत्रां (सृजेयुः कुर्युः) रविः पुत्रारिम् (सृजेत्) द्विजेन्द्रः (चन्द्रः) असुतप्रजां (सृजेत्) अवनिसुतः (भौमः) शोकार्त्तां (सृजेत्) ऐनिः सन्ततिसततरुजं (सृजेत्) ॥ ५ ॥

भाषा—शुक्र, गुरु और बुध ये पञ्चम में हों तो स्त्री सुन्दर पुत्रों को (अर्थात् सुन्दर पुत्रों को उत्पादन करनेवाली) करते हैं सूर्य पुत्रारि (अर्थात्) पुत्रों की शत्रु होनेवाली करते हैं चन्द्र पुत्र से भिन्न प्रजा कन्या को करते हैं मंगल शोक से पीड़ित स्त्री को करते हैं और शनैश्चर सन्तान विषय में हमेशः रोगवाली स्त्री को करते (अर्थात् सन्तान रहित स्त्री होती है) ॥ ५ ॥

अब षष्ठ भाव को कहते हैं ।

॥ पृथ्वी छन्दः ॥ श्लोकः ॥

विधुर्निधनमिन्दुजः परभयंजयंभानुमा-
न्कुजः कुशलमर्कभूर्विगतवैरितांवैरिगः ॥
रिपुत्वमुशनासहृंसचरेणचारुभ्रुवां
व्यनक्तिवचसांपतिःपतिमजातशत्रुश्रुतिम् ॥

अन्वयः—वैरिगः विधुः चारुभ्रुवांनिधनं व्यनक्ति इन्दुजः परभयं (व्यनक्ति) भानुमान् जयं कुजः कुशलं अर्कभूः (शनिः) विगतवैरतां (व्यनक्ति) उशनासहचरेणसह रिपुत्वम् (व्यनक्ति) वचसांपतिः (गुरुः) पतिं अजातशत्रुश्रुतिं (व्यनक्ति) ॥ ६ ॥

भाषा—षष्टभाव में चन्द्रमा स्त्री के मरण को देते हैं और बुध शत्रु भय को देते हैं और सूर्य जय को देते है मंगल कुशल को देते हैं शनैश्चर शत्रु रहित करते है शुक्र भाई से शत्रुत्व करते हैं बृहस्पति स्वामी को अजातशत्रुश्रुति (अर्थात् पति को शत्रु सुनने में न आवे ऐसी स्त्री) को प्रकट करते हैं (अर्थात् देते हैं) ॥ ६ ॥

अब सप्तम भाव की स्थिति के फल कहते हैं ।

॥ शिख० छन्दः ॥ श्लोकः ॥

बुधोबन्ध्यामिन्दुः परिचितसपत्नीपरिभवा
गलद्गर्भांपंगुः परनररतांदानवगुरुः ॥
अवीरामस्तेर्कोगुरुरमरसेवाव्यसनिनीं
विवाहेमाहेयस्त्रियमतिरजस्कांजनयति ॥७॥

अन्वयः—विवाहे अस्ते बुधः स्त्रियम् बन्ध्यां जनयति इन्दुः परिचितसपत्नीपरिभवां (जनयति) पंगुः गलद्गर्भां (जनयति) दानवगुरुः परनररतां (जनयति) अर्कः अवीराम् (जनयति) गुरुः अमरसेवाव्यसनिनीं (जनयति) माहेयः (भौमः) अतिरजस्कां (जनयति) ॥ ७ ॥

भाषा—विवाह काल में सप्तम भाव में बुध स्त्री को बन्ध्या (अर्थात् बन्ध्या स्त्री) बनाते हैं चन्द्रमा परिचितसपत्नीपरिभववाली स्त्री (अर्थात् स्वामी की द्वितीया स्त्री से उत्पन्न परिवारों के सहितवाली स्त्री) को करते हैं शनैश्चर गलद्गर्भा (अर्थात् गर्भ पतन होनेवाली स्त्री) को करते हैं शुक्र परनररता (अर्थात् परपुरुषगामिनी) को करते हैं सूर्य पति रहिता कर देते हैं बृहस्पति देवर्चन में आसक्ति-

वाली स्त्री को प्रकट करते हैं मङ्गल अधिक रक्त (अर्थात् प्रदर नाम से रोग विशेष है वह रोग) वाली कर देते हैं ॥ ७ ॥

अब अष्टम भाव में ग्रहस्थिति के फल को कहते हैं।

॥ मालिनी छन्दः ॥ श्लोकः ॥

सितसितकिरणेज्यामृत्यवेमृत्युवेश्म-
न्यनवरतसुखायुः सम्पदेसूर्यसौरी ॥
भवतिपतिशरीरद्रोहकृद्रौहिणेयो
द्रुहिणगृहमुखीनांपक्ष्मणक्षोणिजन्मा ॥८॥

अन्वयः—मृत्युवेश्मनि सितसितकिरणेज्याद्रुहिणगृह-मुखीनां (स्त्रीणां) मृत्यवे (भवन्ति) सूर्यसौरी अनवरत-सुखायुःसम्पदे (भवतः) रौहिणेयः (बुधः) पतिशरीरद्रोह-कृत्भवतिक्षोणिजन्मायक्ष्मणे (भवेत्) ॥ ८ ॥

भाषा—अष्टम गृह में शुक्र चन्द्र बृहस्पति क-मलमुखी स्त्री के मरण के लिये होते हैं सूर्य शनै-श्चर परिपूर्ण सुख आयुः सम्पत्ति के कर्ता होते हैं बुध स्वामीके शरीर के द्रोहकारक होते हैं मंगल रोग के लिये होते हैं ॥ ८ ॥

अब नवम भाव में ग्रहस्थिति फल को
कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

शशिसुतगुरुशुक्राः सान्द्रसौभाग्यलीलां
सरलहसितकान्तस्वान्तकेलिंकुमारीम् ॥
रविरविसुतवक्राः कैतवाक्रान्तशीलां
तपसितुहिनरश्मिः स्त्रीसवित्रींकरोति ॥९॥

अन्वयः—तपसि शशिसुतगुरुशुक्राः कुमारींसान्द्रसौभाग्यलीलां सरलहसितकान्तस्वान्तकेलिं (कुर्वन्ति) रविरविसुतवक्राः कैतवाक्रान्तलीलां (कुर्वन्ति) तुहिनरश्मिः स्त्रीसवित्रींकरोति ॥ ९ ॥

भाषा— नवम भाव में बुध, गुरु और शुक्र कुमारी को सघन सौभाग्य की लीला सरल हसित स्वामी के समीप केलिक्रीड़ा करनेवाली करते हैं और रवि, शनि और मंगल कपट से युक्त शीलवाली करते हैं और चन्द्रमा कन्या उत्पन्न करनेवीली स्त्री को करते हैं ॥ ९ ॥

अब दशम भाव में ग्रहस्थिति फल को
कहते हैं ।

॥ मालिनी छन्दः ॥ श्लोकः ॥

शनिरनियमशौचांकन्यकामन्यकार्य्ये

विधुरतिविधुराङ्गीं शाकिनीं व्योम्नि वक्रः ॥
रचयति रविरुग्रां कोविदः कार्मणज्ञा-
मविकृतसुकृतश्रीमालिनीमार्यशुक्रौ ॥ १०

अन्वयः—व्योम्नि शनिः कन्यकां अनियमशौचां (रचयति) विधुः अन्यकार्यैः अतिविधुराङ्गीं (रचयति) वक्रः शाकिनीं (रचयति) रविः उग्रां (अशीलां रचयति) कोविदः कार्मणज्ञां (रचयति) शुक्रौ अविकृतसुकृतश्रीमालिनीं (रचयतः) ॥ १० ॥

भाषा—दशम भाव में शनैश्चर स्त्री को अनियम शौच (अर्थात् पवित्रता से रहित) करते हैं और चन्द्रमा दूसरे के कार्य कर अत्यन्त विकल शरीरवाली करते हैं और मङ्गल शाकिनी (अर्थात् मांस भक्षण करनेवाली) करते हैं सूर्य शीलरहित करते बुध क्षुद्र कर्म करनेवाली करते हैं गुरु शुक्र विकाररहित (अर्थात् पूर्ण) पुण्य और लक्ष्मी से शोभित (स्त्री को करते हैं। यहां पर मालिनी शब्द से मालिनी छन्द भी जानना) ॥ १० ॥

अब एकादश भाव में ग्रहस्थिति के फल कहते हैं।

॥ वसन्ततिलकं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

एकादशे दशशतांशुमुखाः सुखानि

रत्नावरद्रविणभोगभरोन्मुखानि ॥
पाणिग्रहेददतिदीर्घदृशांग्रहेन्द्राः
सर्वेपिसर्वभवनेष्वबलानकिंचित्॥११॥

अन्वयः—दीर्घदृशां पाणिग्रहेएकादशेदशशतांशुमुखा ग्रहेन्द्राः रत्नाम्बरद्रविणभोगभरोन्मुखानिसुखानिददतिसर्वे-अपि (ग्रहाः) अबला सर्वभवनेषु किंचित् (शुभफलं) न (दद्युः) ॥ ११ ॥

भाषा—दीर्घ नेत्रवाली के विवाह में एकादश भाव में सूर्यादि ग्रहों के होने से रत्न, वस्त्र, द्रव्य, इन सबों को भोग को जो भार से उत्पन्न सुख इनको देते हैं सब ग्रह भी निर्बल हों तो लग्नादि सब भाव में तो कुछ भी शुभ फल नहीं देते हैं (अर्थात् यह सब फल बलयुक्त ग्रहवालों का कहा गया है) ॥ ११ ॥

अब द्वादश भाव में ग्रहस्थिति फल को कहते हैं ।

॥ रुचिर छन्दः ॥ श्लोकः ॥

व्यये शुभाः सद्व्यकर्षितांशानिः
सुरारुचिंरचयतिदुर्विधांविधुश्च ॥

अदक्षिणावयवरुजं कुजो रवि-
र्विरूपयत्यतिरुचिरामपिस्त्रियम् ॥१२॥

अन्वयः—व्यये शुभाः स्त्रियम् सद्व्ययकर्षितां (रचयति) शनिः सुरारुचिं (रचयति) विधुश्चदुर्विधां (रचयति) कुजः अदक्षिणावयवरुजं (रचयति) रविः अतिरुचिरां अपि (स्त्रियम्) विरूपयति ॥ १२ ॥

भाषा—द्वादश भाव में सम्पूर्ण शुभ ग्रह स्त्री को सन्मार्ग में खर्च करने से कृषता को प्राप्त होने वाली करते हैं और शनि मद्य से प्रीति रखनेवाली को करते हैं चन्द्रमा दुष्ट कर्म को करनेवाली करते हैं मङ्गल वामांग में रोगवाली करते हैं और सूर्य अति सुन्दरी स्त्री को रूपरहिता कर देते हैं। (रुचिर शब्द से रुचिर छन्द भी जानना) ॥ १२ ॥

अब इन सब भावों के फलादि की प्रशंसा कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

इतिमुनिजनमतमतनुवितर्कं
प्रतिगृहचरखेचरोद्यदुदर्कम् ॥

परिविगणय्य विशेषमशेष-
फलमिदमशेषमनुज्झितरेखम् ॥१३॥

अन्वयः—इति (इदं लग्नादि भावस्थितग्रहाणां) फलं अशेषं अनुज्झितरेखम् (कथम्भूतं) मुनिजनमतं अतनुवितर्कं (पुनः कथम्भूतं) विशेषं प्रतिग्रहचरखेचरोद्यदुदर्कं (किं कृत्वा) अशेषं परिविगणय्य ॥ १३ ॥

भाषा—यह (लग्नादि भाव स्थित ग्रहों के) फल को संपूर्ण अनुज्भित रेख होता है अर्थात् यथावत् वह कैसा है) मुनिजनों के विस्तार वितर्क (अर्थात् ग्रह बलादि विचार वश से वितर्क) है (फिर कैसा है) हरएक ग्रह में चलनेवाले ग्रह से उत्पन्न उदर्क (यानी उत्तर कालीन शुभाशुभफल जिसमें वैसा क्या करके) संपूर्ण पूर्वोक्त विचार करके ॥१३॥

इति श्रीकाशिखण्डान्तर्गतदेवडीहग्रामनिवासिशाण्डिल्यवंशावतंसविविधशास्त्रपारङ्गतपण्डितश्रीलालबहादुरत्रिपाठिपुत्र-ज्योतिर्वित्पण्डितशिवदत्तत्रिपाठिविरचितायां विवाहवृन्दावनसान्वयशिवकरीभाषाटीकायां ग्रहाणांभावकुण्डलिकाध्यायः द्वादशः समाप्तः ॥ १२ ॥



अथ ग्रहयोगादि-बलाबलाध्यायः १३

अब ग्रहयोगादिबलाबलाध्याय को कहते हैं उसमें भावफल उपसंहारादि को कहते हैं।

॥ शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

षट्त्र्यायेष्वशुभाः शुभायनिधनंद्यूनान्त्य-
वर्ज्यंपरे त्र्यायार्थेषुशशीमृतौशनिरवीभंगा-
यतत्रापरे ॥ क्रूरद्यूनवृतान्वितेशशितनू
अस्तेसितज्ञौविधुर्लग्नेसोमसिताधिपाद्विषि
सितः सेन्दुर्विनष्टांशपः ॥ १ ॥

अन्वयः—षट्त्रायेषु अशुभाः शुभाय (भवन्ति) निध-नद्यूनान्त्यवर्जंपरे (सौम्यग्रहाशुभाय भवन्ति) शशीत्र्या-यार्थेषु (शुभायभवेत्) मृतौशनिरवी (शुभायभवतः) तत्र अपरेभंगाय (भवन्ति) शशितनूक्रूरद्यूनवृतान्विते (भंगाय भवतः) अस्तेसितज्ञौ (भंगायभवतः) लग्नेविधुः (भंगाय) द्विषिसोमसिताधिपाः (भंगाय स्युः) सेन्दुसितः (भंगाय) अंशपः विनष्टः (भंगाय स्यात्) ॥ १ ॥

भाषा—६ । ३ । ११ इन स्थानों में पापग्रह शुभ के लिये होते हैं ८ । ७ । १२ इन स्थानों को

छोड़ कर और स्थानों में शुभग्रह शुभ के लिये होते हैं चन्द्रमा ३। ११। २ इन स्थानों में शुभ के लिये होते हैं अष्टम में शनि रवि शुभ के लिये होते हैं अशुभ के लिये नहीं (यहां पर सूर्य के उपलक्षण से राहु भी अष्टम में शुभ होते हैं राहु सरूप से केतु को भी जानना) इस अष्टम में अपर (चन्द्र, भौम, बुध, गुरु और शुक्र) ये सब भंग के (अर्थात् लग्न के भंगकर्ता होते हैं और भी लग्न के भंग को कहते है) चन्द्रमा लग्न पापग्रह द्यून वृत्तान्वित होने से भङ्ग के लिये होते हैं (स्पष्टाशय—यह है कि चन्द्रमा से या लग्न से सप्तम स्थान पापयुक्त हो अथवा चन्द्रमा या लग्न पापग्रह से युक्त हो तो लग्न के भंगकर्ता होते हैं) लग्न से या चन्द्रमा से सप्तम में शुक्र बुध हों तो भंग के लिये होते हैं लग्न में चन्द्रमा शुक्र लग्नांश दृष्काण का स्वामी भंग के वास्ते होते हैं (यह षष्ट स्थान लग्न से लेना चन्द्रमा से नहीं क्योंकि चन्द्र को तो पहले ही ग्रहण कर चुका है) शुक्रयुक्त चन्द्रमा भंग के लिये होते है नवांश पति अस्त गत होने से भंग के लिये होते हैं ॥ १ ॥

अब सप्तम दशम स्थान में चन्द्रमा के विशेष को कहते हैं ।

॥ प्रमाणिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

अतुर्यकायकेन्द्रगः सुहृत्स्वसौम्यवर्गयुक् ॥
सुहृच्छुभेक्षितः शुभः शशीमयूखमांसलः॥२॥

अन्वयः—अतुर्यकायकेन्द्रगः शशीशुभः (स्यात् कथम्भूतः) सुहृत्स्वसौम्यवर्गयुक् सुहृत्शुभेक्षतः मयूखमांसलः ॥ २ ॥

भाषा—छोड़ कर चतुर्थ लग्न को केन्द्र (यानी सप्तम दशम) में चन्द्रमा शुभ होते हैं (कैसे वह चन्द्रमा हैं कि) मित्र के और अपने भी सौम्य ग्रह के वर्ग में युक्त मित्र मे शुभग्रह से ईक्षित में और रश्मि करके पुष्ट है ऐसे चन्द्रमा सप्तम दशम भी शुभ होते है (१) ॥ २ ॥

---

(१) यहां पर ऐसा भी पाठ है कि "अकार्यकोण केन्द्र" अर्थात् चतुर्थ, सप्तम, दशम, नवम और पञ्चम इन स्थानों में शुभ हैं इसमें शौनक जो का वचन है । "त्रिकोणसप्तमाम् वरव्ययोपगोविलग्नतो । हिमद्युतिः शुभर्क्षगः शुभेक्षतश्चशोभनः ॥" इस श्लोक का अर्थ स्पष्ट है इन्होंने द्वादश स्थान में भी चन्द्रमा को ग्रहण किया इसको नारद जी ने महा दोष में कहा है इस कारण ग्रन्थकर्ता ने इसको त्याग किया ॥

अब शुभ योग को कहते हैं।

॥ मालिनी छन्दः ॥ श्लोकः ॥

शशितनयसिताभ्यांनन्दभद्रावुभाभ्यां
जयइतितनुयातेजीवइत्येषजीवे ॥
असुरसुरगुरुभ्यांस्थावरोइज्यशुक्रै-
र्विजयइतिविशुक्रंतंचजीमूतमाहुः ॥ ३ ॥

अन्वयः—शशितनयसिताभ्यां (तनुगताभ्यां) नन्द-भद्रौ (भवतः) उभाभ्यां जय इति (योगः स्यात्) जीवेतनुयाते एषः जीवइति (योगः) असुरसुरगुरुभ्यां (तनुगताभ्यां) स्थावरः (इति योगः) इज्यशुक्रैः (तनुगतैः) विजयइति (योगः स्यात्)तंचविशुक्रं जीमूतं आहुः ॥ ३ ॥

भाषा—बुध शुक्र लग्न में होने से नन्द भद्र (अर्थात् बुध लग्न में हो तो नन्द, शुक्र हो तो भद्र योग) होता है और बुध शुक्र दोनों के लग्न गत होने से जय नाम योग होता है बृहस्पति के लग्न में होने से जीव नाम योग होता शुक्र गुरु लग्नगत हों तो स्थावर नाम योग होता बुध, शुक्र, गुरु के लग्नगत होने से विजय नाम योग होता है वह विजय योग शुक्रवर्जित बुध गुरु के लग्नगत होने से जीमूत नाम योग को मुनियों ने कहा है ॥ ३ ॥

अब इन सब योगों के फल को कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

इतिशुभफलयोगाःसप्त सप्तर्षिमुख्यै-
र्मुनिभिरभिहितास्तेजन्मयात्रास्वपिस्युः ॥
भजतियुवतिरेभिर्भूप सीमन्तिनीत्वं
ग्रहयुतिबलयोगादुत्तराधर्यमस्मिन् ॥४॥

अन्वयः—इति सप्तशुभफलयोगाः सप्तर्षिमुख्यैः मुनिभिः अभिहिताः ते (योगाः) जन्मयात्रासु अपि स्युः एभिः (योगैः) युवतिः भूपसीमन्तिनीत्वं भजति अस्मिन् (शुभफले) ग्रहयुतिबलयोगात् उत्तराधर्यं (स्यात्) ॥ ४ ॥

भाषा—यह सात शुभ फल योग सप्तऋषि आदि मुनियों ने कहा है यह सब योग जन्म में और यात्रा में भी होते हैं (केवल विवाह हो में नहीं किन्तु जन्म काल में यात्रा काल में शुभ फल होता है वह कौन शुभ फल है उसको कहते हैं) इन योगों करके (विवाहिता) स्त्री राजपत्नी होती है यह शुभ फल ग्रह युति बल योग से उत्तराधर्य (यानी योग कारक ग्रह के बल वश से शुभ फल की अधिकता और न्यूनता) होता है ॥ ४ ॥

अब शुभ योग को कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

दिनकररुधिराभ्यांव्यालपातालवक्रौ
क्षयइतिरविपुत्रेसैंहिकेयेतमस्कम् ॥
तनुगृहयुजिकेतावन्तकस्तेषुशोक-
व्यसननिधनताभिस्तप्यतेपङ्कजाक्षी ॥५॥

अन्वयः—दिनकररुधिराभ्यां (लग्नगताभ्यां क्रमेण) व्यालपातालवक्रौ (योगौ स्तः) रविपुत्रेतनुगृहयुजिक्षय इति (योगः) सैंहिकेये तनुगृहयुजितमस्कं (इति योगः) केतौ (तनुगृहयुजि) अन्तकः (इति योगः) तेषु (योगेषु) पंकजाक्षीशोकव्यसननिधनताभिः तप्यते ॥ ५ ॥

भाषा—सूर्य मङ्गल क्रम से लग्नगत हों तो व्याल पातालवक्र योग होता है (अर्थात् सूर्य से व्याल मङ्गल से पातालवक्र) और शनैश्चर लग्न में हो तो क्षय नाम योग होता है राहु लग्न में हो तो तमस्क नाम योग होता है और लग्न में केतु हो तो अन्तक नाम योग होता है इन योगों में स्त्री शोक व्यसन विधनता करके पीड़ित हो ॥ ५ ॥

अब दूसरा दुष्ट योग कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

तनुतुहिनमरीच्योरङ्गनाखेटदृष्टौ
चरगृहगतयोःस्याकान्तयुग्मंकुमार्याः ॥
अविदिशिवलिनश्चेद्यायिनोयुग्मइन्दा-
वशुभदृशमुपेतेकन्यकात्वन्यकाम्या ॥६॥

अन्वयः—तनुतुहिनमरीच्योः चरगृहगतयोः अङ्गनाखेटदृष्टौ (सत्यां) चेत् यायिनः (ग्रहाः) अविदिशि (स्थिताः) बलिनः (स्युः) कुमार्याः कान्तयुग्मं (स्यात्) इन्दौ युग्मे अशुभदृश्यं उपेते तदा कन्यका तु अन्यकाम्या (स्यात्) ॥

भाषा—लग्न व चन्द्रमा चर राशि में हो और स्त्री ग्रह (शुक्र) देखता हो पापग्रह अविदिशा में स्थित होने से बली होता है तब स्त्री दूसरा स्वामी करती है चन्द्रमा सम राशि में हो तो पापग्रह से दृष्ट हो तो स्त्री परपुरुष की चाहनेवाली हो (१) ॥६॥

---

(१) स्पष्टाशय—यह है कि जातक में पूर्वादि जो जीव बुध इत्यादि करके दिग्बल के वास्ते न्यास किया है जैसे लग्न को पूर्वदिशा में कहा है चतुर्थ को उत्तर दिशा में सप्तम पश्चिम दिशा में दशम को दक्षिण दिशा में और इन्हीं के बीच में चार कोण हैं इन्हीं

अब ग्रह विशेषबलवश से फलान्तर को कहते हैं।

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

नरः प्रियोनीरजलोचनानां

नरग्रहैरुत्कटकांतिवीर्य्यैः ॥

को दिशा और विदिशा कहते हैं विदिक् से भिन्न भिन्न दिशा कही जाती है वह पूर्वादि दिशाओं में स्थित यायी ग्रह यानी लग्न में चतुर्थ में सप्तम में दशममें बली होते हैं। यायी ग्रह वे कहे जाते हैं "यातुंशीलंयेषांतेयायिनः।" अर्थात् चलने में कुशल हैं वे यायी कहे जाते हैं और स्थायी ग्रह वे कहे जाते हैं "स्थातुंशीलंयषांतेस्थायिनः।" यह बराह ने कहा है कि "रविराक्रंदोमध्येपौरःपूर्वेपरेस्थितोयायी। पौराबुधगुरुरविजानित्यंशीतांशुराक्रन्दः। केतुकुजराहुशुक्राः यायिनः ॥" अर्थात् बुध, गुरु, शनैश्वर ये पौर ग्रह कहे जाते हैं और चन्द्रमा आक्रन्द ग्रह हैं केतु मङ्गल, राहु, शुक्र ये यायी ग्रह हैं जो पौर ग्रह हैं वेही स्थायी कहे जाते हैं इन योगों को शौनक जी ने स्पष्ट कहा है। लग्नेन्दुचरराशौकेन्द्रस्थायायिनोयदाबलिनः। योषिद्ग्रहसंदृष्टयापतिद्वयं गच्छतेनारी॥" (अर्थात्) लग्न चन्द्रमा चरराशि में हों और केन्द्र में यायी ग्रह हों तो बली होते हैं स्त्री ग्रह देखते हों तो दो पति को स्त्री प्राप्ति करती है " शौनकः क्रूरग्रहसंदृष्टेसमर्क्षगेशिनिभजतिपतिमन्यम्। स्त्रीणामन्यगतेसौम्यैर्दृष्टेशुभंभवति ॥

नारीनृणांचित्तहरास्वभोगैः
नारीनभोगैर्बलशालिभिस्तु ॥ ७ ॥

अन्वयः—नरग्रहैः उत्कटकान्तिवीर्य्यैः (तदा) नीरजलोचनानां नरः प्रियः (स्यात्) नारीनभोगैः बलशालिभिः (तदा) नारीनृणां चित्तहरा (स्यात् कैः) स्वभोगैः ॥

भाषा—पुरुष ग्रह अत्यन्त प्रकाश होने से अत्यन्त बली होने से स्त्री को स्वामी प्रिय होता है स्त्री ग्रह के बलशाली होने से स्त्री स्वामी को प्रिय होती है (किस करके अपने भोग कुशलता करके) अर्थात् भोग क्रिया में कुशल होती है स्त्री । पुरुष ग्रह को कहते हैं "बुधसूर्यसुतौनपुंसकौ।श्यौशशिशुक्रौयुवतीनराश्चशेषाः।" (श्लोक का अर्थ स्पष्ट है) आशङ्का यह होती है कि स्त्री ग्रह दो हैं नारीनभोगैः बहु वचन क्यों कहा उत्तर यह है कि शौनक जी ने भी कहा है 'योषिद्ग्रहैः॥' अर्थात् स्त्री ग्रह बहुत हैं इससे बहुत कहा एक वाक्यता के लिये ॥ ७ ॥

॥ वैताली छन्दः ॥ श्लोकः ॥

पतिरस्तपतिर्विरोचनः
श्वशुरस्तत्प्रमदामदग्रहाः ॥

अबलाबलिनोदिशन्त्यमी
सुदृशांतेष्वशुभंशुभंक्रमात् ॥ ८ ॥

अन्वयः—सुदृशांपतिः अस्तपतिः (स्यात्) विरोचनः श्वशुरः (स्यात्) मदग्रहः तत्प्रमदा (स्यात्) अमी (पत्यादयः ग्रहाः) अबलाबलिनः क्रमात् (सुदृशां) तेषु- अशुभं शुभंदिशति (ददाति) ॥ ८ ॥

भाषा—स्त्री का पति सप्तम स्थानपति होता है सूर्य श्वशुर है स्त्री ग्रह (शुक्र) श्वशुर का स्त्री (अर्थात् श्वश्रू जिसको कहते हैं) ये सब ग्रह अबल और बलयुक्त हों तो क्रम से स्त्री पति आदि में अशुभ शुभ फल को देते हैं ॥ ८ ॥

॥ श्लोकः ॥

शशिसूर्यसुतावनीसुतै-
ररिनीचास्तगतैः करग्रहे ॥
अपितन्वधिपेनतप्यते-
निरपत्यानियतंनितम्बिनी ॥ ९ ॥

अन्वयः—करग्रहे शशिसूर्यसुतावनिसुतैः अरिनीचास्तगतैः तनुअधिपेन अपि नितम्बिनी निरपत्या (सती) नियतं तप्यते ॥ ९ ॥

भाषा—विवाह समय में चन्द्रमा, शनैश्चर, मङ्गल क्रम से शुभ ग्रह नीच ग्रह अस्तंगत हों लग्न स्वामी भी अरि नीच अस्तंगत हों तो वैसे योग में स्त्री सन्तानरहित निश्चय से ताप को प्राप्त हो। यहां पर सप्तम भवन में निर्बल होने से जानना चाहिये (१) ॥ ९ ॥

अथ शास्त्रविरुद्ध किंचित् लोक में है
उसको कहते हैं।

॥ उपजातिका छन्दः ॥श्लोकः ॥

कवेस्तृतीयस्यशुभायरेखा
लग्नंनभस्थोनभनक्तिभौमः ॥
तद्वद्द्वयेसौरिरपीतिरीति-
र्जनेषुजागर्तितरांकुतस्त्या ॥ १० ॥

अन्वयः—तृतीयस्यकवेः रेखा शुभाय (भवेत्) नभस्थः भौमः लग्नं न भनक्तितद्वद्द्वयेसौरिः अपि (लग्नं न भनक्ति) इतिरीतिः जनेषुकुतस्त्याजागर्तितराम् ॥ १० ॥

भाषा—तृतीय स्थान के शुक्र की रेखा शुभ के

(१) शौनक जी का प्रमाण इस पर है "लग्नपती रिपुभवने नीचेवारविसुतारजनीकरैः। बलरहिते च द्यूने स्त्रीणांनभवन्त्यपत्यानि (स्पष्टार्थ है)।

वास्ते होती है (लग्न के ग्रहबल देखने में गणना के लिये हर एक ग्रह की एक एक रेखा करते हैं यह ज्योतिर्विदों का संप्रदाय है यहां पर तृतीय शुक्र शुभ रेखा कहते हैं यह एक रीति है) दशम में मङ्गल लग्न को भंगकर्ता नहीं होते हैं यह अन्यान्य रीति है तिसी तरह द्वादश में शनैश्चर भी लग्न का भंगकर्ता नहीं होते हैं यह तृतीय रीति है यह रीति जनों में अत्यन्त करके उत्तम हुई यह रीति सर्वथा निर्मूला है लोक में किस कारण से अति प्रसिद्ध है इसका कहीं भी मूल नहीं देखाता है ॥ १० ॥

अब जामित्र दोष के भङ्ग को कहते हैं ।

॥ वैताली छन्दः ॥ श्लोकः ॥

उशनागुरुरिन्दुनन्दनः
शशिजामित्रगपापतापहृत् ॥
नवपञ्चमकेन्द्रमित्रभ-
प्रणयीपुष्टदशाविधुंस्पृशन् ॥ ११ ॥

अन्वयः—उशनागुरुरिन्दुनन्दनः (अयमेकोपि) शशिजामित्रगपापतापहृत् (स्यात्) (कथम्भूतः किंकुर्वन्सन्) नवपञ्चमकेन्द्रमित्रभप्रणयीपुष्टदशांविधुं (चन्द्रं) स्पृशन् ॥

अब पूर्ण जामित्रको कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

हिमरश्मिनवांशकात् खलो-
यदि खेटः शरसायकांशके ॥
अयमन्यगुणैर्नहन्यते-
निविडैरप्युपसर्गडम्बरः ॥ १२ ॥

अन्वयः—यदि हिमरश्मिनवांशकात् खलखेटः शरसायकांशके (तर्हि) अयम् उपसर्गडंबरः (दोषाडंबरः) निविडैः अन्यगुणैः नहन्यते ॥ १२ ॥

भाषा—चन्द्र गत नवांश से ५५ अंश में पापग्रह हो तो यह दोष आडम्बर परिपूर्ण अन्य गुणों करके नहीं नाश होता है (अर्थात् यह महान् जामित्र दोष कहलाता है ॥ १२ ॥

अब इन सब योगों का विचार गम्य को कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

मोघाशिखिदग्धवीजव-
योगाः केपिशरीरधारिणः ॥

दृढगूढफलोदयाः परे-
पर्णाकीर्णहुताशराशिवत् ॥ १३ ॥

अन्वयः—केपिशरीरधारीणः योगाः मोघाः (स्युः) (किंवत्) शिखिदग्धबीजवत् परे (योगाः) दृढगूढफलोदयाः पर्णाकीर्णहुताशराशिवत् ॥ १३ ॥

भाषा—कोई शरीरधारी पुरुष कहते हैं कि सम्पूर्ण प्रत्यक्ष दृश्यमान योग निष्फल हो जाता है (किसकी नाईं) अग्नि करके जरे हुए बीज की नाईं (अर्थात् जैसे अग्नि से जरायें बीज को बोया जाय वह बीज कुछ कार्य नहीं कर सकता है वैसे संपूर्ण योग निर्बल ग्रहों का कार्य करने में समर्थ नहीं होते हैं) और योग पुष्ट सघन फल प्राप्ति करता है (स्पष्टाशय—यह है कि बलरहित ग्रहों करके उत्पन्न बहुतेरे योग नष्ट हो जाते हैं और पुष्ट उत्तम फल प्राप्ति करनेवाला योग फलदायी होता है किस को नाईं) पातो करके ढके हुए अग्नि राशि की नाईं (यानी तृणों से अग्नि को ढक दिया जाय और बहुत अग्नि अपने तेज से उस तृण को भस्म कर देते हैं वैसे ही उत्तम एक योग अपने तेज से तृणरूपी कुयोग को भस्म कर देता है परन्तु वह उत्तम योग बलयुक्त ग्रहों करके उत्पन्न हुआ हो ॥ १३ ॥

इस प्रकार विचारकरनेवाले ज्योतिर्विद् को जगत् पूजता है, उसको कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

इतियः प्रतिकूलकारक-
ग्रहभावांशनिवेशदृष्टिभिः ॥
तन्वादिफलेषुदत्तदृ-
क्सप्राप्नोत्यवतंसतांसताम् ॥१४॥

अन्वयः—स (दैवविद्) सतां अवतंसतां प्राप्नोति (सकः) यः इति प्रतिकूलकारकग्रहभवांशनिवेशदृष्टिभिः (कृत्वा) तन्वादिफलेषुदत्तदृक् ॥ १४ ॥

भाषा—वह ज्योतिषी विद्वानों के अवतंस (यानी कर्णपूर अर्थात् कर्णों को भूषणता) को प्राप्त होते हैं वह कौन जो उक्त प्रकार से दुष्ट कारक ग्रह भाव अंश इनके स्थानों में दृष्टि करके लग्नादि के फलों में दियी है दृष्टि (अर्थात् दुष्ट कारक ग्रह के दुष्ट भाव के दुष्ट अंश के जोस्थान हैं उन स्थानों में दृष्टि को दिया है लग्नादिक फलों में दृष्टि देकर और उसका बलाबल विचार करके जो आदिष्ट फल को कहता है कि ये फल होगा इससे भिन्न नहीं

होगा वह दैववित् सत् जनों के बीच में माननीय हैं (यानी विद्वान् लोगों के वन्द्य हैं ॥ १४ ॥

इति श्री काशिखण्डान्तर्गतभृगुक्षेत्रसमीपदेवडीहग्राम निवासिशाण्डिल्यवंशावतंसविविधशास्त्रपरमपण्डितश्रीलालबहादुरत्रिपाठिपुत्रज्योतिर्वित्पण्डितशिवदत्तत्रिपाठिविरचितायां विवाहवृन्दावनसान्वयशिवकरीभाषाटीकायां ग्रहयोगादिबलाबलाध्यायः त्रयोदशः ॥ १३ ॥

अथ मिश्राध्यायः १४

अब स्त्री पुरुषों का सामुद्रिक लक्षण पूर्वक मिश्राध्याय को कहते हैं उसमें पहले कारण कहते हैं ।

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

उल्लिख्यसामुद्रिकलक्षणानि-
वरः कुमारींवृणुयान्निमित्तैः ॥
एवंकुमारीवरमप्युदर्को-
नह्येकधासंनिरधारिधीरैः ॥१॥

अन्वयः—वरः कुमारीं वृणुयात् (कैः) निमित्तैः (किं कृत्वा) सामुद्रिकलक्षणानि उल्लिख्य (प्रकटीकृत्य) एवं वरं

अपि कुमारी (वृणुयात्) हि (यस्मात्) उदर्कः धीरैः एकधा अरं (निश्चितं) नन्निरधारि ॥ १ ॥

भाषा—पुरुष स्त्री को स्वीकार करे (किस करके) निमित्त (अर्थात् जोचिन्ह इत्यादिक वक्ष्यमाण उन करके और) सामुद्रिक लक्षण को प्रगट करके (अर्थात् परम ब्रह्म ने जो सामुद्रिक लक्षण स्त्री पुरुषों को शुभाशुभ कहा है उन लक्षणों में उत्तम लक्षणयुक्त, प्रश्नकाल में जान कर उस स्त्री को पुरुष स्वीकार करे) वैसे ही शुभ लक्षण जान कर स्त्री स्वीकार करे (परन्तु ऐसा जब कि है तब पूर्वोक्त फल संदर्भ करके क्या होगा इस तरह की आशङ्का होने पर उत्तर कहते हैं) जिस कारण से उदर्क (यानी उत्तरकालीन फल) का गर्गादिकों ने एक प्रकार निश्चय नहीं धारण किया (अर्थात् भावी फलको इस प्रकार से जान के नहीं निश्चय किया) ॥ १ ॥

अब उस प्रपंच को कहते हैं ।

॥ इन्द्रवज्रा छन्दः ॥ श्लोकः ॥

स्वप्नोनिमित्तंशकुनाः स्वकर्म
शरीरमांगंतुकमद्भुतानि ॥

दोषाभिचारग्रहचारकाल-
काम्यानिचैवंविविधः फलाध्वा ॥२॥

अन्वयः—एवं स्वप्नोनिमितं शकुनाः स्वकर्म शरीरं आगन्तुकम् अद्भुतानिदोषाभिचारग्रहचारकाम्यानि च फलाध्वा विविधः (स्यात्) ॥ २ ॥

भाष—इस प्रकार (१) स्वप्न अर्थात् निद्रा विशेष

---

(१) यहां पर यह जानना चाहिये कि स्वप्न और निद्रा में भेद है इसमें प्रमाण यह है ॥ स्यान्निद्राशयनंस्वापः स्वप्नः संवेश इत्यादि से जानना । वादी कहता है कि सत्य है तथापि अवन्तर विशेष से भेद है । वनगहनवत् जैसे जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया यह चार अवस्था योग शास्त्र में प्रसिद्ध हैं इनमें जाग्रत् यानी जगत् प्रसिद्ध है मन के निरिंद्रिय प्रदेश अवस्थान को निद्रा कहते हैं वह दो प्रकार की है एक तो स्वप्न और द्वितीया सुषुप्ति जिसमें दुष्ट अन्तःकरण से उत्पन्न ज्ञान है वह निन्द्रा स्वप्न कहा जाती है और जिस निन्द्रा में यह नहीं है वह सुषुप्ति कही जाती है यह तीन सर्व जनों के अनुभव सिद्ध है और इन तीनों से विलक्षण है वह तुरीया कही जाती है वह योगियों की है स्वप्न अवस्था में तद्गत ज्ञान होता है जैसे श्रीमद्भागवत में लिखा है कि "स्वप्नोनिन्द्रानुगोयथा ।" और नैषध काव्य में भी है 'नशानिशि-स्वप्नगतं ददर्श तम् ।' इत्यादि बहुत से प्रमाण हैं इस कारण उसके लक्षणको नैयायिक लोगों ने कहा है "योगजधर्माननुगृहीतस्य-मनसोनिरिन्द्रियप्रदेशावस्थानंनिन्द्रातत्रदुष्टान्तःकरणजं ज्ञानंस्वप्नः ॥

उत्पन्न ज्ञान कहा जाता तिससे फलादेश मार्ग यह एक है निमित्त यानी कोई छींक दे या कोई दुर्वचन कहे यह सुनने में आवे और (२) शकुन यानी पूर्ण कुम्भादिक देखने में आवें तो यह स्वकर्म यानी अपने प्राचीन कर्मको जनानेवाला है, शरीरम् यानी सामुद्रिक लक्षणादि आगन्तुक यानी भविष्य यह सब सूचक जातकादि, अद्भुत यानी उत्पात दिव्य भौम अंतरिक्ष, दोष यानी वात पित कफादि

(२) शौनकः ॥ "तिथिकरणर्क्षनिशाकरविलग्नपरिकल्पनामयं ॥" तिथि करण नक्षत्र चन्द्रमा लग्न इन सबों की परिकल्पना । और गर्गजी विवाह में फल को कहते हैं यवन वशिष्ठ कहते हैं कि ग्रह राशि] गोचर से उत्पन्न जो जातक विहित है और देवलजी यह कहते हैं कि शकुन करके जो निमित्त कुशल और अन्य आचार्य कुल देश और अन्य कोई आचार्य स्त्री स्वभाव को मानते हैं और अन्य आचार्य काल विशेष से फल विशेष को मानते हैं इस प्रकार स्वप्नादि फल मार्ग नाना प्रकार का है इस कारण पुरुष स्त्री का सामुद्रिक लक्षण स्वस्थ अरिष्टादिक को भी हमने कहा तथा प्रमाण भी है "जातकनिमितशुद्धां शुभलक्षणसंस्थितांकुलोद्भूताम् ॥ वरयेत्सुतसौख्यार्थीयवीयसींकन्यकाम् ॥" जातक निमित शुद्ध हो शुभ लक्षण युक्त हो उत्तम कुल में हो ऐसी कन्या को पुत्र और सौख्य को चाहनेवाले प्रमाण से कम वयसवाली को स्वीकार करे यानी विवाह करे ॥

स्वभाविक शरीर में रहनेवाला उसका अभिचार यानी प्रचार स्वरविधानादि ग्रहचार गोचर वक्रमार्ग उदय अस्तादि काल यानी संवत्सर मास लग्नादि काम यानी कांचित ऐहिक पुरुष चेष्टादिका विचार ऐसे फलका मार्ग अनेक प्रकार का है ॥ २ ॥

अब इस प्रकार अनेक फल मार्ग होने में समाधान को कहते हैं ।

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

प्राक्कर्मबीजंसलिलानलोर्वी-
संस्कारवत्कर्मविधीयमानम् ॥
शोषायपापायचतस्यतस्मा-
त्सदासदाचारवतांनहानिः ॥ ३ ॥

अन्वय—(यत्) प्राक्कर्म (तस्य) शोषाय पोषाय च (अधुना) विधीयमानं कर्म (भवति किम्वत्) बीजं सलिलानलोर्वी संस्कारवत् तस्मात् (कारणात्) सदाचारवतां (पुरुषाणाम्) सदा (कदाचित्) न हानिः (स्यात्) ॥ ३ ॥

भाषा—(पूर्वजन्म में जो उपार्जित सत् असत् कर्म है वही प्राक्कर्म कहा जाता है और जो दैहिक कर्म वही प्रयत्न और पौरुष कहा जाता है जो)

प्राक्कर्म है उसके चय और पुष्टि के लिये इस काल में क्रियमाण कर्म होता है (किसकी नाईं) बीज को जल अग्नि पृथ्वी इसके संस्कार की नाईं (जैसे अच्छा बीज सुन्दर जलादि संस्कार करके सुन्दर निकलता है और बढ़ता है ऐसे भिन्न यानी खराब बीज खराब पानी खराब भूमि में संस्कार किया जाय तो नाश हो जाता है तैसेही पूर्वजन्म में उपार्जित सत्कर्म सुन्दर प्रयत्न करके बढ़ता है अन्यथा यानी कुकर्म पौरुष से नाश हो जाता है यानी श्रुति स्मृति विहित स्वकर्म छोड़कर अन्य वर्णों का कर्म करना परस्त्री आदि गमन करना यही कुकर्म है इत्यादि कुकर्म करने से पूर्वजन्म उपार्जित सत्कर्म का नाश हो जाता है तिस कारण से श्रुति स्मृत्यादिक में जो विहित कर्म है उसको सदा करनेवाले पुरुषों का कभी नहीं नाश होता हे (अशुभ कर्म फल को भी सत यानी श्रुति स्मृत्यादि विहिति प्रयत्नों करके निवारण होता है इत्यादिक प्रपञ्च को पहले कहा तिस कारण से स्वप्न 'निमित्तशकुनसामुद्रिकलक्षणम् ' इत्यादि प्रयत्न लक्षण अवश्य विलोक-

नीय हुआ यह हमने उस प्रपञ्च को पहिले निरूपण किया है ॥ ३ ॥

अब कोई आचार्य यह कहते हैं कि पूर्व कर्म फलता है उस मत को दूषण देते हैं।

॥ श्लोकः ॥

फलेद्यदिप्राक्तनमेवतत्किं
कृष्याद्युपायेषु परः पयत्नः ॥
श्रुतिस्मृतिश्चापिनृणांनिषेधं-
विध्यात्मकेकर्मणिकिंनिषण्णा ॥ ४ ॥

अन्वयः—यदि प्राक्तनं (कर्म) एव फलेत् तत् (तदा) कृष्यादिषुउपायेषुपरः प्रयत्नः किं नृणां निषेधविध्यात्मकेकर्मणिश्रुतिस्मृतिश्च अपि किं निषण्णा (कथम्प्रवृता) ॥४॥

भाषा—जो प्राक्तन कर्म ही फलता है (किन्तु प्रयत्न नहीं) तो कृष्यादि उपाय में उत्कृष्ट प्रयत्न में कैसे प्रवृत्त होते हैं (जो अवश्य होनेवाली है सो अवश्य होती है ऐसा मान करके सब जनों को कृष्यादिक में प्रवृत्त होना नहीं चाहिये और वह सब जन कृष्यादिक में प्रवृत्त हैं इसमे यह प्रत्यक्ष विरोध देखने में आता है और यह कहें कि यह केवल प्रत्यक्ष

विरोध ही नहीं किन्तु आगम विरोध है उसको कहते हैं) मनुष्यों का निषेध विध्यात्मक कर्म में श्रुति और स्मृति क्यों प्रवृत्ति है (१) ॥ ४ ॥

अब प्रकृति को कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

छायांविधोर्नध्रुवमृक्षमाला-
मालोकयेद्योनचमातृचक्रम् ॥
खण्डम्पदंयस्यचकर्दमादौ
कफश्च्युतोमज्जतिचांबुचुम्बी॥ ५ ॥

अन्वयः—(अमुकं) यः विधोः छायाम् न आलोकयेत् (नच) ध्रुवमृक्षमालां (आलोकयेत्) नचमातृचक्रम् (आलो-

(१) "आत्मानांसततंगोपाय ।" यह वेद का प्रमाण है । "न वृक्षमारोहेन्नकूपमवेक्षेत न बाहुभ्याम् नदींतरेन्नसंशयमभ्यापद्येत ।" यानि वृक्ष पर नहीं चढ़ना कूप में अवलोकन नहीं करना बाहूं से नदी नहीं उतरना इत्यादिक श्रीकामपुष्टि का यह यत्न करना इत्यादि याज्ञवल्क्यादि स्मृतियों का वाक्य है इन सब प्रपञ्चों को पहले निरूपण किया इस वजह से जो कहा है वह ठीक है यानी यत्न करना चाहिये यह सिद्ध हुआ और जो लोग भावी को मानते हैं वह ठीक नहीं वह अपने आलस्य से मानते हैं ॥

कयेत् यस्य च पदं कर्दमादौ खण्डं (भवति यस्य) च कफः च्युतः अम्बुचुम्बीमज्जति ॥ ५ ॥

भाषा—ऐसे वर को ग्रहण नहीं करना चाहिये जिसको चन्द्रछाया न देखने में आवे व ध्रुव व नक्षत्रमण्डल व मातृचक्र (यानी मातृ संज्ञा का जो विशेष तारा है, वह न देखने में आवे और) जिसका कर्दम धूलि इत्यादिक में रखे हुए पदखण्ड हों और जिसका कफ जल में गिराने पर घूम कर डूब जाय ॥ ५ ॥

॥ श्लोकः ॥

उरः पुरः शुष्यतियस्यचार्द्रं
नमांतितिस्रोऽगुलयश्चवक्त्रे ॥
स्नातस्यमूर्द्धन्यपिधूमवल्ली
निलीयतेरिक्तमुखः खगोवा ॥ ६ ॥

अन्वयः—यस्य च उरः आर्द्रम् पुरः शुष्यति (यस्य च) वक्त्रे तिस्रः अंगुलयः न मान्ति यस्य स्नातस्य मूर्द्धनि धूमवल्ली (स्यात्) वा (यस्य) मूर्द्धनि रिक्तमुखः खगः निलीयते ॥ ६ ॥

भाषा—जिसकी छाती (जल चन्दनादिक करके) भीजी हो (और भीजे शरीरों से) पहले

सूख जाय व जिसके मुख में (बीच को) तीन अंगुली न प्रवेश करें वा स्नान करनेवाले के शिर में सधूम की शिखा हो अथवा शिर पर फलादिक से रहित मुखवाला पक्षी बैठे ॥ ६ ॥

॥ श्लोकः ॥

नाकीर्णकर्णः शृणुयाच्चघोषं
नोवासुभुक्तोपिधृतिंनधत्ते ॥
निश्रीरकस्मात्सुतरांचसुश्रीः
कृशःस्थवीयानपियोप्यकस्मात् ॥७॥

अन्वयः—यः आकीर्णकर्णः घोष च न शृणुयात् (यः) वा सुभुक्तोपिधृतिं न धत्ते (यश्च) सुश्रीः अकस्मात् सुतरां-निश्रीः (भवति) चकारात् (निश्रीः) अकस्मात् सुतरां सुश्रीः (भवति) यश्चकृशः अपि (अकस्मात्) स्थवीयान् भवति अपि (यश्चस्थवीयान् अकस्मात् कृशः भवति) ॥ ७ ॥

भाषा—जिसके अंगुल्यादिक से ढाके गये दोनों कान और (अन्तवर्त्तिस्वभाविक) शब्द को न सुनने में आवे अथवा अत्यन्त करके भोजन करने पर तृप्ति न हो और जो सुन्दर शोभावान् है और अकस्मात् शोभारहित हो जाय अथवा शोभारहित है अकस्मात् शोभायुक्त हो जाय जो पतला हो

अकस्मात् स्थूल हो जाय या स्थूल अकस्मात् पतला हो जाय ॥ ७ ॥

॥ श्लोकः ॥

अतीवतुच्छंबहुचात्यहेतो-
र्रतीतसात्म्यः सदसत्प्रवृत्तौ ॥
अप्यंगुलिक्रान्तविलोचनांतो
नमेचकंचान्द्रकमीक्षतेयः ॥ ८ ॥

अन्वयः—यश्च अहेतोः अतीवतुच्छं अति चकारात् बहु (अति) यः (च) सत् असत्प्रवृत्तौ अतीतसात्म्यः यः अपि अंगुलिक्रान्तेविलोचनान्तः चान्द्रकं मेचकं न ईक्षते ॥८॥

भाषा—जो हेतु (यानी ज्वरादि के) बिना अत्यन्त थोड़ा भक्षण करे और भस्मकादि व्याधि के बिना जियादः भोजन करे अथवा जो सत् असत् प्रवृत्ति में अतीतसात्म्य हो (अर्थात् स्वाभाविक से सत्प्रवृत्ति हो और असत् में प्रवृत्ति हो जाय अथवा स्वभाविक असत् प्रवृत्ति हो सत् प्रवृत्ति हो जाय) अथवा अंगुलियों करके नेत्र उठाने पर चन्द्रमेचक न देखने में आवे (मेचक यानी मयूरपत्र की कान्ति की नाईं और चान्द्रक करके खद्योत की नाईं प्रकाशमान अनुभव सिद्ध हों) ॥ ८ ॥

॥ श्लोकः ॥

मध्येललाटंमणिबन्धधारी
न चाल्पिकांपश्यतियः कलावीम् ॥
अहेतुकं यः शवगन्धिगात्रः
सर्वत्रसीमन्तितमूर्धजोवा ॥ ९ ॥

अन्वयः—यः मध्येललाटं मणिबन्धधारी अल्पिकां (कृशां) कलावीम् न पश्यति यश्च अहेतुकं शवगन्धिगात्रः वा (यः) सर्वत्र सीमन्तितमूर्धजः ॥ ९ ॥

भाषा—जो बीच में ललाट के हाथ को लगा मणि बन्धधारी होकर पतली कलावी न देखे (स्पष्टाशय—यह है कि स्वस्थ एकान्त में बैठकर ललाट पर हस्त लगाने पर पहुंचा पतोला देखने में न आवे यानी मोटा दृष्टि पड़े और मणिबन्ध उसको कहते हैं जो हस्त के तल भाग नीचे को जो सन्धि है यानीतल हस्त और उसके नीचे दोनों का जो बीच वही मणिबन्ध है और स्त्रियों के कर भूषण स्थान को कलावी या पहुंचा कहते हैं) और जिसके कारण के विना मृतक के समान गन्ध शरीर में हो अथवा सर्वत्र सीमन्तित केश हो (सीमन्त

स्त्रियों के ललाट से ऊपर केश वेष विशेष से प्रसिद्ध है) ॥ ९ ॥

॥ श्लोकः ॥

अपिक्षरद्रोमनखः शरीरा-
त्सद्यः स्रवद्वामविलोचनोवा ॥
निरीक्षतेसत्वममानुषंवा
विस्रस्तनासानयनश्रुतिर्वा ॥ १० ॥

अन्वयः—अपि (वा यः) शरीरात् क्षरद्रोमनखः वा वाम-विलोचनः सद्यः स्रवत् वा अमानुषं सत्वं निरीक्षते वा विस्र-स्तनासानयनश्रुतिः ॥ १० ॥

भाषा—अथवा शरीर से गिरता है रोम और नख वा वाम नेत्र शीघ्र जल दे अथवा मानुष से भिन्न प्राणी (यानी पिशाचादि) को देखे अथवा शिथिलीभूत नासिका नेत्र कर्ण हो ॥ १० ॥

॥ इन्द्रवज्रा छन्दः ॥ श्लोकः ॥

आक्षिप्यमाणोदिशिदक्षिणस्यां
जागर्तियानेऽधिकृतः खरादौ ॥
नेदिष्ठदिष्टान्तममुंकुमार्या-
नाऽऽर्थ्याः प्रदानायवरंवृणीरन् ॥११॥

अन्वयः—(यः वा स्वप्नमध्ये) खराद्यैयाने अधिकृतः दक्षिणस्यां दिशिआक्षिप्यमाणः (सन्) जागर्ति असुंवरं आर्याः कुमार्यप्रदानाय न वृणीरन् (कथं) नेदिष्ठदिष्टान्तम् ॥ ११ ॥

भाषा—जो पुरुष अथवा स्वप्न में गर्धभादिकों पर असवारी करके दक्षिण दिशा में जाते हुए जाग जाय तो ऐसे वर को श्रेष्ठ जन स्त्रीप्रदान के लिये न स्वीकार करें क्योंकि अत्यन्त समीप में प्रलयकाल प्राप्त है (अर्थात् आसन्न मृत्यु है ऐसे वर को न स्वीकार करें और ऐसी हो कुमारी को वर भी न ग्रहण करे) ॥ ११ ॥

अब छायालक्षण से अरिष्टज्ञान करते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

छायांनिरीक्ष्यक्षणमंतरिक्षं
पश्यन्नयोनिश्चलनेत्रपातः ॥
शुभ्राभ्रसच्छायमिहस्वकायं
पश्येत्सनश्येद्विकृतौविकारः ॥१२॥

अन्वयः—यः निश्चलनेत्रपातः छायां निरीक्ष्य क्षणमन्तरिक्षं पश्येत् (तथा) स्वकायंशुभ्राभ्रसत् छायां न पश्येत् स नश्येत् इह (अस्मिन् स्वकाये) विकृतौविकारः स्यात् ॥ १२ ॥

भाषा—जिसका स्थिर है मेत्र पात वह अपनी छाया को देखकर फिर अन्तरिक्ष को देखे वैसा ही अपने शरीर की सुन्दर मेध के समान छाया न देखे वह नाश होता है इस अपने शरीर का विकार देख कर विकार होता है (अर्थात् जिस शरीर का विकार दिखलाता है उसका विकार हो होता है) ॥ १२ ॥

अब तीन श्लोकों से पुरुष के लक्षण कहते हैं ।

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

प्रदक्षिणावर्तशरीररोमा
वृषस्वनः फेनिलमूत्रपातः ॥
नात्यल्पपार्ष्णिर्मनसागभीरो-
धीरोन्नतारम्भरुचिर्यशस्वी ॥ १३ ॥

अन्वयः—(येषाम्) प्रदक्षिणावर्तशरीररोमावृषस्वनः फेनिलमूत्रपातः न अत्यल्पपार्ष्णिः मनसागभीरः धीरः उन्नतः आरम्भरुचिः यशस्वी ॥ १३ ॥

भाषा—जिसका प्रदक्षिणावर्त शरीर का रोम हो बैल कि सादृश शब्द हो फेनिलमूत्रपात (यानी

पेशाव करने से पृथ्वी पर ज्यादे फेन) हो, नहीं है अत्यन्त लघुपार्श्व (पजरी) मन से गम्भीर धीर (अर्थात् सन्देहरहित) उन्नत कार्य के प्रारम्भ में प्रीति हो यशस्वी (अर्थात् संसार में प्रशंसित) हो ॥ १३ ॥

॥ श्लोकः ॥

स्निग्धेक्षणत्वङ्नखदन्तकेशाः
युवासुवासाः परिवीतचेष्टः ॥
नस्त्रीमुखोनिप्रभशान्तमूर्ति-
र्नचातिकृष्णेक्षणतारकोवा ॥ १४ ॥

अन्वयः—('यश्च) स्निग्धेक्षणत्वङ्नखदन्तकेशायुवा सुवासाः परिवीतचेष्टः स्त्रीमुखः न निप्रभः शान्तमूर्तिः अतिकृष्णेक्षणः तारकोवानच (भवति) ॥ १४ ॥

भाषा—जिसका चिक्कन है नेत्र त्वचा व नख व दांत व केश, युवा (यानी मध्य वय) सुन्दर वस्त्र परिवीतचेष्ट (अर्थात् अत्यन्त से संवृत है शरीर की चेष्टा) स्त्री की नाईं मुख नहीं है निरन्तर में कान्ति है व शान्तमूर्ति अथवा अत्यन्त काली नेत्र की पुतली न हो ॥ १४ ॥

॥ श्लोकः ॥

औचित्यचारीशुचिरिङ्गितज्ञो

नितम्बिनीस्वल्पनितम्बगुह्या
द्रुह्यात्पतिंदीर्घगलाकुलघ्नी ॥ १७ ॥

अन्वयः—या निम्नतम्बिनी स्फिक्ललाटोदरलाम्बिनी सा (क्रमेण) कान्तकान्तानुजताततहन्त्रीय स्यात् (या) स्वल्पनितम्बगुह्या (सा) पतिंद्रुह्यात् (या) दीर्घगला (सा) कुलघ्नी (भवति)॥ १७॥

भाषा—जो स्त्री दीर्घकटि, दीर्घललाटा, दीर्घ उदरी हो तो स्वामी, देवर, ससुर, को नाश करती है (अर्थात् दीर्घ कटिवाली स्वामी, दीर्घ ललाटा देवर को दीर्घ उदरी ससुर को, नाश करती है) और जिस स्त्री का छोटा है चूतड व योनि वह स्त्री स्वामी से विरोध करती है और जो स्त्री बड़ा गलावाली है सो कुलघ्नी (अर्थात् स्वामी के कुल को नाश करनेवाली होती है)॥ १७॥

॥ उपजातिका छन्दः॥ श्लोकः॥

निःस्वातिह्रस्वाधमनौपुरंघ्री
प्रायेणतत्रातिपृथुः प्रचण्डा॥
कपोलकूपाहासितेप्यशीला
कूर्मोदरीदुःखदरीदुरात्मा ॥ १८ ॥

अन्वयः—(या) धमनीअतिह्रस्वा (सा) प्रायेण निःस्वा (भवति) तत्र (तस्यांधमनी) अतिपृथुः (सा) प्रचण्डा (स्यात् या) हसिते अपि कपोलकूपा (सा) अशीला (भवति या) कूर्मोदरी (सा) दुःखदरीदुरात्मा (भवति) ॥ १८ ॥

भाषा—जो नश में बहुत कम हो वह स्त्री निर्धना होती है (अर्थात् जिस स्त्री का अत्यन्त कम शिरा हो) तिसमें अति मोटी हो वह स्त्री अति उग्र स्वभाववाली होती है और जिस स्त्री का हँसने पर गाल गहिरा हो जाय वह दुराचारिणी होती है और जिस स्त्री का कछुए के पेट सदृश पेट हो वह दुःख दरी (यानी दुःख की कन्दरा) व दुरात्मा (यानी दुष्ट स्वभाववाली) होती है ॥ १८ ॥

इस तरह पुरुष स्त्री के सब शरीर के लक्षण कहके विशेष से हस्त चरण रेखा के लक्षण कहते हैं सातश्लोकों में ।

॥ इन्द्रवज्रा छन्दः ॥ श्लोकः॥

रेखाभिरगुंष्ठतलेङ्गनानां
पुंस्त्रीप्रसूतिर्विपुलाल्पिकाभिः ॥

अच्छिन्नभिन्नाभिरखण्डमायुः
खण्डन्तदन्याभिरमूभिरस्याः ॥१९॥

अन्वयः—अंगनानां अंगुष्ठतले (स्थिताभिः) रेखाभिः विपुलायाल्पिकाभिः (क्रमेण) पुंस्त्रीप्रसूतिः (वाच्या) अमूभिः (रेखाभिः) अच्छिन्नभिन्नाभिः अस्याः (पुंस्त्रीप्रसूतेः) आयुः अखण्डं (वाच्यं) तदन्याभिः (छिन्नभिन्नाभिः) खण्डं (अल्पायुर्वाच्यम्) ॥ १९ ॥

भाषा—स्त्री के अंगुष्ठतल (अर्थात् हस्त अंगुष्ठ मूल के नीचे) में स्थित रेखा पुष्ट और पतली होने से पुरुष स्त्री जन्म (अर्थात् पुष्ट जितनी रेखा हो उतनी संख्या पुत्र कहना और जितनी रेखा पतली हो उतनी कन्या कहना) यह रेखा अच्छिन्न भिन्न (अर्थात् वह रेखा दूसरी रेखा से कटी न) हो तो उस स्त्री के पुत्र पुत्री की अखण्ड आयु (अर्थात् पूर्ण आयु कहना) इससे विपरीत रेखा (यानी छिन्न भिन्न होने से) खण्ड (यानी सन्तान की) अल्पायु कहना) ॥ १९ ॥

॥ शालिनी छन्दः ॥ श्लोकः ॥

एकातिर्यक्तर्जनीयातिरेखा
तर्जन्यंगुष्ठान्तरालेतदन्या ॥

तेद्वेस्यातामायुरैश्वर्यरेखे
तत्सौन्दर्य्यैसुन्दरत्वंतयोः स्यात् ॥२०॥

अन्वयः—एकारेखातर्जनीं (प्रति) तिर्यक्याति तत् अन्या (रेखा) तर्जन्यंगुष्ठान्तराले (स्थिता) तेद्वे (क्रमेण) आयुरैश्वर्यरेखेस्यातां तत् सौन्दर्ये तयोः सुन्दरत्वं स्यात् ॥ २० ॥

भाषा—एक रेखा तर्जनी (अंगुली) की तरफ टेढ़े मार्ग से जाय व दूसरी रेखा तर्जनी और अंगुष्ठ के बीच में हो तो दोनों क्रम से आयु और ऐश्वर्य रेखा होती है (अर्थात् प्रथम रेखा आयुद्योतक है द्वितीय रेखा ऐश्वर्य द्योतक है) इन दोनों रेखाओं के सुन्दर (यानी पुष्ट) होने से दोनों आयु ऐश्वर्य को पुष्ट (अर्थात् आयुष्मान् धनवान्) करती हैं ॥ २० ॥

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोक ॥

ऐश्वर्यरेखाशिखरेणमूला-
द्युनक्तियासौपितृवंशरेखा ॥
नीरन्ध्राबन्धाग्रहबन्धनाय
वंहीयसीवंशाविवर्धनाय ॥ २१ ॥

अन्वयः—या रेखामूलात् (निर्गता) ऐश्वर्यशिखरेण

युनक्ति असौपितृवंशरेखा (भवति) सा (रेखा) नीरंध्र-बन्धागृहबन्धनाय (भवति) वंहीयसीवंशविवर्धनाय (भवति)॥

भाषा—जो रेखा मूल (यानी हाथ की जड़) से निकल कर ऐश्वर्य रेखा के अग्र भाग से योग करे तो वह पितृवंश रेखा होती है वह रेखा छिद्र रहित और बन्ध (अर्थात् दूसरी रेखा से घिरी) न हो तो स्त्री से अति प्रीति के लिये होती है और वह रेखा अत्यन्त करके बाहुल हो तो वह वंश के बढ़ाने के वास्ते होती है ॥ २१ ॥

॥ श्लोकः ॥

कनिष्ठिकाजीवितरेखयोः स्या-
न्मध्येमिथः कान्तकलत्ररेखा ॥
अपत्यरीत्याकरभेपरास्मिन्
कान्तिसांमातुरवर्गरेखाः ॥ २२ ॥

अन्वयः—कनिष्ठिकाजीवितरेखयोः मध्ये मिथः कान्त कलत्ररेखा स्यात् करे अस्मिन् करभेसांमातुरवर्गरेखाः (भवन्तिताः) अपत्यरीत्याज्ञेयाः ॥ २२ ॥

भाष—कनिष्ठिका (अंगुली) आयु रेखा के बीच में परस्पर पुरुष स्त्री की रेखा होती है (स्पष्टाशय है कि पुरुष के हाथ में कनिष्ठिका से नीचे आयु

रेखा से ऊपर जितनी रेखा हो उतनी ही उसकी स्त्री होगी और स्त्री के हाथ में हो उतने ही उसके पुरुष होते हैं और दोष इस हाथ में सांमातुर वर्ग की रेखा (यानी भाई बहिन की रेखा होती है उसको सन्तान की रीति से जानना (स्पष्टाशय— यह है कि आयु रेखा के नीचे हाथ में स्थित रेखा भाई और बहिन की होती है उसमें जितनी पुष्ट हो उतने भाई जितनी उतनी हो पतली बहिन कहना। छिन्न भिन्न न होने से पूर्णायु होती है और छिन्न भिन्न होने से भाई बहिन की अल्पायु कहना॥

॥ श्लोकः ॥

अनामिकामूलाविभूषणया
पुण्यस्यरेखातदवाप्तिहेतुः॥
निःसीमसीमन्तितपञ्चशाखा
करोर्ध्वरेखानकरोतिराज्यम्॥२३॥

अन्वयः—या रेखा अनामिकामूलविभूषणम् (सा रेखा) पुण्यस्यरेखा (कमभूता) तदवाप्तिहेतुः निःसीमसीमन्तित पञ्चशाखा (तथा) करोर्ध्वरेखा राज्यं न करोति (अपितु-करोतिएव)॥ २३॥

भाषा—जो रेखा अनामिका (अंगुली) की जड़ में शोभित हो वह रेखा पुण्य की रेखा है (कैसी वह रेखा है) तिस पुण्य की प्राप्ति का कारण है (अर्थात् जिस पुरुष की अनामिका के नीचे ऊर्ध्व गामिनी रेखा हो वह पुण्य कराती है) निर्गत है सीमा ऐसा जो हाथ उसमें ऊर्ध्व रेखा राज्य क्या नहीं कराती है (अर्थात् राज्य कराती है स्पष्टाशय यह है कि पुरुष के दहिने हाथ की जड़ मे ऊर्ध्व रेखा दो भाग होकर ऊपर जाय तो वह अवश्य राज्य या राज्यसुख देता है) ॥ २३ ॥

इत्यादि सब स्त्रियों का भी शुभाशुभ फल साधारण रेखा से अत्यन्त तत्व को कहते हैं ।

॥ रुयानकी छन्दः ॥ श्लोकः ॥

अरूक्षगम्भीरमनोहराभी-
रेखाभिरन्तर्मधुपिङ्गलाभिः ॥
नचातिबह्वीभिरवामवामे-
ष्वंगेषुपुंस्त्रीफलयोः स्फुटत्वम् ॥२४॥

अन्वयः—अरूक्षगम्भीरमनोहराभिः अन्तरमधुपिङ्ग-

लाभिः न चातिबह्वीभिः रेखाभिः पुंस्त्रीफलयोः स्फुटत्वं (स्यात् केषु) अवामवामेषु अंगेषु॥ २४॥

भाषा—चिक्कन गम्भीर (यानी नई हुई) सुन्दर अभ्यन्तर (अर्थात् बीच) में मधु की नाईं (अर्थात् रक्त वर्ण) पिङ्गल वर्ण नहीं बहुत मोटी और नहीं बहुत पतली (ऐसी स्त्री पुरुषों के उक्त रेखा) होने से पुरुष स्त्री का फल स्फुट (अर्थात् शुभ फल अधिक) होता है किसमें अवाम बाम अङ्ग में (अर्थात् पुरुष के दक्षिण हस्त चरणादिक में और स्त्री के बाम हस्त चरणादिक में॥ २४॥

अब हाथ में अथवा चरण से राजचिह्न को कहते हैं।

॥ शिखरिणी छन्दः॥ श्लोकः॥

सरोजश्रीवृक्षध्वजगजतिमिस्तम्भकलश-
स्रगादर्शच्छत्रांकुशकुलिशभृङ्गारगिरिभिः॥
रथाश्वश्रीवत्सव्यजनयवयूपप्रभृतिभि-
र्नरानार्योराज्यंदधतिपदपाणिप्रणयिभिः २५

अन्वयः—सरोजश्रीवृक्षध्वजगजतिमिस्तम्भकलशस्रक् आदर्शछत्रांकुशकुलिशभृंगारगिरिभिः रथाश्वश्रीवत्सव्यजनयवयूपप्रभृतिभिः पदपाणिप्रणयिभिःनरानार्यः राज्यंदधति २५

भाषा—कमल, विल्ववृक्ष, ध्वज, हस्ती, मत्स्य, स्तम्भ, लश, माल्य, ऐनक, छत्र, अंकुश, वज्र, कारक, पर्वत, रथ, घोड़ा, श्रीवत्स (अर्थात् विष्णु की छाती में रोओं के प्रदक्षिणावर्त चिह्न है ये कहने से प्रदक्षिणावर्त मात्र ग्रहण करना यानी छाती के रोम प्रदक्षिणावर्त हों) पंखा यव यज्ञस्तम्भ इत्यादि सब चिह्न चरण और हस्तगत होने से पुरुष स्त्री राज्य को धारण करते हैं (अर्थात् इन सब लक्षणों करके राज्य प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

॥ रथोद्धता छन्दः ॥ श्लोक ॥

अर्चितंवचनमुन्नतंमनो-
निर्विशेषसुखदंवपुर्दृशाम् ॥
अस्तिचेदघपराङ्मुखामति-
र्लक्षणैः किमपरैर्नृयोषिताम् ॥ २६ ॥

अन्वयः—चेत् वचनं अर्चितं मनः उन्नतं वपुः दृशांनिर्विशेषसुखदं मतिः अघपराङ्मुखा अस्ति (तदा) नृयोषितां अपरैः लक्षणैः किम् ॥ २६ ॥

भाषा—वाणी पूजित (अर्थात् मीठी) हो मन बड़ा हो (अर्थात् थोड़े विषय में चित्त प्रवृति न हो) शरीर नेत्र को अधिक सुख दे (अर्थात् शरीर

के देखने से नेत्र को आनन्द मिले) बुद्धि से पातक से पराङ्मुख (अर्थात् दूर) रहे तब पुरुष स्त्री का अपर लक्षणों से कुछ फल नहीं (अर्थात् इन चार लक्षणों से युक्त हो तो और शुभ लक्षण का कुछ प्रयोजन नहीं (यह सामुद्रिक लक्षण समाप्त हुआ) ॥२३॥

वरणकाल में पक्षी चेष्ठित को कहते हैं।

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोक ॥

वरस्यकन्यावरणेवरेण्यो
दुर्गेवयोदक्षिणचेष्टितश्च ॥
अदक्षिणेचेष्टितमिष्टमाहु-
स्तयोः कुमारीवृणुयाद्वरंचेत् ॥२७॥

अन्वयः—वरस्यकन्यावरणे यः (पक्षी) दक्षिणचेष्ठितः सवरेण्यः (अतिशुभः स्यात्) दुर्गाइवकुमारीवरंचेत् वृणुयात् (तस्मिन्काले) तयोः (पुल्लिङ्गपक्षीदुर्गयोः) अदक्षिणचेष्टितं इष्टं आहुः ॥ २७ ॥

भाषा—वर के कन्या वरणसमय में जो (पुल्लिंग पक्षी) (अर्थात् जब वर कन्या को स्वीकार करने की इच्छा करे उस काल में पुलिंग पक्षी) दक्षिण चेष्टित (यानी दक्षिण अंग कंडूयन या शरीर कंपावे तो यह अति शुभ होता है (किसकी नाईं) दुर्गा को

नाईं (अर्थात् स्त्रीलिङ्ग पक्षियों में जो दुर्गा नाम से पक्षी है वह दक्षिण भाग कंडूयन करे तो शुभ है) स्त्री वर को यदि स्वीकार करे उस काल में दोनों पक्षी पुलिंग यो दुर्गा यह बाम चेष्ठित हों (अर्थात् बाएं अंग को खजुलावें तो शुभ ऐसा कहा है) ॥२७॥

अब कुत्ते के चेष्ठित को कहते हैं ।

॥ अनुष्टुप छन्दः ॥ श्लाकः ॥

शुनोगतिदक्षिणेष्टाकुमारीयत्रकांक्षिणी ॥
अदक्षिणायत्रतत्रवरएतांवुवूर्षति ॥ २८ ॥

अन्वयः—यत्रकुमारीकांक्षिणीतत्रशुनः गतिः दक्षिणे इष्टायत्रवरः एतां (कुमारीं) बुबूर्षतितत्र (शुनो गतिः) अदक्षिणाशुभा ॥ २८ ॥

भाषा—जिस समय में कुमारी कांक्षिणी (अर्थात् वर को स्वीकार करने की इच्छा) हो उस समय में कुत्ते की (अपने दक्षिण भाग में) गति शुभ है जिस समय वर स्त्री को स्वीकार करने की इच्छा करे उस समय में कुत्ते की गति अपने वाम भाग में शुभ है ॥ २८ ॥

अब उपश्रुति शकुन को कहते हैं ।

शार्दूलविक्रीडितम् छन्द ॥ श्लोकः ॥

आरोप्याक्षतपूरितेगणपतिम्प्र-
स्थादिपात्रेशनैः संमार्जन्यववेष्ठि-
तेयुवतयस्तिस्रः सकन्या निशि ॥
निर्यातारजकादिवेश्मसुकरेकृत्वा-
तमभ्यर्चितंयांवांचंश्रृणुयुस्त-
दर्थसदृशीसिद्धिः किलोपश्रुतौ ॥२९॥

अन्वयः—अक्षतपूरितेप्रस्थादिपात्रेसंमार्जन्यववेष्टिते गणपतिंआरोप्यसकन्याः तिस्रः युवतयः निशिरजकादिवेश्म-सुशनैः निर्याताः (किंकृत्वा) तंअभ्यर्चितं गणपतिं करेकृत्वा यांवाचं शृणुयुः तदर्थशदृशीसिद्धिः (ज्ञेया कस्याम्) किल-उपश्रुतौ ॥ २९ ॥

भाषा—तंडुल से पूरण प्रस्थादि पात्र में ढांक के गणेशजी की मूर्ति को रखकर यह कन्या तीन स्त्रियों के सहित रात्रि में धोबी इत्यादिक के घर के समीप जाय (क्या करके) उस पूजे हुए गणेश जी के मूर्ति को हस्त में करके (उस घर में रहने-वाले मनुष्यों की) जो वाणी सुनने में आवे उसका

अभिप्राय जो हो उसके सदृश सिद्धि जाननी (अर्थात् जैसी वाणी शुभाशुभ सुनने में आवे वैसीही चिंतित कार्य की सिद्धि जाननी) निश्चय से इस उपश्रुति में ॥ २९ ॥

इत्यादि लक्षणों करके परीक्षा की गई कन्या
को वर स्वीकार करे और कन्या भी ऐसे
वर को स्वीकार करे ऐसे कहके कन्या
को वरण को नक्षत्र और फल
धर्म के अतिक्रमण को कहते हैं ।

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

श्रुतित्रिपूर्वावसुवह्निमित्र-
विश्वानिलर्क्षैर्वरणंकुमार्याः ॥
तच्चावमन्येतनचेतसापि-
यदाचरेयुः स्वकुलोक्तमार्याः ॥३०॥

अन्वयः—श्रुतित्रिपूर्वावसुवह्निमित्रविश्वानिलर्क्षैःकुमार्याः वरणं (स्यात्) यदा आर्याः (शुभफलं) स्वकुलोक्तं चरेयुः तत् (तदा) चेत् मनसापि न अवमन्येत ॥ ३० ॥

भाषा—श्रवण पूर्वा ३, धनिष्ठा, कृत्तिका, अनुराधा, उत्तराषाढ और स्वाती इन नक्षत्रों में कन्या

का वरण (अर्थात् पूजन स्वीकारादि) होता है वो यदि श्रेष्ठ जन अपनी स्वकुलोक्त परम्परा गति को करते है करें तब मन से भी नहीं मानना (अर्थात् तिसकी अवज्ञा मन से भी नहीं करना फिर साक्षात् क्या कहना है इस वजह से कुल धर्म अवश्य करना चाहिये उसमें आगम विरोध न करना चाहिये "देशचाराः कुलाचाराः शेतुविध्यविरोधिनः" यानी देशाचार कुलाचार इत्यादि जो कहे हैं उनके स्मरण से कुलाचार कर्तव्य हुआ (१) ॥ ३० ॥

अब वेदिका निर्माण और उसके प्रभृति काल को कहते हैं।

॥ रथोद्धता छन्दः ॥ श्लोकः ॥

वेदिकांविरचयेद्यथातथा
स्यादियंप्रविशतश्चदक्षिणे ॥
स्फूर्जानाश्रययवोप्तिवर्णिकः
षण्णवत्रिदिवसेषुनाग्रतः ॥ ३१ ॥

---

(१) यहां पर यों विशेष समझना चाहिये कि आचार्य का आशय यह है कि जो अपनी परम्परा से कुलाचार चला आता हो और श्रुति स्मृति विरुद्ध न हो लोक में प्रशंसनी यह

अन्वयः—वेदिकान्तथारचयेत् (तथा कथं) यथाऽयम् (वेदिकागृहं) प्रविशतः दक्षिणेस्यात् जनाश्रयजवोप्तिवर्णिकः अग्रतः षसवत्रिदिवसेषु न स्युः ॥ ३१ ॥

भाषा—वेदी तैसी बनानी चाहिये (कैसी) जैसी यह (वेदिका गृह में) प्रवेश करनेवाले पुरुष के दाहिने भाग में हो माड़ा वो जव बोना और रङ्ग बल्यादि (अर्थात् कलशादि रंगना अंग का भूषणादि जितनी कृत्य हैं विवाह की) यह सब पहले (अर्थात् लग्न दिन आरम्भ) से छः, नव, तीन इन दिनों में नहीं होते हैं (और विवाह से पीछे) इन दिनों में सबों का उठाना भी नहीं चाहिये परन्तु कोई आचार्य नवां दिनशुभ कहते हैं यह व्यवस्था देशाचार फरक है ॥ ३१ ॥

अब इन्द्राणी के पूजनादिक को कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

कन्यकोक्तविधिवत्पुलोमजा-

वह कुलाचार अवश्य ही करना चाहिये और यो कुलाचार श्रुति स्मृति विरुद्ध है और लोक में न तो प्रसंशनोय है और न तो उसको छोड़न से लोक में निन्दा है ऐसे कुलाचार परम्परा गत को छोड़ देना योग्य है ॥

पूजनं सयुवतिः समाचरेत्
घ्नन्ति चाशुभमविघ्नमातरो-
मातृयज्ञकुलकर्मशान्तयः ॥३२॥

अन्वयः—सयुवतिः कन्यकाउक्तविधिवत् पुलोमजा-पूजनं समाचरेत् मातृयज्ञकुलकर्मशान्तयः अविघ्नमातरः अशुभं च घ्नन्ति ॥ ३२ ॥

भाषा—(सौभाग्यवती) स्त्री के सहित कन्या उक्त (अर्थात् सौनकादि मुनियों की जो कही) विधि की नाईं इन्द्राणी का पूजन करना (अब मातृकादि पूजन कहते हैं उसमें माता दो प्रकार की होती हैं उसमें एक तो दैव्य और दूसरी मानुष्य तिसमें गौरी पद्मा ब्राह्मी, माहेश्वरी इत्यादि ये दैव्य माता हैं और मातृ मातामही इत्यादि ये मानुष्य कही जाती हैं) मातृ यज्ञ कुलोक्त कर्म शान्तियां (अर्थात् कुल देवता आराधनादि सब अविघ्न मातर अशुभ को नाश करती हैं और यहां परन्तु शब्द से पुलोमजापूजन भी अशुभ को नाश करता है इस वजह से पुलोमजा मातृका पूजनादिक अवश्य कर्तव्य हुआ यानी करना चाहिये) ॥ ३२ ॥

एतत्प्रसंगात् हेशिष्याः देहचेष्टांश्चर्व.मितु । यांचेष्टां च समालोक्यमृत्युंजानाति योगवित् ॥ १ ॥ देवमार्गंध्रुवंशुक्रं सोमच्छायामरुन्धतीम् ॥ योनपश्येन्नजीवेत्सनरः संवत्सरात्परम् ॥ २ ॥ अरश्मिबिम्बंसूर्यस्यवन्हिंचेवांशुमालिनम् ॥ दृष्ट्वैकादशमासान्नरस्त्वूर्ध्वंनजीवति ॥ ३ ॥ सुवर्णवर्णान्वृक्षांश्चनवमासान्सजीवति ॥ स्थूलः कृशः कृशः स्थूलोयोऽकस्मादेवजायते ॥४॥ प्रकृतिश्चविवर्तेततस्यायुश्चाष्टमासिकम् ॥ खण्डंयस्यपदंपार्ष्णयोः पादस्याग्रेतथाभवेत् ॥ ५ ॥ पांसुकर्दमयोर्मध्येसप्तमासान्सजीवति ॥ कपोतगृध्रोलूकाश्चवायसावापिमूर्धनि ॥ ६ ॥ क्रव्यादोवाखगोलीनः षण्मासायुःप्रदर्शकाः ॥ हन्यतेकाकपंक्तीभिः पांसुवर्षेणयोनरः ॥ ७ ॥ स्फुरेच्चयस्यवैषमंस्तनादूर्ध्वंमुरःस्थलम् ॥ तस्यापिपञ्चभिर्मासैर्विद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ॥ ८ ॥ स्वांछायांचान्यथादृष्ट्वाचतुर्मासान्सजीवति ॥ अनभ्रे विद्युतंदृष्ट्वादक्षिणांदिशमाश्रिताम् ॥ ९ ॥ योनिशीन्द्रधनुर्वापिजीवितंद्वित्रिमासिकम् ॥ घृतेतैलेऽथवादर्शेतोयेवाप्यात्मनस्तनुम् ॥ १० ॥ यः पश्येदशिरस्कान्नमासार्धंनसजीविति ॥ यस्यस्थस्थिसमोगन्धोगात्रेशवसमोऽपिवा ॥११॥ तस्यार्धमासिकंज्ञेयंनरस्य पुत्र जीवितम् ॥ यस्यवैस्नातमात्रस्यहृत्पद्ममवशुष्यति ॥ १२ ॥ पिबतश्चजलंशोषोदशाहंसोऽपिजीवति ॥ ऋक्षवानरयुग्मस्थोगायन्योदक्षिणांदिशम् ॥१३॥ स्वप्नेप्रयातितस्यापिमृत्युस्तत्कालमृच्छति ॥ रक्तकृष्णांबरधरागायन्तीहसतीचया ॥ १४ ॥ दक्षिणाशांनयेन्नारीस्वप्नेसोऽपिनजीवति ॥ नग्नंक्षपणकंस्वप्नेहसमानंप्रपश्यति ॥ १५ ॥ यएवन्तस्यचक्षिप्रंविद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ॥ आमस्तकतला-

द्यस्तु निमग्नः पङ्कसागरे ॥ १६ ॥ स्वप्नेपश्यत्यथात्मानं
नरः सद्योम्रियेतसः॥ कोशागारं रथागारं धक्ष्यन्तंस्वकंशिरः
॥१७॥ दृष्ट्वास्वप्नेदशाहे न मृत्युरेव न संशयः॥ करालैर्विकटैः
कृष्णैः पुरुषैरुद्यतायुधैः॥१८॥ पाषाणैस्ताडितः स्वप्नेसद्यो-
मृत्युमवाप्नुयात्॥ नात्मानं परनेत्रस्थमीक्षतेनसजीवति
॥१९॥ पिधायकर्णौनिर्घोषंनशृणोत्यात्मसम्भवम्॥ स्वभाव-
वैपरीत्येनवर्ततेनसजीवति॥२०॥ देवानार्चयतेविप्रान्गुरून्
वृद्धांश्चनिन्दति॥ मातापित्रोरसत्कारंजामातॄणांकरोतियः
॥२१॥ योगिनांज्ञानविदुषांमन्येषांचमहात्मनाम्॥ प्राप्तकालः
सपुरुषोनतुजीवतिवैक्षणम्॥२२॥ योगिनासततंयत्नादरिष्टानि-
चपुत्रक॥ विलोक्यस्वासनेस्थित्वाध्यातव्यंपरमंपदम्॥२३॥
सारभूतमुपासीत ज्ञानं यत्कार्यसाधनम्॥ इदंज्ञेयमिदंज्ञेय-
मितियस्तृषितश्चरेत्॥२४॥ अपिकल्पसहस्रायुर्नसज्ञान-
मवाप्नुयात्॥ त्यक्तसंगोनिराहारोजितक्रोधोजितेन्द्रियः
॥२५॥ विषयेभ्योनिवर्त्याशुमनोध्यानेनिवेशयेत्॥ एवं यः
कुरुतेज्ञानीसाम्बशिवपदंव्रजेत्॥२६॥

इति श्री काशिखण्डान्तर्गतभृगुक्षेत्रसमीपदेवडीग्रामनिवासिशा-
ण्डिल्यवंशावतंसविविधशास्त्रपरमपण्डितश्रीलालबहादुर-
त्रिपाठिपुत्रज्योतिर्वित्पण्डितशिवदत्तत्रिपाठिविरचि-
तायां विवाहवृन्दावनसान्वयशिवकरीभाषाटीकायां
मिश्राध्यायः चतुर्दशः॥१४॥



अथ वधूवरप्रश्नाध्यायः १५

अब वधूवरप्रश्नाध्याय को आरम्भ करते हैं तिसमें पहले वधू प्रश्न को कहते हैं ।

॥ वसन्ततिलका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

कर्मायसूनुसहजस्मरगोमृगाङ्कः
स्त्रीपुम्ससंगमयितायदिजीवदृष्टः ॥
स्वर्क्षाणिशुक्रशशिदृष्टियुतानिकन्या-
लब्ध्यैवधूगृहदृकाणनवांशकावा ॥ १ ॥

अन्वयः—यदिमृगाङ्कः जीवदृष्टः कर्मायसूनुसहजस्मरगः तदास्त्रीपुंससंगमयिता (स्यात्) स्वर्क्षाणिशुक्रशशिदृष्टियुतानि कन्यालब्ध्यै (भवन्ति) वा वधूगृहदृक्काणनवांशकाः (यत्रगताः शुक्रशशिदृष्टियुताः कन्यालब्ध्यै भवन्ति) ॥ १ ॥

भाषा—(कोइ प्रश्न करे कि हमको इस कन्या का लाभ होगा या नहीं उस प्रश्न काल के लग्न से) जो चन्द्रमा बृहस्पति से दृष्ट १० । ११ । ५ । ३ । ७ इन स्थानों में प्राप्त हों तब स्त्री पुरुष को समागम करते हैं (अर्थात् कन्या लाभ करते हैं यह योग कन्या के वर लाभ प्रश्न में भी समझना) अपनी राशि कर्क तुला वृष शुक्र चन्द्रमा से दृष्टियुक्त

लग्न गत हो तो कन्या लाभ के लिये (होती है) अब योगान्तर को कहते हैं) अथवा स्त्री राशि का द्रकाण या नवांशक (लग्न गत शुक्र चन्द्रमा से दृष्ट युक्त हो तो कन्या लाभ के वास्ते होता है ॥ १ ॥

फिर योगान्तर को कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

युग्मर्क्षगौशशिसितौद्विपदाङ्गनाशे
स्यातान्तदाप्तिपिशुनौतनुमीक्षमाणौ ॥
नारीनवांशमुदितंखचराः परेपि
स्त्रैणर्क्षगाविलसदुज्ज्वलवीर्यभाजः ॥२॥

अन्वयः—युग्मर्क्षगौशशिसितौद्विपदांगनांशेतनुं ईक्षमाणौ तदाप्तिपिशुनौस्यातां उदितं नारीनवांशं (शशिसितौईक्षमाणौ तत् आप्तिपिशुनौस्तः) परेपिखचराः स्त्रैणर्क्षगाविलसत् उज्ज्वलवीर्यभाजः (कन्याप्रसूतिसूचकाः भवन्तिः) ॥ २ ॥

भाषा—समराशिस्थित चन्द्रमा शुभ द्विपदांग नाश (अर्थात् द्विपद राशियों में कन्या राशि के नवांश) में बैठे लग्न को देखते हों तो दोनों तब स्त्रीप्राप्ति के सूचक होते हैं (२ योगान्तर कहते हैं) लग्नगत स्त्रीनवांश को (चन्द्र शुक्र देखते हों तो स्त्रीलाभ सूचक होता है । ३ योगान्तर कहते

हैं) पर (अर्थात् शुक्र शनैश्चर को छोड़ के) यह निश्चय से स्त्रीराशि में शोभायमान प्रकाशमान सबल हो (लग्नगत नारी नवांश को देखते हों तो कन्याप्राप्तिसूचक होते हैं यह हर एक योग में अनुवर्तन करना) ॥ २ ॥

अब कन्या के वरलाभ प्रश्न को कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

एवंनरानदृक्काणनवांशदृग्भिः
पुंस्खेचरैरुपनमन्तिनितम्बिनीनाम् ॥
यल्लिङ्गिबालकपशुप्रभृतींगितंस्या-
त्प्रश्नक्षणेतदुतथैववधूवरस्य ॥३॥

अन्वयः—एवं नराः नितंबिनीनां उपनमन्ति (कैः) नरदृक्काणनवांशदृग्भिः पुंस्खेचरैः प्रश्नक्षणेलिङ्गिबालकपशु प्रभृति यत् इंगितं (चेष्ठितं) तदुवधूवरस्य तथैवस्यात् ॥३॥

भाषा—एवं (अर्थात् यह जो पहले कहा है स्त्रीणि शुक्रशशिदृष्टियुतानि इत्यादि प्रकार से) पुरुष स्त्री को लाभ करता है (के करके) पुरुष राशि का दृकाण वो नवांशदृष्टि पुरुष ग्रह करके (स्पष्टाशय यह है कि स्त्रीग्रह शशि शुक्र हैं तो जहां पर शशि शुक्र को कहा है वहां पर पुरुष ग्रह

ग्रहण करना और जहां पर स्त्री द्रेकाण कहा है वहां पर नर द्रेकाण जानना और जहां पर स्त्री नवांश कहा है वहां पर नर नवांश जानना और जहां पर स्त्री राशि कही है वहां पर नर राशि जानना इस प्रकार से उक्त योग करके कन्या के वर की उपलब्धि जाननी (अर्थात् कन्या वर को प्राप्त करती है। अब निमित्त को कहते हैं) प्रश्न काल में कापालिक बालक पशु (अर्थात् छाग, वृष, घोड़ा आदि) प्रभृति ग्रहण से भिक्षुक उन्मत्त कुषडादिक का ग्रहण करना इन सबों का जो चेष्टित हो उस वधू वर के तैसा होता है उ शब्द यहां पर अव्यय और निश्चयार्थ में जानना ॥ ७ ॥

अब स्त्री पुरुष के प्रश्न काल में शुभाशुभ योग को कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

प्रश्नोदयाद्मृतरोचिषिषण्मृतिस्थे
मूर्तौचतत्रमदनस्थशिचावनेये ॥
तन्वस्तयोरशुभसङ्गतयोर्वरस्य
नाशःक्रमाद्वसुमहीमुनिसंमितेऽब्दे ॥४॥

अन्वयः—प्रश्नोदयात् अमृतरोचिषि (चन्द्रमसि) षड्मृतिस्थे (इत्येकोयोगः) तत्र च (चन्द्रमसि) मूर्तौमदनस्पृशि अवनेये च (द्वितीयो योगः) तन्वस्तयोः अशुभसंगतयोः अयं (त्रितीयो योगः एषुयोगेषु) क्रमाद्वसुमहीमुनिसंमितेऽद्वेवरस्यनाशः (स्यात्) ॥ ४ ॥

भाषा—प्रश्न काल के लग्न से चन्द्रमा ६ । ८ में हो (तो यह चन्द्रकृत एक योग हुआ) लग्न में चन्द्रमा भौम कृत सप्तम में मङ्गल हो तो यह चन्द्र द्वितीय योग हुआ) लग्न सप्तम में पाप ग्रह है (तो पापग्रहकृत तृतीय योग हुआ) इन योगों में क्रम से ८ । १ । ७ इतने परिमित वर्ष में वर का नाश होता ॥ ४ ॥

॥ श्लोकः ॥

जामित्रगौविधुसितौविधवामसाध्वीं
सौरिः कुजोसुरमहेज्यबुधौधनाढ्याम् ॥
दीर्घायुषंवपुषिसुप्रसवांप्रसूतौ
स्त्रीजातकोक्तमखिलंखलुचिन्त्यमत्र ॥५॥

अन्वयः—जामित्रगौविधुसितौ (वधूं) विधवां (कुरुतः) सौरिः कुजः (जामित्रगः) असाध्वीं (कुरुतः) असुरमहेज्यबुधौधनाढ्यां (कुरुतः) वपुषिदीर्घायुषंप्रसूतौसुप्रसवां

(कुरुतः) अत्र (अस्मिन् प्रश्नकाले) स्त्रीजातकोक्तं अखिलं (शुभाशुभं) चिन्त्यम् ॥ ५ ॥

भाषा—सप्तम में चन्द्रमा शुक्र स्त्री को विधवा करते हैं शनि मङ्गल दुश्चारिणी करते हैं लग्न में (शुक्र बुध) स्त्री को दीर्घायु करते हैं पञ्चम में शुक्र बुध) सुन्दर सन्तान को करते हैं इस वधू वर के प्रश्न काल में स्त्री जातकोक्त संपूर्ण शुभाशुभ फल का विचार करना ॥ ५ ॥

इस प्रकार कन्या वर की उपलब्धि को करके
दलन कंडनादि विवाह कृत्य से शुभ
काल को कहते हैं।

॥ द्रुतविलम्बितं छन्दः ॥ श्लोक ॥

भतिथिवारफलानिपदेपदे
विरचितानिपरैरितिनोचिरे ॥
सकलकर्मसुयस्तदुपक्रमः
सहिविवाहभएवशुभेदिने ॥ ६ ॥

अन्वयः—सकलकर्मसु भतिथिवारफलानि परैः पदे पदे विरचितानि इति (हेतोः अस्माभिः) न ऊचिरे (इतीरितवचं)

हि (यस्मात् कारणात्) तत् यः उपक्रमः (आरम्भः) स विवाहभे एव शुभे दिने स्यात् ॥ ६ ॥

भाष—संपूर्ण (दलन कंडनादि) कर्म में नक्षत्र तिथि वार फल को अन्य आचार्यों ने पद पद (अर्थात् श्लोक के चरण २) में फल को कहा है यानी थोड़े कार्य में भी फरक २ फल को विशेष भाव में कहा है इस कारण से हमने नहीं कहा किस कारण से जिस कारण से तिन सब कर्मों का जो आरम्भ है वह विवाह नक्षत्र में निश्चय से शुभ दिन (अर्थात् व्यतीपात विष्ट्यादि महादोष रहित) में होता है (१) ॥ ६ ॥

अब अपने किये हुए इस विवाह पटल के पूर्व विशेष को कहते हैं ।

॥ वसन्ततिलकं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

प्रायोविवाहपटलंतटलंबमान-

(१) रत्नमाला में लिखा है "विवाहकृत्यंनिखिलं विवाहभे विलोकयेन्नाप्यबलंहिमद्युते । नचत्रिषष्ठोपि च वारकः शुभः ॥" अर्थात् सम्पूर्ण विवाह कृत्य विवाह नक्षत्र में होता है यहां पर चन्द्रबल नहीं देखना तीसरा छठां वार में शुभ नहीं है ॥

स्तंवोपमोनसहतेनयचालनानि ॥
वृन्दावनेपरमतातपपीड्यमान-
वृन्दावनेनुरमरतांमिहसन्मातिश्रीः॥७॥

अन्वयः—प्रायः विवाहपटलं (विवाहसमूहः) नयचालनानि न सहते (कीदृशः) तटलंवमानस्तंवोपमः (अतः) इह (मयोक्तं) वृन्दावने (नाम्निविवाहपटले) अनुरमतां सन्मतिश्रीः (कथम्भूते) परमते आतपीपोड्यमानवृन्दावने ॥

भाषा—बाहुल्य करके विवाह फल समूह तर्क से चल विचल नहीं हो सकता है (कैसे जैसे) द-रिया के किनारे बालुका में गड़ा हुआ स्तम्भ स्थिर होने में समर्थ नहीं होता इस कारण से इस हमारे उक्त विवाह वृन्दावन (नाम ग्रन्थ) में विद्वानों की सुन्दर मति शोभित होती है (कैसी है) पर का जो मत उष्ण तिमसे पीड्यमान जनों का सुख देने-वाला (जैसे) घाम में पीड्यमान पुरुष वन में जाकर सुख से रमण करते हैं तैसे पर के मतों से पीड़ित जो पुरुष हैं इस विवाह वृन्दावन में सुख से रमण करते हैं (अर्थात् इस विवाहवृन्दावन को जान करके निशङ्क विचरते हैं, अन्त में श्रीप्रयोग ग्रन्थसमाप्ति-षष्टार में है) ॥ ७ ॥

इति श्रीकाश्मीरखण्डान्तर्गतदेवडीहग्रामनिवासिशाण्डिल्यवंशाव-
तंसविविधशास्त्रपारङ्गतपण्डितश्रीलालबहादुरत्रिपाठिपुत्र-
ज्योतिर्वित्पण्डितशिवदत्तत्रिपाठिविरचितायां
विवाहवृन्दावनसान्वयशिवकरीभाषाटी-
कायां वधूवरप्रश्नाध्यायः
पञ्चदशः १५

अथ स्ववंशवर्णनाध्यायः १६

अथ अपना वंश वर्णन पूर्वक ग्रन्थालङ्कार को कहते हैं ।

॥ उपजातिका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

अभूद्भरद्वाजमहर्षिवंशे
विश्वावतंसेश्रुतितत्त्ववेदी ॥
औदीच्यचारित्रपथप्रवर्ती
जनार्दनोयाज्ञिकचक्रवर्ती ॥ १ ॥

अन्वय—श्रुतितत्त्ववेदी औदीच्यचारित्रपथप्रवर्ती याज्ञिकचक्रवर्ती भरद्वाजमहर्षिवंशे विश्वावतंसे जनार्दनः अभूत् ॥ १ ॥

भाषा—वेद के यथार्थ तत्व को जाननेवाला औदीच्य (अर्थात् औदीच्य जातीय जन, उस देश में

ज्ञातीय अनेक प्रकार के प्रसिद्ध हैं उन) के प्रचार मार्ग मे प्रवर्तक (अर्थात् इसमें स्वधर्म उपासक शुचि हुआ) यज्ञ में चक्रवर्ती (यानी श्रेष्ठतर) भरद्वाज महाऋषि के गोत्र में संसारपूज्य जनार्दन (नाम से) हुए ॥ १ ॥

॥ श्लोकः ॥

अस्तिश्रियादित्य इति स्मतस्य
सूनुः श्रियादित्य इति द्वितीयः ॥
त्रिस्कन्धपारङ्गतरङ्गमल्ल-
स्तदात्मजोराणगइत्युदीर्यै ॥ २ ॥

अन्वयः—तस्य (जनार्दनस्य) द्वितीयः सूनुः श्रियादित्य इति अस्तिस्म (आसीत्) (कइव) श्रिया आदित्यइव तत् आत्मजः उदीर्यैराणग इति आसीत् (कथम्भूतः) त्रिस्कन्धपारंगतरंगमल्लः ॥ २ ॥

भाषा—तिस जनार्दन के द्वितीय पुत्र श्रियादित्य नाम से हुए (किसकी नाईं) दीप्ति में सूर्य की नाईं उस श्रियादित्य के पुत्र कथनीय में राणग नाम से हुए (वह कैसे हैं कि) होरा गणित संहिता के अशेष ज्ञाता की युद्धभूमि में मल्ल । इससे यह सिद्ध हुआ

को त्रिस्कंध ज्योतिष शास्त्र जाननेवाले के पराजय क्रात् हैं (अर्थात् पराजय किया है) ॥ २ ॥

॥ वसन्ततिलका छन्दः ॥ श्लोकः ॥

श्रीकेशवः सुकविरध्ययनाध्वनीन-
व्यूहान्प्रतर्पयितुमर्थपयः प्रवाहैः ॥
दैवज्ञराणगसुतः सुतपः श्रयेस्मि-
न्वृन्दावनेमुनिगवीनिवहंदुदोह ॥३॥

अन्वयः—(अस्य) दैवज्ञराणगसुतः श्रीकेशवः सुकविः अस्मिन्वृन्दावनेसुतपःश्रयेमुनिगवीनिवहंदुदोह (किमर्थम्) अध्ययनाध्वनीनव्यूहान् अर्थपयः प्रवाहैः प्रतर्पयितुम् ॥ ३ ॥

भाषा—यह ज्योतिर्विद्राणग के पुत्र श्रीकेशव (नाम से) शोभन कवि इस वृन्दावनसुतपश्रयः (अर्थात् सुन्दर तपस्वी जनों से सेव्यमान) में मुनिगवी निवह को दुहते भये (स्पष्टाशय—यह है कि बनों में गइयां रहती हैं तो इस वृन्दावन में गौवों की तरह मुनि लोग वास करते हैं उन मुनियों के समूह को दुग्धवान् की नई दुहते भये किस वास्ते)अध्ययनाध्वनीन (अर्थात् मार्गशील यानी गुरु के पास पढ़ने ढब जाननेवाला तिनके) समूह को अर्थ पय के नियर (अर्थात् अर्थ यह है दूध उसके

प्रवाह करके तृप्ति के लिये तिस तरह भी पुण्य-वान् पुरुषोंसे सेव्यमान इस वृन्दावन नाम ग्रन्थ में अन्य ग्रन्थ अध्ययन करके खिन्न है अर्थप्रवाह करके प्रसन्न के लिये मुनियों का हमने दुहा यानी मुनियों के वचन से सार पदार्थ को ग्रहण किया ॥ ३ ॥

इस कारण से विद्यावानों को प्रसन्नता
हुई मन्दबुद्धिवालों को नहीं ऐसा
अभिप्राय कहते हैं ।

॥ द्रुतविलम्बितं छन्दः ॥ श्लोक ॥

अबहुदृष्टिधियः कियदप्यदः
पदगभीरमधीरभिरंस्यते ॥
विशदशास्त्रधियांत्विदमेकदा
श्रुतिगतंरसनासुविवृत्स्यति ॥ ४ ॥

अन्वयः—अबहुदृष्टिधियः अदः कियत् अधीः पदग-भीरम् अभिरंस्यते (अभिरामम् प्राप्स्यति) विशदशास्त्र धियान्तु इदंएकदाश्रुतिगतं (कर्णप्राप्तं) रसनासु (जिह्वासु) विवृत्स्यति (विवृद्धिप्राप्स्यति) ॥ ४ ॥

भाषा—थोड़ा शास्त्र देखनेवाले को निश्चय करके कियत् (अर्थात् कठिन शब्द) प्राप्त करता है

अधिक शास्त्र देखनेवाले तो इसको एक बार सुन कर जिह्वा वृद्धि को प्राप्त होतें हैं (१) ॥ ४ ॥

इति श्री काशिखण्डान्तर्गतभृगुक्षेत्रसमीपदेवडीहग्रामनिवासिशाण्डिल्यवंशावतंसविविधशास्त्रपरमपण्डितश्रीलालबहादुरत्रिपाठिपुत्रज्योतिर्वित्पण्डितशिवदत्तत्रिपाठिविरचितायां विवाहवृन्दावनसान्वयशिवकरीभाषाटीकायां स्ववंशवर्णनाध्यायः षोडशः ॥ १६ ॥



अथ लग्नशुद्ध्यध्यायः १७

स्मरण के लिये पुनरुक्ति कहते हैं।

॥ वंशस्थवृत्तं छन्दः ॥ श्लोकः ॥

ध्रुवानुराधामृगमूलरेवती-
करंमघास्वातिरदूषणोगणः ॥
रवेरमीनामकरादिषड्गृही
करग्रहेमङ्गलकृन्मृगीदृशां ॥ १ ॥

(१) भर्तृहरि ने कहा है "अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यतेविशेषज्ञः । ज्ञानलवदुर्विदग्धंब्रह्मापि तं नरं न रंजयति ॥" (अर्थात् मूर्ख सुख से आराधनीय होता है और पण्डित अत्यन्त सुख आराध्य होता ज्ञान अंश से दुर्विदग्ध पुरुष का ब्रह्मा भी नहीं रंजन करते हैं ॥

अन्वयः—ध्रुवानुराधामृगमूलरेवतीकरंमघास्वातिः अदूषको गणः रवेः अमीनामकरादिषड्गृहीमृगीदृशांकरग्रहेमङ्गलकृत् (स्यात्) ॥ १ ॥

भाषा—ध्रुव संज्ञक नक्षत्र उत्तरा ३, रोहिणी, अनुराधा, मूल, रेवती, हस्त और स्वाती ये ग्यारह नक्षत्र दोष रहित हों (अर्थात् पाप वेधादि दोष से रहित हों) और सूर्य मीन छोड़ कर मकरादि छः गृहों में हो तो स्त्री का विवाह मङ्गल करनेवाला होता है ॥ १ ॥

अब तीन श्लोकों से नक्षत्रशुद्धि को कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

क्रूराज्झितं द्विः शशिभोगतोर्वा-
क्तदाप्यमाद्यं च शुभं न भं स्यात् ॥
त्र्यष्टार्कविंशं च कुजार्किभानु-
स्वर्भानुतः सत्रिविधाद्भुतं च ॥२॥

अन्वयः—क्रूरोज्झितम्भं तत् (तेनक्रूरेण) आप्यम् (प्राप्यम्) आद्यं (युक्तं) च शुभं न स्यात् कुजार्किभानुस्वर्भानुतः (सकाशात् क्रमेण) त्र्यष्टार्कविंशं च सत्रिविधाद्भुतं द्विशशिभोगतोर्वाक् च (न शुभं स्यात्) ॥ २ ॥

भाषा—पापग्रह से त्यक्त वा भोग्य वा युक्त न-

अच्छ शुभ नहीं है (अब लता कहते हैं) मंगल शने-श्चर, सूर्य, राहु ये क्रम से तृतीय, अष्टम, द्वादश, और बीसवें नक्षत्र को लता मारते हैं और तीन प्रकार के उत्पात (भौम, दिव्य, अन्तरिक्ष से सहित जो नक्षत्र हैं वे दो बार चन्द्र भोग से पहले (अर्थात् ये सब दोष युक्त नक्षत्र को चन्द्रमा दूसरी आवृति में जब तक न पहुंचे तब तक) शुभ नहीं है ॥ २ ॥

अब चंडायुधादि दोष कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

वैसाहगंशूव्यसमाप्तिसाग्रं
संक्रान्तिसाम्यंखलवेधवच्च ॥
स्वाशश्रमोभान्वभिरोपुनर्मू-
खरेमृहाणांत्रिभिरुत्तरैः स्यात् ॥३॥

अन्वयः—वैसाहगंशूव्यसमाप्तिसाग्रं संक्रान्तिसाम्यं खलवेधवत् च (त्यजेत्) स्वाशश्रमोभान्वभिरोपुनर्मूखरे मृहाणांत्रिभिः उत्तरैः (मिथः वेधः) स्यात् ॥ ३ ॥

भाषा—वैधृत, साध्य, हर्षण, गण्ड, शूल और व्यतीपात इन योगों का अवसान शेष सहित में

क्रान्तिसाम्य चन्द्र सूर्य का होता है (स्पष्टाशय—यह है इन योगों के अन्त में कुछ काल जब रहता है तो चन्द्र सूर्य करके सहित वह काल जिस नक्षत्र में समाप्त हो वह नक्षत्र महापात कहा जाता है) उस क्रान्तिसाम्य को पापग्रह वेधयुक्त को नाई त्याग करना उसे वेध भी कहते हैं स्वाती, शतभिष, श्रवण मघा, भरणी, अनुराधा, अभिजित्, रोहिणी, पुनर्वसु, मूल, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, मृगशिरा, उत्तराषाढ़, हस्त और उत्तराभाद्रपद इन नक्षत्रों करके परस्पर वेध होता है (अर्थात् एक नक्षत्र पर पापग्रह एक पर चन्द्र के होने से वेध होता है यहां पर आदि अक्षर से पूर्ण नक्षत्र नाम जानना) ॥३॥

अब एकार्गलादिक को कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

एकार्गलः साभिजितीन्दुतोर्कः
समेस्तियोगेष्वशुभाह्वयेषु ॥
चतुर्दशंचेन्दुभमर्कधिष्ण्या-
द्वितीयमुक्तोद्वहनर्क्षशुद्धिः ॥ ४ ॥

अन्वय—अशुभाह्वयेषुयोगेषु (सत्सु) इन्दुतः अर्कः

साभिजिति समे (नक्षत्रे भवति तदा) एकार्गलोऽस्ति अर्कधिष्ण्यात् चतुर्दशं इन्दुभं च (अशुभं स्यात्) इति इयं उद्वाहनक्षत्रशुद्धिः उक्ता ॥ ४ ॥

भाषा—दुष्ट नाम योगों में चन्द्र नक्षत्र से सूर्य अभिजिति के सहित सम नक्षत्र में हों तो एकार्गल होता है (अर्थात् व्याघात, शूल, परिघ, व्यतिपात, विष्कुम्भ, गण्ड, अतिगण्ड, वैधृति और वज्र इन अशुभ नाम योगों में कोई एक योग चन्द्रमा के नक्षत्र से अभिजिति के सहित सूर्य नक्षत्र पर्यन्त गणना करना जो युग्म संख्या हो तब एकार्गल दोष होता है वह शुभ नहीं है अब सम्प्योदित नक्षत्र कहते हैं) सूर्य के नक्षत्र से चौदहवां नक्षत्र अशुभ है (यही विवाहनक्षत्रशुद्धि कही गई) ॥ ४ ॥

अब लग्नशुद्धि को कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

षट्त्र्यायेष्वशुभाः शुभायनिधन-
द्यूनांत्यवर्ज्यंपरेत्र्यायार्थेषुशशी-
मृतौशानितमःसूर्याः परे भंगदाः॥
क्रूरद्यूनवृतान्वितेशशितनू अस्ते

सितज्ञौविधुंलग्नसोमसिताधिपा
द्विषि सितः सेन्दुर्विनष्टांशपः ॥ ५ ॥

इस श्लोक का अन्वय भाषा पहले ग्रह योगादिबलाध्याय में लिख आये हैं ।

अब नवांशशुद्ध्यादिक को कहते हैं

॥ श्लोकः ॥

अंशाः षट्त्रिनवाद्रयस्तदधिपे
लग्नांशयोर्द्वादशाद्वित्र्यष्टाम्बुनल-
ग्नमस्तलवपेतत्सप्तमाभ्यांतथा ॥
गंडातेषुचवैधृतावुभयतः संक्रा-
न्तियामद्वयेयामार्धव्यतिपात-
विष्टिकुलिकेमासेह्निचोनाधिके ॥ ६ ॥

अन्वयः—अंशाः षट्त्रिनवाद्रयः (शुभाः) तदधिपेलग्नांशयोः द्वादशद्वित्र्यष्टाम्बु न लग्नं (कार्यं) अस्तपलवेतत्सप्तमाभ्यां तथा (द्वादशद्वित्र्यष्टाम्बुनलग्नंकार्यंत्रिविधेषु) गण्डांतेषुवैधृतौ च संक्रान्तेः (सकाशात्) उभयतः यामद्वये (नलग्नंकार्यं) यामार्धव्यतिपातविष्टकुलिके ऊनाधिकेमासे अह्नि च न (लग्नंकार्यमितिप्रत्येकं सम्बन्धः) ॥ ६ ॥

भाषा—नवांश कन्या, मिथुन, धनु, तुला, शुभ

है इसका स्वामी लग्न से या नवांश से १२।२।३।८ इन स्थानों में स्थित हो तो लग्न नहीं देना अस्तांशपति लग्न सप्तम से नवांश सप्तम में (अर्थात् लग्न कुण्डली में लग्न से जो सप्तम है और नवांश कुण्डली में जो नवांश से सप्तम है उसमे) भी तैसे हो (१२।२।३।८ स्थान में) हो तौभी लग्न न देना तीन प्रकार जो गण्डान्त है और वैधृति जो है और संक्रान्ति से दोनों तरफ १६ घटी और अर्द्धयाम व्यतिपात, भद्रा, कुलिक, क्षयमास, अधिक मास, क्षय दिन अधिक दिन इत्यादिकों की प्राप्ति में लग्न नहीं करना (अर्थात् इन दोषों में से किसी एक भी दोष होने से लग्न में विवाहादि शुभ कार्य नहीं करना चाहिये) ॥ ६ ॥

अब अष्टम लग्नादि दोष को कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

जन्मर्क्षाज्जन्मलग्नान्निधनविधनते
अष्टमद्वादशाभ्यांलग्नेनतत्स्वामितत्स्थै
रपिवपुषिखगैस्तद्ग्रहांशैश्चतैस्तः ॥
अस्तेशारेर्नवांशेव्यसनमसुभयं-

नाडिवेधेषडष्टक्षेत्रेशानामसख्ये
दनुजनरगणेवाऽर्कजीवेन्दुशुद्धौ ॥ ७ ॥

अन्वयः—जन्मर्क्षात् जन्मलग्नात् अष्टमद्वादशाभ्यां लग्ने (स्थिताभ्यां क्रमेण) निधनविधनते (स्तः) तत् स्वामीतत्स्थैः अपि वपुषिस्थितैः (क्रमेणनिधनविधनतेस्तः) तद्गृहांशैः खगैः वपुषि गतैः च तेस्तः अस्तेशारैः नवांशे (लग्नगतेसति) व्यसनं स्यात् नाडिवेधे असुभयं षडष्टक्षेत्रेशानां असख्ये (असुभयं) दनुजनरगणे वा अर्कजीवेन्दु शुद्धौ (च असुभयं स्यात्) ॥ ७ ॥

भाषा—जन्मराशि व जन्मलग्न से अष्टम व द्वादश राशि लग्न गत होने से निधन विधन (अर्थात् जन्मराशि से या जन्मलग्न से अष्टम राशि जो लग्न में हो तो मरण और द्वादश राशि लग्न में हो तो धन रहित) होता है और अष्टम द्वादश राशियों का स्वामी अष्टम द्वादश में स्थित हो निश्चय से लग्न में हो तौभी निधन व धनरहित करते हैं (अर्थात् अष्टम स्थानाधिपति अष्टम में स्थित हो तो निधन और द्वादश स्थानाधिपति द्वादश में हो तो विधनता को करते हैं) अथवा उक्त ग्रहों का जो गृह है उसका नवांश जो लग्न में हो तौभी निधन विधनता को करते हैं (अर्थात् अष्टम राशि या

अष्टम स्थान ग्रह को राशि या नवांश लग्न में हों तो निधन करता है द्वादश राशि या द्वादशस्थ ग्रह को राशि या नवांश लग्न में हों तो धनरहित करता है) सप्तम स्वामी के शत्रु का नवांश लग्न गत हो तो व्यसन (बुरे कर्म) को करने वाला होता है नाडि वेध में मरण होता है षडाष्ट राशियों के स्वामी में वैर होने से मृत्यु होती है राक्षस मनुष्य गण में भी प्राण भय होता है और सूर्य बृहस्पति चन्द्रमा के गोचर में बल अलाभ होने से मरण होता है ॥७॥

इस प्रकार लग्नांशशुद्धि जान कर तिसपर से काल जानने के वास्ते पलभा चर उदयमानादिक को कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

वेदाद्रभाब्धयद्रयंकिलनार्मदीभा
तद्व्यंगुलंहृसतिपुष्यतियोजनेन ॥
याम्योत्तरेपथिहतादशनागदिग्भि
रन्त्यापुनर्दहनहृच्चरखण्डकानि ॥ ८ ॥

अन्वयः—वेदाद्रभाब्धयः (अङ्गुलव्यंगुलानि) इयं किलनार्मदीभा (पलभा स्यात्) तत् (तस्मात्) याम्योत्तरे

पथियोजनेन व्यंगुलं ह्रसति पुष्यति च (सा त्रिस्त्रिधा) दश-नागदिग्भिः हता अन्त्याः पुनः दहनहृत् चरखण्डकानि (स्युः) ॥ ८ ॥

भाषा—४ अंगुल ४८ व्यंगुल यह सर्वत्र नर्मदा के तीर में पलभा होती है उस नर्मदा के तीर से दक्षिण उत्तर मार्ग में एक योजन करके एक व्यंगुल पलभा ह्रास होती है और बढ़ती है (अर्थात् अपने देश और नर्मदा के दक्षिणोत्तर के अन्तर में जितना योजन होता है उतनी हो) व्यंगुल करके यह नर्मदा की पलभा ४ । ४८ दक्षिण देश में रहित और उत्तर देश में सहित करने पर अपने देश की पलभा होती है (उदाहरण जैसे नर्मदा से उत्तर काशी ५७ यो-जन है तो नर्मदा की पलभा ४ । ४८ में ५७ को व्यंगुल मान कर जोड़ दिया तो काशी ५ । ४५ पलभा हुई ऐसा ही सर्व देशों में जानो) यह प-लभा होती है इसको तीन जगह रख क्रम से १० । ८ । १० से गुणा कर अन्त के अङ्क में तीन से भाग लेना। वही चर खण्ड होगा ॥ ८ ॥

॥ श्लोकः ॥

लंकोदयाभुजगभानिनवांकदस्रा
वह्निद्विकृष्णगतयश्चरखण्डकैः स्वैः ॥
हीनाविलोमविहितासहिताविलोमै-
र्व्यस्ताः पुनः स्वविषयोदयजाविनाड्यः ॥

अन्वयः—भुजगभानिनवांकदस्रा वह्निद्विकृष्णगतयः लङ्कोदयाः (स्युः तैः) स्वैः चरखण्डकैः (क्रमेण) हीना विलोमविहिताः (कार्या उत्क्रमस्थाः) विलोमैः (चरखण्ड-कैः क्रमेण) सहिताः (ते) पुनः व्यस्ताः स्वविषयोदयजा विनाड्यः (स्युः) ॥ ९ ॥

भाषा—२७८ । २९९ । ३२३ यह लङ्का का उदयमान है तिसको ३ चरखण्डा करके क्रम से हीन करना और उत्क्रम से विहित करना और उ-त्क्रमस्थ जो लङ्कोदय है उसमें विलोम चरखण्ड करके सहित करने से मेषादिक छः राशियों का मान होता है फिर उलटा करने से द्वादश राशियों को स्वदेश की जायमान विनाडी होगी ॥ ९ ॥

अब संक्रान्ति पर से सूर्य ज्ञान कहते हैं ।

॥ श्लोक ॥

वेदात्यष्टिगुणाग्निधूर्जटिगजत्र्यत्यष्टि-

दाविश्वभूमूर्छाभिर्धनुषोनिहत्याविभजे
लग्नेऽष्टवारास्त्रिभिः ॥ मीनादिष्वधनं
तुलादिषुधनंलिप्तास्फुटोभास्करः ॥ १० ॥

अन्वयः—वेदात्यष्टिगुणाग्निधूर्जटिगजत्र्यत्यष्टिदृग्विश्वभूमूर्छाभिः लग्नेष्टवारान् त्रिभिः धनुषः निहत्यविभजेत् (फलं) लिप्तामीनादिषु अधनं तुलादिषु धनं (कार्यं) स्फुटः भास्करः (स्यात्) ॥ १० ॥

भाषा—४ । १७ । ३ । ३ । ११ । ८ । ३ । १७ । २ १३ १ । २१ लग्न के इष्ट वार पर्यन्त (अर्थात् संक्रान्ति से लेकर वेदादिक जो द्वादश गुणक हैं उन्हें यथाप्राप्ति गुणक से क्रम से गुणा कर १२ से भाग लेना फल लिप्ता मिलेगा वह लिप्ता मीनादिक ७ राशियों में सूर्य रहते ऋण होता है तुलादिक ५ राशियों में धन करने से स्पष्ट सूर्य होते हैं (१) ॥ १० ॥

---

(१) स्पष्टाशय यह है कि संक्रान्ति वश से सूर्य राशि को जान के संक्रान्ति से लेकर इष्ट दिन पर्यन्त उसके नीचे वह अंश होगा उसको दो जगह रख के फिर धनु राशि से लेकर यथा प्राप्ति गुणक से गुणा करे और यथा प्राप्ति हर से भाग लेने से कलादि जो लब्धि मिलेगी उस कलादिको मीनादि ७ राशियों में सूर्य रहते पृथक् रखे उसमें ऋण तुलादि ५ राशियों में रहते धन करने से स्पष्ट सूर्य होते हैं ॥

अब कालज्ञान को कहते हैं।

॥ श्लोक ॥

रात्रौभानुर्भार्धयुक्सायनांश-
स्तन्नर्कांशाः स्वोदयघ्नाः पृथक्त्वे ॥
त्रिंशद्भक्ताभुक्तभोग्यापलादि-
स्ताद्दक्कालोमध्यगस्वोदयाढ्यः॥ ११॥

अन्वयः—रात्रौभानुर्भार्धयुक्सायनांशः (कार्यः) तन्वर्कांशाः स्वोदयघ्नाः (कार्याः) पृथक्त्वेत्रिंशद्भक्तापलादिभुक्तभोग्यामध्यगः स्वोदयाढ्यःताद्दक्कालः (स्यात्) ॥११॥

भाषा—रात्रि में सूर्य छः राशि युक्त सहित अयनांश करना (अर्थात् रात्रि का इष्ट काल हो तो सूर्य में छः राशि जोड़ करके अयनांश जोड़ना) लग्नांश और सूर्यांश को स्वोदय से गुणा कर दो जगह रख कर ३० से भाग लेने पर पलादि भुक्त भोग्य मिलेगा (अर्थात् लग्न पर से भुक्त पलादि सूर्य पर से भोग्य पलादि मिलेगा) लग्न सूर्य के अन्तर की राशियों के मान जोड़ लेने पर पूर्व इष्ट काल के तुल्य इष्ट काल होगा ॥ ११ ॥

अब इष्ट काल पर से लग्न ज्ञान को कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

भोग्यं रवेः समयमिष्टघटीपलेभ्य-
स्त्यक्तोदयैः सहफलानितदुद्धृतानि ॥
त्रिंशद्गुणान्यगलितोदयभाजितानि
भागाद्यजादिगृहशेखरितंतनुःस्यात् ॥

अन्वयः—रवेः भोग्यं समयं उदयैःसहइष्टघटीपलेभ्यः त्यक्त्वातदुद्धृतानि फलानि त्रिंशद्गुणानि अगलितोदयभाजितानिभागादि (यल्लब्धं तत्) अजादिगृहशेखरितं तनुः स्यात् ॥ १३ ॥

भाषा—सूर्य के भोग्य काल को और उदय के सहित जो अगामी राशि मान है उसको इष्ट घटी पल में घटाने पर जो शेष बचे उसको ३० से गुण कर जो राशि नहीं घटी है उस राशि के मान से भाग लेने पर अंशादि मिलेगा वह अंशादि मेषादि राशि जोड़ देने से (स्पष्ट) लग्न होगा ॥ १२ ॥

अथ षड्वर्ग होरादि को कहते हैं ।

॥ श्लोक ॥

नवांशमानद्विशतीकलानां
सूर्योनलग्नस्यशरेन्दुभागे ॥

वारादिहोराविगताशरघ्ने
षड्वर्गचिन्तातुविनायनांशैः ॥१३॥

अन्वयः—कालनांदिशतीनवांशमानं (स्यात् तस्मात् लग्नात्) षड्वर्गचिन्ता तु अयनांशैर्विना (स्यात्) वारादेः विगताहोरा (स्यात् कस्मिन्सति) सूर्योनमलग्नस्थशरेन्दुभागे शरघ्ने (सति) ॥ १३ ॥

भाषा—कलाओं के २०० नवांश मान (अर्थात् दो सौ कला की एक नवांश मान) होता है तिस लग्न पर से षड्वर्ग चिन्ता अयनांश के बिना होती है (अर्थात् षड्वर्ग चिन्ता में अयनांश नहीं देना) बार प्रवृत्ति समय से विगत होरा होती है सूर्य घटाये हुए लग्न के नवांश पन्द्रहवें हिस्से पांच से (अर्थात् सूर्य लग्न में घटाने पर जो शेष बचे उसमें पन्द्रह से भाग देना लब्धि को पांच से गुण कर और सात से शेषित करके जो शेष बचे वह गत होरा होती है बार क्रम से गने) ॥ १३ ॥

अब देशान्तर चर कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

अवन्तिपूर्वापरयोजनानि-
स्वपादहीनानिऋणानृणेस्तः ॥

पलानि देशान्तरयोश्चरार्धं
त्रिंशद्द्युमानांतरमर्धितः स्यात् ॥१४॥

अन्वयः—अवन्तिपूर्वापरयोजनानिस्वपादहीनानिदेशान्तरयोः पलानि (क्रमेण) ऋणअनृणे (स्तः) त्रिंशदद्द्युमानान्तरम् अर्धितः (स्यात्) ॥ १४ ॥

भाषा—उज्जयिनी से पूर्व और पश्चिम अपने देश पर्यन्त जितने योजन हों उनमें उसका चतुर्थांश घटाने से देषान्तर पल होता है वह पल क्रम से पूर्व देष में ऋण पश्चिम देश में धन संज्ञक होता है ३० का और दिन प्रमाण [illegible]न्तर का आधा चरार्ध होता है ॥ १४ ॥

अब प्रकरान्तर से कालहोरा को कहते हैं ।

॥ श्लोकः ॥

द्विघ्नेष्टनाडीशरलब्धितो वा
स्युःकालहोरादिनपप्रवेशात् ॥
प्रागवच्छरघ्नागणयेदनिंद्या-
त्क्रूरापिलग्नेशुभवेदवर्गे ॥ १५ ॥

अन्वयः—वा दिनपः प्रवेशात् द्विघ्नेष्टनाडीशरलब्धितः कालहोराः स्युः (ताः) शरघ्ना प्रागवत् गणयेत्क्रूरापि-

होरा अनिन्द्या (स्यात् कस्मिन्सति) लग्नेशुभवेद्वर्गे (सति) ॥ १५ ॥

भाषा—अब दिनपति प्रवेश से २ से गुणा हुआ इष्ट नाडी ५ से भाग लेने से कालहोरा होती है । उसको ५ से गुणा कर (सात से शेषित कर)पूर्व-वत् वार क्रम मे गणना करना पाप ग्रह की होरा भी (लग्न में शुभ है) लग्न में ४ शुभवर्ग हो (अर्थात् शुभाधि वर्ग लग्न में होना चाहिये ॥ १५ ॥

॥ श्लोकः ॥

राश्यंशाः शशिभूगुणेक्षणहता-
स्तिथ्यभ्रभूदिक्शरैर्भक्ताभार्धदृ-
काणनन्ददिनकृद्भागागृहंयस्ययत् ॥
त्रिंशांशः सितसौम्यजीवरविज-
क्ष्माजन्मनांव्युत्क्रमादोजर्क्षेषु-
शरेषुसप्तमरुतः पञ्चेतिषाड्वर्गिकाः १६

अन्वयः—राश्यंशाः शशिभूगुणेक्षणहताः तिथ्यभ्रभूदिक्शरैः भक्ताः (भार्धादयः वर्गाः स्युः) भार्धदृकाणनन्ददिनकृत् भागाः यस्य यत् गृहं (तस्यएववर्गाः) सितसौम्यजीवरविजक्ष्माजन्मानां (समराशौ) त्रिंशांशा (भवन्ति) इति षड्वर्गिकाः (सन्ति) ॥ १६ ॥

भाषा—राशि को छोड़ कर अंश को (चार स्थान में लिखना क्रम से) एक १।१।३।२ इनसे गुण कर क्रम से १५।१०।१०।५ से भाग लेना जो लब्धि मिलेगी वह होरादि (अर्थात् होरा द्रेष्काण नवांश द्वादशांश ये चार वर्ग होते हैं जिस ग्रहका जो गृह है उस ग्रह का वह वर्ग होता है (अब त्रिंशांश कहते हैं सम राशि में शुक्र, बुध, गुरु, शनि और मङ्गल इनका त्रिशांश होता है विषम राशि में ५।७।८।५ उत्क्रम से यह त्रिंशांश होता है यह षड्वर्ग कहा जाता है (स्पष्टाशय—यह है सम राशि में ५ अंश शुक्र का, ७ अंश बुध का, ८ अंश वृहस्पति का, ५ अंश शनि का और ५ अंश मङ्गल का त्रिंशांश होता विषम राशि में पहले ५ अंश मङ्गल का, फिर ५ अंश शनि का, ८ अंश गुरु का, ७ अंश बुध का और ७ अंश शुक्र का यही छः वर्ग है ॥ १६ ॥

अब ग्रहगणित की रीति से दिनप्रमाण बनाने की सुगम रीति कहते हैं।

॥ श्लोकः ॥

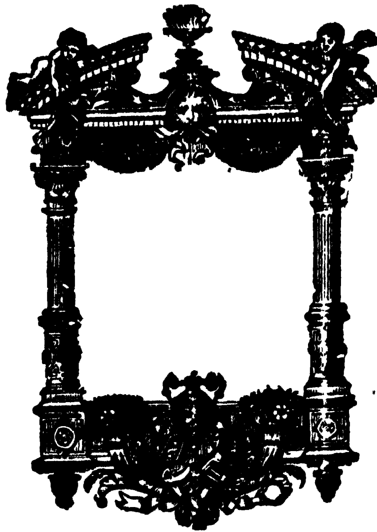
महोदयेसायनसूर्यभोग्यं

सषड्भभुक्तंचयुतंद्युमानम् ॥
इतिस्मृतेयंशिशुबोधनाय
श्रीकेशवार्केणविलग्नशुद्धिः ॥ १७ ॥

अन्वयः—सायनसूर्यभोग्यं (सायनसूर्यस्य) च सषड्भभुक्तमध्योदयेयुतं द्युमानं (स्यात्) इतिइयंविलग्नशुद्धिः शिशुबोधनायश्रीकेशवार्केण स्मृता ॥ १७ ॥

भाषा—सायन सूर्य पर से रवि भोग्य काल ले आना फिर सायन में ६ राशि जोड़के रविभुक्त काल ले आना तदन्तर सायन सूर्य और ६ राशि युक्त सायन सूर्य्य दोनों की मध्यवर्ती राशियों के मान युक्त करने से दिन मान होता है (अर्थात् भोग्य काल और भुक्त काल और मध्य गत राशियों का मान सब को एक जगह करके ६० से भाग लेने पर दिन-मान होता है) यह विवाह लग्नशुद्धि बालकों के ज्ञान के वास्ते केशवाचार्य ने कही है यह ग्रन्थालङ्कार कहा है ॥ १७ ॥

इति श्रीकाशिखण्डान्तर्गतदेवडीहग्रामनिवासिशाण्डिल्यवंशाव-
तंसविविधशास्त्रपारङ्गतपण्डितश्रीलालबहादुरत्रिपाठिपुत्र-
ज्योतिर्वित्पण्डितशिवदत्तत्रिपाठिविरचितायां
विवाहवृन्दावनसान्वयशिवकरीभाषाटी-
कायां लग्नशुद्ध्यध्यायः
सप्तदशः ॥ १७ ॥





टीकाकार का वंशवर्णन ।

॥ श्लोकाः ॥

शाण्डिल्यवंशेसुमहावतंसे
महीपतिर्नामद्विजोवरोऽभूत् ॥
तदात्मजोलालबहादुराख्यो
जातोमहीमण्डलमानधिष्ठः ॥ १ ॥
श्रीदेवडीहेशुभनाम्निग्रामे
सर्वैः स पूज्योवसतिस्म विप्रः ॥
तस्मादहंतइहपृथिव्यां-
टीकोक्तनाम्नाप्रथितोधरायाम् ॥२॥
शिवदत्तेनरचिताटीकाशिवकरिशुभा ॥
गिरिजाजानितुष्ट्यर्थंमुदंवितनुयात्सताम् ॥

विदुषः प्रति प्रार्थना ।

दोषानदृष्ट्वामतिविभ्रमाद्वा
यदर्थहीनंलिखितंमयात्र ॥
तत्सर्वमार्यैः परिशोधनीयम्
कोपोनकार्य्यः खलुतर्णकेऽस्मिन् ॥४॥

शास्त्रकर्ताभवेद्व्यासोलेखकोगणनायकः ॥
तथैवचलिताबुद्धिर्मनुष्याणान्तुकाकथा॥५॥
लिखनपरिश्रमवेत्ताभुवनेविद्वज्जनोनान्यः ॥
सागरलङ्घनखेदंहनुमानेकः परं वेत्ति ॥६॥
रामरसनिधीन्द्वब्दे(१९६३)भाषयासमलङ्कृता
चैत्रेशुक्लदशम्यांचप्रतिपूर्त्तिमगादियम् ॥७॥

इष्टाङ्कसंख्येदशभिर्विनिघ्ने-
सैकेखवेदैर्गुणितेचतज्ज्ञैः ॥
तत्वाभशेषशाशत्रीन्दुनिघ्ने
वर्षेनभेमासिसमुद्रितेयम् ॥ ८ ॥

अत्रापिचमयाप्रोक्तागुप्तायास्वीयशक्तितः ॥
पक्षिणः स्वगतिंश्रित्वाखेगच्छान्तिसुविस्तरे ॥

अपका कृपाभिलाषी
पंडित शिवदत्तत्रिपाठी, ज्योतिषाध्यापक
श्री पं० भगवान्प्रसादमिश्रजीरक्षित
आदित्यकरपाठशाला, ग्राम, बस्ती
डाकखाना रामपुर, जिला आजमगढ़ ।

पुस्तक मिलने का पता—

श्रीमान् बाबू गङ्गादयालसिंहजी रईस
ग्राम देवडीह, परगना खरीद,
डाकखाना बांसडीह, जिला बलिया।

अथवा

मुंशी इन्द्रदेवलाल
भारतबन्धुकार्य्यालय, ग्राम मनियर,
डाकखाना मनियर, जिला बलिया।

